अर्थ—प्रलय के कारण देव-जाति का विनाश हो गया था, केवल मनु बच रहे थे। वह भूमि जहाँ वे इस समय चिन्ता-मग्न बैठे हैं देवताओं की श्मशान भूमि बन चुकी थी। अतः दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता था मानो वह नवयुवक दैवी-वैभव को फिर लौटाने के लिये तपस्वी के समान सुर-श्मशान में बैठा किसी शक्ति की साधना में लीन है। नीचे प्रलय के कारण घोर वर्षा के जल ने जो समुद्र का रूप धारण कर लिया था उसकी तरंगें पर्वत से आकर टकरातीं और एक करुणा भरी गूंज उठाकर वहाँ समाप्त हो जाती थीं।

वि०—मनु श्मशान-साधन नहीं कर रहे हैं, अतः तांत्रिक की उपर्युक्त प्रक्रियाओं से उनके चिन्तन का कोई सम्बन्ध नहीं। यह सत्य है कि आगे चलकर उन्होंने मानव-जाति की सृष्टि की और मानव-धर्म की प्रतिष्ठा, पर वह किसी शक्ति की सिद्धि के बल पर नहीं, वरन् अपनी प्रखर प्रतिभा के सहारे।

उसी तपस्वी से—देवदारु—एक प्रकार का ऊँचा सीधा वृक्ष जो विशेष रूप से पर्वतों पर उगता है। धवल—सफेद।

अर्थ—उस तपस्वी मनु के आकार के समान ही लंबे देवदारु के कुछ वृक्ष वहाँ खड़े थे। बर्फ़ के ढकने के कारण वे सफेद दिखाई देते थे और पत्थर जैसे कड़े होकर जहाँ थे वहीं अड़े रह गये थे—मानों शीत से ठिठुर गये हों।

वि०—प्रकृति को मनुष्य के सुख दुःख से प्रभावित होते कवि लोग दिखाया करते हैं। वह हमारे सुख के समय प्रसन्न और दुःख के समय विषाद-मग्ना चित्रित की जाती है। यहाँ दुःख-दग्ध मनु के आस-पास के वृक्ष भी हिम के प्रकोप से ठिठुरे से खड़े हैं।

पृष्ठ ४

अवयव की—अवयव—शरीर के अंग। मांस पेशियाँ—पुट्ठे।

वि०—इसी नौका ने मनु के प्राणों की रक्षा की थी।

निकल रही थी—मर्म वेदना—गहरी पीड़ा। करुणाविकल—दर्द भरी।

अर्थ—मनु अपनी गहरी व्यथा का वर्णन करने लगे। यह वर्णन एक दर्द भरी करुण कहानी जैसा था। इस कहानी को सुनने वाला वहाँ कोई प्राणी न था, एकमात्र प्रकृति थी। पर सृष्टि के प्रारम्भ से ऐसी अगणित कहानियाँ सुनने की वह अभ्यस्त थी; अतः मनु के दुःख पर उसे कोई दुःख न हुआ। मनु अपनी व्यथा-कथा कहते रहे, वह मुसकाती रही।

वि०—सुख दुःख सापेक्ष भाव हैं। एक राजकुमार के लिए उँगली का घाव गहरी पीड़ा दे सकता है। वही पीड़ा युद्ध-क्षेत्र में शरीर पर अनेक घाव खाने वाले सैनिक के लिये हँसी की वस्तु हो सकती है। मनु जिन घटनाओं को दुहरा रहे हैं उनका ज्ञान प्रकृति को भी है। उस कहानी में उसके लिये कोई नवीनता नहीं। इस दृष्टि से भी वह कहानी 'पहचानी सी' है। पर यहाँ वैषम्य (contrast) से भाव को कवि उद्दीप्त करना चाहता है। मनुष्य व्यथित है और जड़ प्रकृति हँस रही है। इस हास्य की निष्ठुरता की पृष्ठभूमि में—सहानुभूति की हीनता में—शोक और भी गहरा हो गया है।

पृष्ठ ५

ओ चिंता की—व्याली—सर्पिणी। स्फोट—फटना। मतवाली—मस्त; जिसके कर्म से दूसरों को हानि पहुँचे।

अर्थ—मनु कहने लगे—हे चिन्ता मेरे अन्तर में प्रथम बार आज तुम्हारी एक रेखा अंकित हुई है। तुम विश्व-उपवन की सर्पिणी हो। तुम ज्वालामुखी पर्वत के उस प्रारम्भिक कंपन के समान मतवाली हो जिसके उपरांत भयंकर विस्फोट होता है।

वि०—देवताओं का जीवन सुख और भोग का जीवन था। चिन्ता जैसे किसी मनोविकार से उनका परिचय न था। मनु प्रथम मानव हैं जिन्होंने अपने जीवन में पहली बार इस मनोभाव का अनुभव किया। पहले उसके अशुभ पक्ष को वे स्पष्ट कर रहे हैं।

उपवन में घूमते समय यदि वहाँ सर्पिणी के अस्तित्व की आशंका रहे तो उद्यान की शोभा का उपभोग मनुष्य निश्चिंत मन से नहीं कर पाता। इसी प्रकार विश्व एक अत्यन्त रम्य स्थल है जहाँ चिन्ता के अस्तित्व के कारण उसकी रम्यता बार-बार फीकी पड़ती रहती है।

ज्वालामुखी पर्वत के मुख पर कंपन होते ही जैसे इस बात का निश्चय हो जाता है कि अब यह पर्वत फटकर तरल अग्नि की नदी बहाता हुआ आस-पास की सब वस्तुओं को नष्ट भ्रष्ट कर देगा, उसी प्रकार चिन्ता का मस्तिष्क में प्रवेश होते ही समझ लेना चाहिये कि अब कोई भारी विपत्ति आने वाली है।

हे अभाव की—ललाट—मस्तक अथवा भाग्य। खल लेखा—क्रूर या अशुभ रेखा। हरीभरी—हरियालापन या प्रसन्नता लानेवाली। दौड़धूप—दौड़धूप करने वाली। जलमाया—जल के समान माया। चलरेखा—चंचल रेखा, यहाँ तरंग से तात्पर्य है।

अर्थ—तुम किसी प्रकार के अभाव से उत्पन्न होकर मनुष्य को अस्थिर कर देती हो। तुम्हारा उत्पन्न होना मनुष्य के दुर्भाग्य का सूचक है। पर तुम्हारा एक शुभ पक्ष भी है। जब मनुष्य तुमसे आक्रांत होता है तब वह आलस्य का परित्याग कर तुम्हें मिटाने के लिये दौड़-धूप करता है और उस परिश्रम के फलस्वरूप उसका जीवन हराभरा हो जाता है। इस मायात्मक जगत को यदि जल मानें तो तुम उसमें तरंग के समान हो। अर्थात् पवन के आघात से जैसे जल में लहरें उठने लगती हैं, उसी प्रकार तुम्हारी प्रेरणा से मनुष्य क्रियाशील बनता है।

वि०—चिता को 'अभाव की बालिका' कह कर प्रसाद ने उसकी

बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। जब भोजन, वस्त्र, स्वास्थ्य, प्रेम आदि में से किसी का अभाव होता है तभी तो चिंता उत्पन्न होती है।

इस ग्रह कक्षा—ग्रह—वे तारे जो सूर्य के चारों ओर घूमते हैं, जैसे पृथ्वी, मंगल, शुक्र आदि। कक्षा—वह मार्ग जिससे ग्रह भ्रमण करते हैं। तरल—द्रवरूप में, पिघला हुआ। गरल—विष। जरा—वृद्धावस्था।

अर्थ—तुम समस्त अंतरिक्ष में जिसमें होकर पृथ्वी मंगल आदि लोक घूमते हैं हलचल मचाने वाली हो अर्थात् तुम विश्व भर में खलबली उत्पन्न कर देती हो। तुम पिघले विष की हलकी सी लहर हो, अर्थात् विष की छोटी लहर जैसे शरीर में व्याप्त होकर मनुष्य को आकुल-मात्र करती है मार नहीं डालती, उसी प्रकार चिंता मनुष्य को व्यथा पहुँचाती है। तुम देवताओं के जीवन में भी अपने प्रभाव से वृद्धावस्था के लक्षण ला सकती हो। और जब तुम आती हो तो इतनी बहरी बन जाती हो कि किसी की रोक-टोक नहीं मानतीं।

वि०—अधिक विषपान से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, पर उसके थोड़े सेवन से केवल व्यथा ही पहुँचती है। सर्प के दर्शन से जो विष शरीर में प्रवेश करता है उससे बहुत से प्राणी बच भी जाते हैं। भारत वर्ष में ऐसे नशेबाज भी हैं जो अफीम के समान ही विष का नशा करते हैं और उसे स्वास्थ्य-वर्द्धक बतलाते हैं।

देवताओं के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वे चिरयुवा रहते हैं। पर चिंता के कारण मन यौवन में भी बुड्ढा हो सकता है। यहाँ चिंता की उसी शक्ति का प्रदर्शन है कि मानवों के जीवन में तो क्या यदि अमरों के जीवन में भी प्रवेश कर जाय तो जरावस्था ला दे।

अरी व्याधि की—व्याधि—शारीरिक रोग। सूत्रधारिणी—उत्पन्न करने वाली। आधि—मानसिक व्यथा। मधुमय—मधुर। अभिशाप—शाप। धूमकेतु—पुच्छल तारा। सुन्दर पाप—वह अवांछित कर्म जिसका फल सुन्दर हो।

अर्थ—तुम शारीरिक रोगों को जन्म देती हो। तुम मन को व्यथा पहुँचाती हो। तुम मधुर शाप हो। गगन में पुच्छल तारे का उदित होना जैसे एक अशुभ लक्षण है उसी प्रकार मन में तुम्हारा उदित होना। इस पवित्र सृष्टि में बाह्य दृष्टि से तुम एक अकल्याणकारी भाव हो, यद्यपि तुम्हारे अस्तित्व का परिणाम अंत में भला ही होता है।

चिंता से कभी कभी शारीरिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं जैसे प्रेम की घोर निराशा में प्रायः हिस्ट्रिया और क्षयरोग उत्पन्न हो जाते हैं।

वि०—चिंता से मन व्याकुल रहता है इससे वह शाप तो है, पर यदि जीवन में चिंता न हो तो मनुष्य सुख के विधान के लिये प्रयत्न न करे और जीवन की मधुरता से वंचित रहे। इसी बात को दृष्टि में रखकर उसे 'मधुमय अभिशाप' कहा गया है।

ज्योतिषियों का ऐसा निर्णय है कि पुच्छल तारे के उदित होने पर अकाल, महामारी अथवा महायुद्ध होता है। चिंता भी किसी बड़े कष्ट की अग्रगामिनी बनती है।

पाप शब्द का तात्पर्य है आत्मा के प्रतिकूल भाव। आत्मा आनंद-मय है। चिंता उस आनंद में व्याघात डालती है, अतः अवांछनीय होने पर भी अनिवार्य है। इसी से उसे 'सुन्दर पाप' कहा गया।

पाप भी कभी कभी सुन्दर होता है। जैसे कोई कसाई यदि घने बन में किसी गौ का पीछा कर रहा हो और पूछने पर कोई महात्मा उसे अन्य दिशा में जाती हुई बता दे तो उस तपस्वी ने झूठ बोलने का पाप तो किया, परन्तु गौ के प्राण बचाने के कारण वह पुण्य का भागी भी हुआ।

मनन करावेगी तू—मनन कराना—चिंतित रखना। उस निश्चिंत जाति—परमात्मा का अंश। गहरी नींव डालना—अपनी जड़ मज़बूत करना।

अर्थ—जीव उस परमात्मा का अंश है जो दुःख शोक से प्रभावित

नहीं होता। अतः मन को तू चाहे कितना ही चिंतित रख, प्राणियों के हृदय में तू कितनी ही गहरी प्रवेश कर जा, पर जीवात्मा को मार डालने में तू असमर्थ है। कारण—वह अमर है।

वि०—संसार में आकर जीव जब अपने स्वरूप को भूल जाता है और माया में अपने को बद्ध समझ लेता है तभी कष्ट उठाता है, नहीं तो वह निर्मल आनन्दमय है। तुलसी ने उत्तरकाण्ड में कहा है—

ईश्वर अंश जीव अविनासी,
सत् चेतन घन आनन्द रासी।
सो माया बस भयेउ गुसाँई,
बँधेउ कीट मरकट की नाईं॥

पृष्ठ ६

आह! घिरेगी हृदय—लहलहे—हरे भरे। करका घन—ओलों भरे बादल;। (जखन सघन गगन गरजे बरसे करका धारा—द्विजेन्द्रलाल राय)। अंतरतम—हृदय की गहराई। निगूढ़—छिपे।

अर्थ—जैसे हरे भरे खेतों पर ओलों भरे बादल छा जाते है, उसी प्रकार तुम आशा भरे हृदयों पर छा जाया करोगी। तुम सबके हृदय के बहुत भीतर उसी प्रकार से छिपी रहोगी, जैसे पृथ्वी के भीतर मनुष्यों का धन छिपा रहता है।

वि०—इन पंक्तियों में चिंता को आशंकाओं की जननी माना है। ओले भरे बादलों के घिरने का ही वर्णन यहाँ है बरसने का नहीं, यह ध्यान देने की बात है। घिरने का यह भाव है कि यदि वे बरस गये तो खेती नष्ट हो जायगी, हर वे टल भी सकते हैं। इसी प्रकार चिंता बनी रही तो आशायें कुचल जायँगी।

पृथ्वी के भीतर गढ़े धन का पता जैसे केवल उस धन के स्वामी को ही होता है, उसी प्रकार जिसके हृदय में चिंता होती है उसका ठीक ज्ञान उसी व्यक्ति को होता है। बाहरी आँखें उसे नहीं देख पातीं।

यहाँ कवि ने 'करका घन' के द्वारा बाह्य जगत से और 'निगूढ़ घन' के द्वारा अंतर्जगत से उदाहरण लिया है। चिंता के ये दोनों पक्ष स्वाभाविक हैं। वह बाह्य परिस्थितियों से उत्पन्न होती और अंतर्जगत में बस जाती है।

बुद्धि मनीषा मति—बुद्धि (Perception) भले बुरे का निश्चय कराने वाली शक्ति। मनीषा (Knowledge) ज्ञान। मति (Opinion) सम्मति, राय। आशा (Hope) किसी अप्राप्त वस्तु के पाने की संभावना। चिंता (Anxiety) सोच।

अर्थ—हे चिंता तुम्हारा ही दूसरा नाम बुद्धि है, तुम्हें ही मनीषा (ज्ञान) कहते हैं, तुम्हारा ही एक रूप मति है और तुम्हीं आशा का आकार धारण कर लेती हो। पर जिस रूप में तुम मेरे हृदय में उदित हुई हो वह बहुत ही अशुभ है; अतः तुम यहाँ से चली जाओ, एकदम चली जाओ। यहाँ तुम्हारा कुछ काम नहीं।

वि०—यहाँ कवि ने चिंता शब्द से चिंतन का अर्थ लिया है। चिंतन से सत् असत् का निर्णय होता है, ज्ञान उत्पन्न होता है। चिंतन से ही मनुष्य विवादग्रस्त विषय के संबंध में अपनी कोई धारणा बना लेता है और जब शोक के मध्य स्थिर-बुद्धि से सोचता है, तब आशा को भी पोषित कर लेता है।

विस्मृति आ—विस्मृति—भूलना। अवसाद—शिथिलता। नीरवना—शांति। चेतनता—भावों का उदय। शून्य—सूना हृदय।

अर्थ—विस्मृति तू आ—जिससे मैं अतीत के उन समस्त सुखों को भूल जाऊँ जिन्हें स्मरण करके पीड़ा होती है। आज मेरा मन शिथिल हो जाय—जिससे उसमें कुछ भी सोचने का उत्साह न रहे। मेरे इस धड़कने हृदय को हे शान्ति की भावना, तू एक दम चुप कर दे। ऐ मेरी सोच-विचार की शक्ति आज मेरे सूने हृदय को जड़ता से भर कर (जड़ बना कर) तू कहीं चली जा।

और बुद्धि-बल से देवताओं ने अपना विकास किया और विलास में रात-दिन लीन रह कर स्वयं ही अपना नाश कर लिया।

वि०—प्रसिद्ध है कि सर्पिणी की भाँति मछलियाँ भी अपने बच्चों को निगल जाती हैं।

अरी आँधियों—दिवा-रात्रि — दिन-रात। नर्त्तन — नाचना। वासना—भोग-विलास। उपासना—लीनता। तेरा—आँधी और बिजली भरी दिन रातों का। प्रत्यावर्त्तन—लौटना।

अर्थ—रात-दिन आँधियाँ चलती रहीं, बिजलियाँ गिरती रहीं; पर देवता लोग भोग-विलास में ही लीन रहे। यह देखकर फिर आँधियाँ लौटीं और फिर बिजलियाँ गिरीं।

वि०—प्रसाद के कुछ वाक्यों का गठन बड़ा विचित्र होता है। जैसे 'प्रकाश के दिन' अथवा 'अंधकार की रात्रि' का अर्थ होगा वह दिन जिसमें प्रकाश भरा हो अथवा वह रात्रि जिसमें अंधकार छाया रहे; इसी प्रकार 'आँधी बिजली के दिन-रात' का तात्पर्य हुआ वे दिन-रात जिनमें आँधियों और बिजलियों का ही दौर-दौरा हो। नर्त्तन से तात्पर्य तीव्र गति का है।

प्रकृति देवताओं को वासना से विरत करना चाहती थी। पहिले तो उसने आंधी चला कर, बिजली गिरा कर सचेत ही किया, पर जब वे घोर भोग के जीवन से विमुख न हुए तब उनका विनाश ही कर दिया।

मणि दीपों के—मणि दीप—मणियों के दीपक, रत्न दीप। दंभ—अहंकार। महामेध—महायज्ञ। हविष्य—यज्ञ की अग्नि में पड़ने वाली सामग्री, आहुति।

अर्थ—देवताओं के अहंकार के महान यज्ञ में हमारा सब कुछ स्वाहा हो गया। देवताओं को इस बात का बड़ा गर्व था कि उनका विनाश कोई नहीं कर सकता; अतः प्रकृति की चेतावनी पर उन्होंने ध्यान न दिया और अंत में उसके प्रकोप से वे विनष्ट हो गए। अब हमारा

गरज रहा; अपितु देवताओं के सुख को अपने में डुबा कर भारी दुःख घोर ध्वनि कर रहा है।

वि०—एक वस्तु के स्थान पर उसे छिपा या नष्ट कर जब दूसरी वस्तु दिखाई देती है तब इस प्रकार सोचना अत्यंत स्वाभाविक है कि पहली वस्तु ही दूसरी वस्तु के रूप में परिवर्तित हो गयी है। 'वैभव समुद्र के रूप में परिवर्तित हो गया' या 'जय ध्वनि विषाद ध्वनि बन गई' इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

वह उन्मत्त विलास—उन्मत्त—संयमहीन। छलना—भ्रम, भ्रांति सृष्टि—संसार। विभावरी—रात। कलना—भरी हुई, रचना।

अर्थ—उनका वह संयमहीन भोग-विलास कहाँ चला गया? वह कोई स्वप्न था या केवल भ्रम था? देवताओं के संसार की सुख-रजनी ताराओं (विविधता) से भरी हुई थी। अर्थात् जैसे रात में बिखरे तारागणों की कोई गिनती नहीं, वैसे ही देवताओं के सुखों की कोई सीमा न थी। विविध प्रकार के अगणित सुखों का भोग वे करते थे।

चलते थे सुरभित अंचल—सुरभित—सुगंधित। मधुमय—सुख के परिचायक। निश्वास—साँस। कोलाहल—आमोद प्रमोद। मुखरित—ध्वनित, व्यक्त।

अर्थ—नारियों के सुगंधित अंचल से जीवन की सुखमय साँसें बहती थीं अर्थात् देवियों के वस्त्रों से सुगंध का फूटना इस बात का परिचायक था कि वे सम्पन्न घरानों की हैं क्योंकि दरिद्र घरों में दुःख का जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियाँ अपने अंचल सुवासित रख ही नहीं सकतीं। इसी प्रकार आमोद प्रमोद की जो चारों ओर ध्वनि उठती रहती थी, उससे यह पता चलता था कि देव जाति सुख और निर्भयता से जीवन व्यतीत कर रही है।

सुख केवल सुख—केन्द्रीभूत—एकत्र, इकट्ठा। छायापथ—

आकाश गंगा। तुषार—बर्फ़ के छोटे कण, यहाँ तुषारकण जैसे तारे। सघन—घना।

अर्थ—देवताओं ने सभी स्थानों से जुटाकर विविध सुखों को अपने बीच इस प्रकार एकत्र किया था, जिस प्रकार नवीन हिम के टुकड़ों के समान चमकने वाले अनन्त तारे आकाशगंगा में घने रूप से सटकर समाये रहते हैं।

वि०—रात को आकाश में कुछ चौड़ी और दूर तक लंबी एक ऐसी टुकड़ी दिखाई देती है मानों वहाँ दूध बिखर गया हो। वैज्ञानिकों का कहना है कि यहाँ आकाश के अन्य भागों की भाँति तारे छितरे हुये नहीं हैं वरन् अत्यन्त सटकर बिछे हुये हैं। इस दूधियाभाग को आकाश-गंगा या छायापथ कहते हैं।

पृष्ठ ९

सब कुछ के स्वायत्त—स्वायत्त—अपने अधीन। उद्वेलित—उठना। समृद्धि—ऐश्वर्य।

अर्थ—संसार भर का बल, वैभव और अपार आनन्द उनके अधीन था। जैसे समुद्र में अनन्त लहरें उठती रहती हैं, उसी प्रकार उन्होंने जो ऐश्वर्य एकत्र किया था उससे असंख्य रूपों में सुख उत्पन्न होता रहता था।

कीर्ति दीप्ति शोभा—कीर्ति—यश। दीप्ति—ओज, तेज। शोभा—सुन्दरता। सप्तसिन्धु—पंजाब की पाँचों नदियाँ और गंगा-यमुना। द्रुमदल—वृक्ष समूह या वन। आनन्द विभोर—आनन्दमग्न।

अर्थ—देवताओं के यश, तेज और सौंदर्य की छटा सूर्य की किरणों के समान सभी दिशाओं, सप्त सरिताओं के चंचल जलकणों और वृक्ष-समूहों में आनन्द पूर्वक नृत्य करती थी। तात्पर्य यह कि गंगा और सिन्धु नदी के बीच क्या जल और क्या स्थल सभी कहीं देवताओं का रूप, शौर्य और प्रताप बिखरा पड़ा था।

वि०—देवजाति हिमालय के नीचे उत्तरी भारत के कुछ अंशों में ही शासन करती थी। कामायनी से भी यही सिद्ध होता है क्योंकि उसमें आगे चल कर इड़ा को सारस्वत प्रदेश की महारानी लिखा है।

शक्ति रही हाँ—पदतल में—चरणों में। विनम्र—झुकी हुई। विश्रांत—थक कर, हार कर। आक्रान्त—पद दलित होकर।

अर्थ—देवताओं की भुजाओं में वास्तविक शक्ति थी। समस्त प्रकृति उनके चरणों में हार कर झुक गई। पृथ्वी पद-दलित होकर नित्य ही काँपती रहती थी।

वि०—प्रकृति के झुकने का तात्पर्य है प्रकृति की वस्तुओं पर पूर्ण अधिकार होने से। घने वनों में वे निर्भीक भाव से विचरण करते थे, सरिताओं में उनकी नौकायें स्वच्छन्दता से घूमती थीं।

धरणी के कंपित होने का भाव यह है कि वे जहाँ भी आक्रमण कर देते थे, वहीं के निवासी भयभीत होकर पराजय स्वीकार कर लेते थे।

स्वयं देव थे—विशृंखल—अव्यवस्थित, गड़बड़।

अर्थ—जब हम सब यह समझने लगे कि हम तो 'देवता' हैं अर्थात् हमारे कर्मों का कोई नियामक नहीं, जो चाहें वह करने को हम स्वतन्त्र हैं, तब सृष्टि में हमारे संयमहीन कार्यों से अव्यवस्था फैलती ही। यही कारण है कि हम पर कड़ी आपत्तियाँ सहसा बरस पड़ीं।

वि०—प्राणी या तो विवेक से शुद्ध आचरण करता है या फिर भय से। देवताओं में न विवेक था और न उन्हें किसी का भय। पर भगवान् तो दुष्कर्मों का दण्ड देकर ही मानते हैं, नहीं तो उनकी सृष्टि का विकास बन्द हो जाय। इसी से देवताओं की वासना वृत्ति जब अपनी सीमा पार कर गई तब एक दिन प्रलयरूपी अपने तनिक से भ्रूभंग से उस सर्वशक्तिमान ने इस विवेकहीन जाति को सदैव के लिए सुला दिया।

गया सभी कुछ—ज्योत्स्ना—चाँदनी। स्मित—मन्द हास्य। निश्चित—चिन्ता रहित। विहार—भोगविलास।

अर्थ—गया, सब कुछ चला गया। सुन्दर से सुन्दर अप्सराओं का शृंगार चला गया। उषा सा उनका यौवन चला गया। चाँदनी सी उनकी मुसिकान चली गई। भोगी भौंरों के समान उनका चिन्तारहित भोगविलास चला गया।

वि०—उषा में कई गुण होते हैं। उसमें नवीनता होती है, स्फूर्ति होती है, उज्ज्वलता होती है। ये ही गुण यौवन में होते हैं। इस दृष्टि से यौवन को उषा कहना अत्यन्त सार्थक है। काव्य में कुछ वस्तुओं का रंग माना जाता है जैसे प्रेम का लाल, पाप का काला, हास्य का श्वेत। मुसिकान को इसी दृष्टि से चाँदनी कहा है।

'मधुप' का शाब्दिक अर्थ है मधु पीने वाला। मधुप पुष्प के निकट आ रसपान करता है, फिर उड़ जाता है, थोड़ी देर में फिर आकर रसपान करने लगता है। इसी से मधुप शब्द का प्रयोग इस स्थल पर अत्यन्त मार्मिक है। महान् कवियों की ऐसी ही मार्मिक दृष्टि होती है। पुष्प-वाटिका में सीता के सौंदर्य-मकरन्द का पान करने वाले राम के नेत्रों को 'मधुप' ही कहा है—

करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज, मकरंद छवि, करत मधुप इव पान।

पृष्ठ १०

भरी वासना सरिता—भरी—उमड़ती हुई। मदमत्त—मस्त। प्रवाह—प्रचंड वेग। संगम—मिलन, अन्त, विलीनता।

अर्थ—उनकी उमड़ती हुई वासना रूपी नदी ऐसी मस्ती और प्रचंड वेग से बही कि अन्त में वह विनाश के समुद्र में विलीन हो गई। इस दृश्य को देख कर मेरा हृदय कराह उठा था।

चिर किशोर वय—किशोर—ग्यारह से पन्द्रह वर्ष की अवस्था वाला बालक, यहाँ युवक। सुरभित—सुगंधित।दिगंत—दिशा। तिरोहित होना—छिपना, दूर होना। मधु—मकरंद। वसंत—वसंत ऋतु यहाँ अपार सुख।

अर्थ—जैसे नवीनता लाने वाला, विलास वृत्ति को उकसाने वाला, दिशाओं को सुगन्धित करने वाला, मकरंद बरसाने वाला वसंत कुछ दिनों के उपरान्त छिप जाता है; उसी प्रकार हमारे वे अपार सुख के दिन कहाँ चले गये जब हम सदा युवावस्था का अनुभव करते थे; नित्य विलास मग्न रहते थे; जब दिशायें हमारे आमोद से युक्त रहती थीं और चारों ओर मधुरता बरसाती थीं?

कुसमित कुंजों में—कुसुमित—फूलों से भरे। कुंज—लतागृह, वृक्षों या लताओं से बना मण्डप। पुलकित—रोमों में कंपन लाने वाले। मूर्च्छित—लयभरी।

अर्थ—पुष्पों से युक्त कुञ्जों में प्रेम के आवेश में देवता और अप्सरियाँ जब एक दूसरे को हृदय से लगाते, तब रोमांचित हो जाते थे। आज वे दृश्य कहाँ? अब लयभरी तानें मूक हो गयीं और बीन की ध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती।

वि०—संगीत में सातों स्वरों पर दोनों ओर से उँगली फेरने को अर्थात् तीव्रगति से 'म रे ग म' भरने को मूर्च्छना कहते हैं। इससे एक अद्भुत मिठास पैदा होती है।

अब न कपोलों—छाया सी—छाया सी शीतल। सुरभित भाप—सुगन्धित साँसें। भुजमूल—बगल। शिथिल—ढीला। वसन—वस्त्र। स्वन्न—खिसकना। सार—आकार।

अर्थ—अप्सरियाँ निकट बैठकर जब दीर्घ साँस भरने लगती थीं,

तब उनके मुख से निकले सुगन्धित उच्छ्वास देवताओं के कपोलों को स्पर्श करते ही ऐसे शीतल प्रतीत होते थे जैसे छाया। और अधिक आवेश में उनके वस्त्र ढीले होकर जब बिखरने लगते और ऐसी दशा में वे जब एक दूसरे का आलिंगन करते तो देवियों के वस्त्र देवताओं की बगलों में लिपट कर रह जाते थे। अब यह सब कहाँ?

वि०—देवताओं, अप्सरियों और पद्मिनी स्त्रियों के संबंध में प्रसिद्ध है कि उनके शरीर और साँसों से पुष्पों की सी मधुर गंध निकलती है।

ऊपर 'सुरभित भाप' से तात्पर्य अप्सराओं के मुख की भाप का लिया गया है। यदि यह भाप सुन्दरियों के कपोलों पर देवताओं के मुख की मानी जाय तो अर्थ इस प्रकार होगाः देवियों के कपोल इतने उज्ज्वल होते थे कि यदि प्रेम के आवेश में निकट-स्थित देवताओं के मुख से निकले सुगंधित उच्छ्वास उन पर पड़ जाते तब उन पर छाया सी पड़ जाती—वे किंचित मलिन हो जाते।

'माप' शब्द यहाँ 'भाप' से तुक मिलाने के लिए रखा गया है। उसके बिना भी काम चल सकता था। यहाँ माप से वस्त्र की उतनी लंबाई मात्र का आशय है जो बगल और कंधों को ढकने के लिए पर्याप्त हो।

पृष्ठ ११

कंकण क्वणित—कंकण—कंगन, कलाई में पहनने का आभूषण। क्वणित—ध्वनित। रणित—बजना। नूपुर—घुँघरू। मुखरित—गुंजित। कलरव—मधुर संगीत। अभिसार—मिलाप।

अर्थ—अप्सराओं का आलिंगन करते ही उनका शरीर हिल उठता। इससे उनके कंकणों से ध्वनि फूटती, घुँघरू बज उठते, हृदय का हार हिलने लगता। मधुर संगीत निनादित रहता और गीत जब गाये जाते तब उनमें स्वर और लय मिले रहते।

वि०—अभिसार का अर्थ होता है नायिका का नायक से छिपकर

मिलने जाना। यहाँ देखने की बात यह है कि 'स्वर' पुल्लिङ्ग में है और 'लय' स्त्रीलिङ्ग में। मिलन-काल के संगीत में भी कवि ने स्वर-लय को प्रेमी-प्रेमिका के रूप में देखा है।

सौरभ से दिगंत—सौरभ—सुगंध। दिगंत—दिशायें। अंतरिक्ष—चारों ओर का वातावरण, आकाश। आलोक अधीर—प्रकाश से चंचल। अचेतन—मस्त। पिछड़ा रहे—हार जाय।

अर्थ—सुगंध से दिशायें पूर्ण रहतीं और रात को प्रकाश से चारों ओर का वातावरण चंचल हो उठता। मलय पवन की मस्त गति की बड़ी प्रशंसा सुनते हैं, पर यहाँ जिसे देखो वह ऐसी मस्ती में था कि उनके आगे समीर भी हार मानता था।

वि०—शरीर से फूटने वाली गंध, जूड़े और हार में गुथने वाले पुष्प, शय्या-रचना में बिछने वाले फूल, वस्त्रों में लगने वाले इत्र, इनके अतिरिक्त और भी अनेक रूपों में सौरभ के फैलने की संभावना थी।

वह अनंग पीड़ा—अनंगपीड़ा—काम पीड़ा। अंग भंगी—विविध अंगों का मोड़ना और दिखाना। मरन्द, पुष्प रस। मदिर भाव—मस्ती। आवर्तन—घूमना।

अर्थ—देवताओं को सामने देख जब अप्सरियाँ किसी न किसी बहाने अपने विविध अंगों को मोड़ कर दिखाती थीं, तब इस बात का निर्णय हो जाता था कि वे काम-पीड़ा का अनुभव कर रही हैं। उनकी इस दुर्बलता से लाभ उठा भौंरों के समान बार-बार मस्त होकर उनके प्रेमी रसोन्मत्त मनाने आते—बार-बार उनसे प्रेम का रस प्राप्त करते।

वि०—किसी को आकर्षित करने के लिए जब कोई युवती जान बूझ कर मुस्किराती, नाक सिकोड़ती, भौंहें मटकाती, नेत्रों को चंचल करती या अँगड़ाई आदि लेती है, तब इसे रस की भाषा में 'हाव' कहते हैं। अंग-भंगियों के वर्णन से यहाँ ठीक यही तात्पर्य है।

सुरा सुरभिमय वदन—सुरासुरभिमय—मदिरा की गंध से पूर्ण।

वदन—मुख। कल—सुन्दर। बिछलता—फिसलता, तुच्छ प्रतीत होता था। पराग—पुष्प रज।

अर्थ—मदिरा की गंध उनके मुख से आती थी। रात में देर तक जागने के कारण आलस्य और प्रेम से भरी हुई उनकी आँखें लाल रहती थीं। उनके कपोल की पीली आभा के सामने कल्पवृक्ष का पीला पराग भी अपनी चिकनाहट, उज्ज्वलता और आभा में तुच्छ प्रतीत होता था।

विकल वासना-विकल—अतृप्त। प्रतिनिधि—प्रतीक (Symbol)

अर्थ—वे देवता नहीं थे, अतृप्त वासना के प्रतीक थे। आज वे सब समाप्त हो गये। अपने अन्तर में वासना की जो आग उन्होंने प्रज्ज्वलित की थी वह उन्हें चाट गई और अंत में वे इस जल में गल कर सदा को चले गये।

पृष्ठ १२

अरी उपेक्षा भरी—उपेक्षा—तिरस्कार। अतृप्ति—प्रेम की निरंतर प्यास। निर्बाध—निरंतर, बाधा रहित। द्विधा—चिंता। अपलक—बिना पलक गिराये।

अर्थ—देवताओं ने अपने जीवन में सब की उपेक्षा की। उनका मन भोग विलास से कभी भरा नहीं। विलास में वे निरंतर लीन रहे। किसी प्रकार की चिंता किए बिना टकटकी लगाकर अप्सरियों के रूप को वे निरखते रहते थे जिससे हृदय के प्रेम की भूख और उन्हें आँखों के आगे बनाये रखने की प्यास टपकती थीं।

बिछुड़े तेरे—स्पर्श—छूना। कातरता—अधीर विनय। मुख को सताना—बार बार के चुम्बन से कोमल मुख को दुखाना।

अर्थ—वे आलिंगन आज बिछुड़ गए। स्पर्श जो शरीर को रोमांचित कर देते थे अब सपने हो गये। देवता लोग बड़े अधीर होकर अप्सराओं से मधुर चुम्बनों के लिए विनय करते थे और कभी-कभी तो उन चुम्बनों की सीमा यहाँ तक बढ़ जाती थी कि वे तंग हो उठती थीं।

वि०—प्रत्येक बात की एक सीमा होती है । अधिक चुम्बन से परेशान एक बच्चे का वर्णन वर्ड् सवर्थ ने किया है :—

A six years' darling of a pigmy size !
See, where' mid work of his own hand he lies,
Fretted by sallies of his mother's kisses,
With light upon him from his father's eyes !

—*Ode on Intimations of Immortality.*

रत्न सौध के—रत्न सौध—रत्न महल । वातायन—झरोखा । मधु मदिर समीर—मकरंद से मस्त पवन । तिमिंगिल—एक प्रकार की सामुद्रिक मछली ।

अर्थ—उन रत्न भवनों के झरोखो में जिनमें होकर कभी मकरन्द से मस्त पवन आता था, चंचल सामुद्रिक मछलियों की भीड़ टकरा रही होगी ।

वि०—ये भवन अब जलमग्न हैं; अतः पवन के स्थान पर वहाँ मछलियों का टकराना स्वाभाविक है ।

विषम और विपरीत स्थिति में सुख और सौंदर्य की स्मृति और तीव्र हो उठती है जैसे सीकरी के किले के इस वर्णन में—

बालायें छिनती बाल जाल
फँसतीं जहाँ मन मतवाले ।
उफ ! उसी किले के कोण कोण में
अब मकड़ी बुनतीं जाले ।

आगे का वर्णन भी इसी पद्धति पर है ।

देव कामिनी के—नलिन—कमल ।

अर्थ—जब सुन्दरियाँ जिधर देख लेती थीं, उधर ही नीले कमलों की वर्षा होने लगती थी अर्थात् देवियों के नेत्र नील कमल जैसे थे ।

आज देवियों की कृपा-दृष्टि के उन स्थानों पर प्रलय मचाने वाली भयंकर वर्षा हो रही है।

वि०—सीता जी के नेत्रों की प्रशंसा में ऐसा ही भाव तुलसी ने प्रकट किया है

जहँ विलोक मृग सावन नैनी।
जनु तहँ बरस कमल-सित-सैनी॥

पृष्ठ १३

वे अम्लान कुसुम—अम्लान—खिले। शृंखला—जंजीर।

अर्थ—खिले हुए सुगन्धित पुष्पों और मणियों को लेकर मनोहर मालायें देवता लोग रचते थे और विलासिनी सुर-सुन्दरियों को उनसे जंजीर की तरह जकड़ देते थे।

वि० मालाओं से शरीर को बाँध देना एक प्रकार की प्रणय-क्रीड़ा है।

देव यजन के—यजन। पशुयज्ञ—पशु बलि। पूर्णाहुति—यज्ञ की समाप्ति पर आहुति। जलती—प्रकाशित हो रही है।

अर्थ—यज्ञ की समाप्ति पर पशुओं की आहुति से देवताओं के यज्ञ की ज्वाला भभक उठती थी। आज अग्नि की वे लपटें समुद्र की लहरों के रूप में प्रकाशित हो रही हैं। भाव यह कि जहाँ यज्ञ और बलि कर्म होता था वहाँ समुद्र लहरा रहा है।

उनको देख कौन—अंतरिक्ष—आकाश। व्यस्त—व्यापक, चारों ओर। हलाहल—विषैला, मारक। प्रालेय—प्रलय संबंधी।

अर्थ—उनकी इस वासनात्मक अधोगति को देखकर न जाने आकाश में कौन रोया कि उसके आँसू के रूप में प्रलय मचाने वाला चारों ओर ऐसा विषैला पानी बरसा जिससे सब नष्ट हो गये।

हाहाकार हुआ—क्रंदन—रोने की ध्वनि। कुलिश—वज्र, बिजली। दिगंत—दिशायें। बधिर—बहरी। क्रूर—निर्दय।

अर्थ—कठोर बिजली टूट-टूट कर गिरने लगी। इससे हाहाकार मच गया और रोने की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। बिजली की ऐसी निर्दय भीषण ध्वनि बार-बार छायी कि दिशायें भी बहरी हो गईं।

दिग्दाहों से धूम—दिग्दाह—दिशाओं में आग लगना। क्षितिज—वह स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी मिले प्रतीत होते हैं। सघन—बादलों से युक्त। गगन—आकाश। भीम—भयंकर। प्रकंपन—जोर से हिलना। झंझा—आँधी।

अर्थ—चारों दिशाओं में आग लग गई जिससे धुँआ उठ खड़ा हुआ। पर लगता ऐसा था मानों आकाश के कोनों में बादल घिर आये हों। उसी समय आँधी के झोंके आने लगे जिनसे आकाश में भरे बादल वेग से डोल उठे।

पृष्ठ १४

अंधकार में मलिन—मित्र—सूर्य। आभा—प्रकाश। वरुण—जल के देवता। व्यस्त—क्रुद्ध। स्तर—तह। पीन—स्थूल।

अर्थ—दिग्दाहों से उठे धुँए के मलिन अंधकार में सूर्य का प्रकाश पहिले धुँधला पड़ा, फिर पूर्ण रूप से विलीन हो गया। जल-देवता अपने में क्रुद्ध हो उठे और घोर वर्षा का भय उत्पन्न करने लगे। घने धुएँ की तह पर तह जमने से कालिमा स्थूल हो गयी।

वि०—कालिमा की स्थूलता का दृश्य किसी भी बड़े नगर में स्थित मिल की चिमनी से निकले धुएँ की तहों के जमने पर देखा जा सकता है।

पंचभूत का भैरव मिश्रण—पंचभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। भैरव मिश्रण—भयानक रूप में मिलना। शंपा—बिजली। शकल—टुकड़े। निपात—गिरना। उल्का—मशाल। अमर शक्तियाँ—पृथ्वी की चेतना शक्ति से भिन्न कोई अन्य अदृश्य शक्तियाँ।

अर्थ—पंचभूत भयानक रूप में मिल रहे थे अर्थात् पृथ्वी जो सबने

के लिए है वह फट रही थी, जल जो प्यास बुझाने के लिए है वह भवन डुबा रहा था, अग्नि जो भोजन पकाने के लिए है वह देवताओं के शरीर को भस्म कर रही थी। बिजली टूट कर गिरने लगी; अतः विद्युत्-खंड ऐसे प्रतीत हुए मानों आकाश की अमर शक्तियाँ अंधकार में छिपे प्रभात को मशाल लेकर ढूँढ़ रही हों।

बार बार उस--भीषण--भयंकर। रव--कड़क। विशेष--अत्यधिक। व्योम--आकाश। अशेष--समस्त, पूरा, सम्पूर्ण।

अर्थ--दिग्दाहों के धूम से ऊपर छाये स्थूल अंधकार को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो विद्युत् की भयंकर कड़क से पृथ्वी को अत्यधिक कंपित देख सम्पूर्ण आकाश उसे छाती से चिपटा कर धैर्य बँधाने के लिये नीचे उतर आया हो।

वि०--काव्य में पृथ्वी और आकाश का चिरंतन प्रेम प्रसिद्ध है :--

धरतिहिं जैस गगन सों नेहा।
पलटि आव बरसा रितु मेहा।

--जायसी

उधर गरजतीं--फेन--झाग। व्याल--सर्प।

अर्थ--उधर कुटिल मृत्यु के जाल के समान दिखाई देने वाली समुद्र की लहरें घोर ध्वनि कर रही थीं। वे इस प्रकार बढ़ रही थीं जैसे अपने फण फैला कर झाग उगलते हुए सर्प लपके आ रहे हों।

वि०--इन पंक्तियों में दोनों उपमायें अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध हुई हैं। लंबी पतली होने के कारण लहरें आकार में जाल के डोरों के समान दिखाई देती थीं और वे देवताओं को अपने में फँसा कर निगल जाती थीं, इसीसे उन्हें कुटिल काल का जाल कहा गया।

लहरें भी झाग उगल रही थीं और सर्प भी झाग उगलते हैं, लहरें भी नीली प्रतीत होती थीं और सर्प भी काले होते हैं, लहरें भी प्राण ले रही थीं और सर्प भी डस कर प्राण ले लेते हैं।

धँसती धरा—धँसती—नीचे को बैठती। धधकती—धक धक शब्द करती, फूटती। निश्वास—लपटें। संकुचित—सिमटना। अवयव—अंग। ह्रास—कमी।

अर्थ—पृथ्वी नीचे की ओर बैठने लगी। उसके भीतर की आग 'धक' 'धक' शब्द करती हुई ऊपर प्रकट हुई जो ज्वालामुखी पर्वत से फूटने वाली लपटों सी प्रतीत होती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे यहाँ-वहाँ से तल की ओर सिमटने के कारण भू-भाग कम होने लगा।

पृष्ठ १५

सबल तरंगाघातों से—सबल—तीव्र। तरंगाघातों—लहरों के थपेड़ों। व्यस्त—घबराना। कच्छप—कछुआ। ऊभचूभ—क्षुब्ध। विकलित—व्याकुल।

अर्थ—उस क्रुद्ध समुद्र की लहरों के तीव्र थपेड़ों से डाँवाडोल होकर पृथ्वी इस प्रकार व्याकुल और क्षुब्ध प्रतीत हुई जैसे प्रबल तरंगों की चोट से कोई बड़े आकार का कछुआ घबरा जाय (लुढ़के)।

बढ़ने लगा विलास—भैरव—भयंकर। जलसंघात—जलराशि। तरल—हिलता हुआ। तिमिर—अंधकार। प्रतिघात—चोट।

अर्थ—वह भयंकर जलराशि इस प्रकार बढ़ने लगी जैसे कामी मनुष्य के हृदय में भोग की लालसा तीव्र से तीव्रतर होती जाती है। उधर हिलते हुए तिमिर आकाश में फैले हुए अंधकार से प्रलय का पवन टकराता और उस पर चोट सी मार रहा था।

वेला क्षण क्षण—वेला—समुद्र का किनारा। क्षितिज—वह स्थान जहाँ आकाश पृथ्वी से मिला प्रतीत हो। उदधि—समुद्र। अखिल—समस्त। धरा—धरती। मर्यादाहीन—असीम।

हो गई और अब जल और आकाश मिले दिखाई देने लगे। इस प्रकार समुद्र आज समस्त पृथ्वी को डुबा कर असीम हो गया।

वि०—समुद्र की मर्यादा प्रसिद्ध है कि वह अपने तट को नहीं डुबाता और हिंदुओं का यह भी विश्वास है कि उसका जल न घटता है न बढ़ता। बादलों के रूप में जो जल कम होता है वह सरिताओं के रूप में आ जाता है। पर प्रलयकाल में समुद्र अपनी इस मर्यादा का परित्याग कर देता है।

करका क्रंदन करती—करका—ओले। क्रंदन—घोर ध्वनि। तांडवमय—विनाशकारी।

अर्थ—भीषण ध्वनि करते हुए ओले बरस रहे थे जिनके नीचे सब कुछ कुचला जा रहा था। पंचभूतों का यह विनाशकारी कर्म बहुत दिनों से चल रहा था।

पृष्ठ १६

एक नाव थी—डाँड़—नाव खेने का बल्ला। पतवार—नाव के पीछे की ओर लकड़ी का वह तिकोना भाग जो आधा जल में और आधा बाहर रहता है और जिससे नौका इधर-उधर मोड़ी जा सकती है। तरल—चंचल।

अर्थ—मेरे (मनु के) पास एक नाव थी। पर उस बाढ़ में न डाँड़ उसे आगे खिसका सकते थे और न पतवार किसी दिशा में मोड़ सकती थी। वह नौका उन चंचल लहरों में पागलों के सामन कभी उठती, कभी अपने आप ही आगे की ओर बढ़ जाती थी।

लगते प्रबल थपेड़े—कातरता—अधीरता। नियति—भाग्य।

अर्थ—लहरों के थपेड़े उसमें लगने लगे। सामने धुँधलापन छाया हुआ था जिसमें किनारा दिखाई नहीं देता था। मैं अधीर हो गया, निराश हो गया और उस समय यही सोच पाया कि अब भाग्य जिस पथ ले जाय वही ठीक है।

लहरें व्योम चूमतीं—व्योम—आकाश । चपलायें—बिजलियाँ । असंख्य—अगणित । गरल—विनाशकारी । खड़ी झड़ी—मूसलाधार घोर वर्षा । संसृति—लोक, संसार ।

अर्थ—लहरें उठ कर आकाश को छूने लगीं अर्थात् ऊँची ऊँची लहरें उठ रही थीं । ऊपर अगणित बिजलियाँ नृत्य करने लगीं । बादलों ने विनाशकारी मूसलाधार वर्षा हो रही ही थी । उससे बूँदों का एक संसार निर्मित हो गया । भाव यह कि बूँदों के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता था; अतः ऐसा प्रतीत होता था मानों यह संसार प्राणियों का निवास स्थल नहीं, बूँदों का निवास-लोक है ।

चपलायें उस जलधि—चपलायें—बिजलियाँ । जलधि—समुद्र । सिहरा—डरे हुए । चमत्कृत—चमकना, चकित होना । विराट—विशाल । बाड़व ज्वाला—समुद्र के भीतर रहने वाली अग्नि । खंड-खंड—विभाजित, टुकड़े होकर ।

अर्थ—उस डरे हुए समुद्र के जल पर जब बिजलियाँ चमकतीं, तब ऐसा लगता मानो समुद्र के भीतर की विशाल अग्नि अनेक अंशों में विभाजित होकर आ रही है ।

ऊपर उछल आये। जब जल के उस घर में ही खलबली मच गई, तब कौन एक क्षण को भी उसके किसी भाग में सुख पा सकता था!

वि०—कोई भी घर उसी समय तक अपने निवासियों को सुख दे सकता है जब तक वह स्वयं सुरक्षित है; पर जब वह स्वयं गिर पड़े, जल में डूब जाय अथवा उसमें आग लग जाय तब वह क्या करे? समुद्र आज आँधी, बिजली, वर्षा, ओलों से क्षुब्ध है, किसी को कैसे शरण दे?

पृष्ठ १७

घनीभूत ही उठे—घनीभूत (Condensed) जम जाना। रुद्ध—रुकना। चेतना—बोधशक्ति, संज्ञा। बिलखती—व्यग्र होती। क्रुद्ध—क्षुब्ध।

अर्थ—पवन का चलना बंद होगया मानों वह जम गया हो। इस वातावरण में श्वासों का चलना कठिन होगया। बोध-शक्ति मारी सी गई। दृष्टि को कुछ दिखायी नहीं देता था; अतः वह क्षुब्ध हो उठी—दुख उठी।

चि०—यह स्थिति अनुभव से संबंध रखती है। कल्पना कीजिए कि आपको एक ऐसी अँधेरी कोठरी में बंद कर दिया गया है जिसमें हवा किसी भी प्रकार प्रवेश नहीं कर सकती। थोड़ी देर में वहाँ आपकी साँसों, आपकी चेतना और आपकी दृष्टि की जो दशा होगी उसका अनुमान सहज में किया जा सकता है।

उस विराट आलोड़न—आलोड़न—समुद्र की क्षुब्ध दशा। प्रखर—तीव्र। पावस—वर्षा। ज्योतिरिंगण—जुगनू।

अर्थ—उस क्षुब्ध विशाल समुद्र के ऊपर चमकने वाले ग्रह और तारा या तो उसके ऊपर बहने वाले बुलबुले से प्रतीत होते थे या फिर उस प्रलयकालीन घोर वर्षा में जुगनू से टिमटिमाते थे।

प्रहर दिवस कितने—प्रहर—तीन घंटे का समय। सूचक—सूचना देने वाले। उपकरण—साधन।

अर्थ—कितने प्रहर बीते और कितने दिन, इसे अब कौन बताता। जिन साधनों से प्रहरों और दिनों की गणना होती है उनका तो कहीं चिह्न भी शेष न था।

वि०—प्राचीन काल में समय की मात्रा घंटा, मिनट, सैकिंड में गणित न कर प्रहर और घड़ियों से सूचित होती थी। एक दिन-रात में आठ प्रहर और चौंसठ घड़ियाँ होती थीं। उस खंड-प्रलय में समय की गणना करने वाले यंत्र पृथ्वी से नष्ट हो गये थे और आकाश में दिन-रात का पता देने वाले सूर्य-चन्द्रमा दिखाई नहीं दे रहे थे।

काला शासन चक—काला—अत्याचार पूर्ण। शासन चक—अधिकार। मत्स्य—मछली। पोत—नौका। मरण रहा—टूट जानी चाहिए थी।

अर्थ—मृत्यु का अत्याचारपूर्ण अधिकार कब तक रहा, स्मरण नहीं। इतने में एक विशाल सामुद्रिक मछली का चपेटा नौका में लगा। उस आघात से नौका टूट जानी चाहिए थी।

किन्तु उसी ने—उत्तरगिरि—हिमालय। ध्वंस—विनाश।

अर्थ—वह नौका बच गई और मत्स्य की उस टक्कर ने मुझे हिमालय की इस चोटी पर पहुँचा दिया। जैसे किसी मुर्दे की सांस लौट आवे, उसी प्रकार देवताओं का विनाश होते-होते सहसा बच गया।

अतीत की घटनाओं को दुहराये, उसी प्रकार सृष्टि के प्रारंभ में ही देवताओं के विनाश की शोकपूर्ण कहानी दुहराने का दुर्भाग्य मुझे प्राप्त है।

वि०—नाटक में घटनायें दो प्रकार की होती हैं। कुछ मंच पर दिखायी जाती हैं उन्हें 'दृश्य' कहते हैं, कुछ पात्रों द्वारा सूचित करा दी जाती हैं, उन्हें 'सूच्य' कहते हैं। क्योंकि जो घटनायें एक बार दिखाई जा चुकी होती हैं, उन्हें फिर दिखाने से रस क्षीण होता है और समय भी अधिक लगता है, इसी से आवश्यकता पड़ने पर 'विष्कंभ' की सृष्टि करते हैं। प्रथम अंक में घटना बढ़ भी नहीं पाती। यदि उसमें ही कोई करुण विष्कंभ हो तो इससे बड़े शोक की और क्या बात हो सकती है? इसी प्रकार मनु यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि सृष्टि का सुख हमने अभी पूर्ण रूप से भोगा भी न था कि प्रलय मच गयी और उस वैभव के विनाश की करुण कहानी को सुनाने का कार्य-भार मिला मुझ अभागे को।

ओ जीवन की—मरीचिका—मृगतृष्णा, मिथ्या, धोखा। अलस—आलस्यपूर्ण। विषाद—शोक। पुरातन—प्राचीन। अमृत—अमर, देवता। अगतिमय—बुरी दशा वाला, दुर्दशा ग्रस्त। मोहमुग्ध—मोहपूर्ण। जर्जर—चूर्ण। अवसाद—दुःख।

अर्थ—यह जीवन धोखामात्र है। मैं कायर हूँ, आलसी हूँ, शोक से पूर्ण हूँ। मैं अत्यन्त प्राचीन जाति से सम्बन्ध रख कर भी अमर कहला कर भी, दुर्दशाग्रस्त हूँ। मैं मोह से पूर्ण और शोक से चूर्ण हूँ।

वि०—मरुभूमि में सूर्य की तीव्र किरणों की चमक से मृगों को जल का भ्रम हो जाता है, इसे मृगतृष्णा कहते हैं। जीवन में भी सुख नहीं, सुख का भ्रम है। मिथ्या शब्द का अर्थ होता है दिखाई देने पर भी न होना।

मौन नाश विध्वंस—विध्वंस—विनाश। ठाँव—स्थान।

संसार के ताप से दग्ध प्राणी एक बालक के समान है जिसे मृत्यु की शीतल क्रोड़ में ही वास्तविक विश्राम मिलता है।

महादेवी का कहना है—

तू धूलभरा ही आया !

ओ चंचल जीवन-बाल ! मृत्यु जननी के अंक लगाया।

पृष्ठ १९

महानृत्य का—विषम—कठोर। सम—संगीत में उँगलियों की थाप और नृत्य में पद-चाप। स्पन्दन—हृदय की धड़कन। माप—नाप, मान, अन्त करने वाली। विभूति—महत्ता। सृष्टि—जन्म। अभिशाप—अहित, शाप।

अर्थ—हे मृत्यु तू सृष्टि में होने वाले किसी महानृत्य की कठोर पद-चाप है अर्थात् जहाँ उस नर्तक के चरण का दबाव कहीं पड़ा कि वस्तु मिट गई। तू समस्त चेतना का अन्त करने वाली है। तू जब आती है तब अहितकारिणी प्रतीत होती है, पर तेरी महत्ता से ही नवीन वस्तुओं का सदैव जन्म होता है।

वि०—'सम' और 'विषम' संगीत तथा नृत्य के दो पारिभाषिक शब्द हैं। संगीत में बाजे अथवा तबले पर उँगलियाँ शीघ्रता से चलती रहती हैं तब 'विषम' और जब वे कहीं स्वर को ज़ोर से दबातीं अथवा उनकी थाप पड़ती है तब 'सम' कहलाता है। नृत्य में जब उँगलियों के बल खड़ा चरण सर्राटे से घूमता तब 'विषम'; परन्तु जब उसका पूरा दबाव पृथ्वी पर पड़ता है तब 'सम' कहलाता है। कवि ने यहाँ विषम शब्द का भी प्रयोग किया है, पर सामान्य अर्थ में, पारिभाषिक अर्थ में नहीं। पारिभाषिक अर्थ में केवल 'सम' शब्द का प्रयोग किया है। मृत्यु किसी चरण का वह कठोर दबाव है जिससे कुचल कर प्राणधारी जीवन खो बैठते हैं।

'स्पन्दनों की माप' से तात्पर्य है कि प्रत्येक प्राणी को गिनकर कुछ

हृदय की धड़कनें भी जाती हैं। [illegible] पर अपनी रोक लगा देती है। इस प्रकार मृत्यु मानो जीवन की [illegible] का एक पैमाना है।

हिन्दुओं का विश्वास है कि जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म [illegible] होता है। [illegible] मृत्यु का अर्थ है जीर्ण वस्त्रों को बदल कर नवीन [illegible] धारण करना।

अन्धकार के अट्टहास—अट्टहास—ठठाकर हँसना, [illegible]। सुनाइ—सुनाई देना, प्रकट। [illegible]—[illegible]। नित्य—स्थायी।

अर्थ—जैसे कोई अँधेरे में बैठकर ज़ोर से हँसे तो उसका [illegible] कर हँसना तो सुनाई देगा, पर उस व्यक्ति को हम देख न पायेंगे। इसी प्रकार मृत्यु का आकार तो दिखाई नहीं देता, पर उसका [illegible] (विनाश कर्म) प्रकट है। यह एक सत्य है। मृत्यु का एक सुन्दर रहस्य यह भी है कि वह सृष्टि के कण-कण में छिपी हुई है अर्थात् सृष्टि का कण-कण नाशवान् है।

जीवन तेरा—क्षुद्र—छोटा। घन—बादल, सामने फैले हुए। सौदामिनी—बिजली। सन्धि—रेखा।

अर्थ—हे मृत्यु, जीवन तो तेरा एक छोटा सा अंश है। जैसे सामने फैले हुये बादलों में बिजली की सुन्दर रेखा क्षणभर चमक कर छिप जाती है उसी प्रकार जीवन भी अत्यन्त अल्प काल तक प्रकाशित रह कर तुझमें विलीन हो जाता है।

वि०—इस दृश्य के द्वारा मृत्यु की व्यापकता और जीवन की लघुता का भान होता है। जैसे बिजली छिप जाती है पर बादल बने रहते हैं, उसी प्रकार जीवन मिट जाता है पर मृत्यु बनी रहती है। यह भावना कितनी निराशापूर्ण है!

पवन पी रहा—निर्जनता—सूनापन। उखड़ी साँस—दूर हो गया दीन—करुण।

अर्थ—मनु के मुख से निकले शब्द पवन में समा रहे थे। उनकी ध्वनि से चारों ओर का सूनापन दूर हो गया। ये शब्द हिमशिलाओं से जब टकराये तब वहाँ एक करुण प्रतिध्वनि गूंज उठी।

वि०—'साँस उखड़ना' एक मुहावरा है जिसका एक अर्थ होता है मृत्यु। निर्जनता की मृत्यु का तात्पर्य हुआ निर्जनता नष्ट हो गई।

पृष्ठ २०

धू धू करता—धू धू करता—प्रबल वेग से। अनस्तित्व—अस्तित्व हीनता, सब कुछ मिट जाना। तांडव नृत्य—सृष्टि का संहार करने वाला शिव का नृत्य, विनाशकर्म। आकर्षण—पास खींचने की शक्ति। विद्युत्कण—विद्युत् के परमाणु (Electrons)। भारवाही—बोझा ढोने वाले। भृत्य—नौकर।

अर्थ—विनाश का ऐसे प्रबल वेग से नृत्य हुआ कि सब कुछ मिट गया। शून्य में चक्कर काटने वाले विद्युत् के परमाणुओं में अभी आकर्षण शक्ति नहीं आई थी; अतः जैसे कोई नौकर बोझ ढोता फिरता है, उसी प्रकार वे अपना भार ढोते घूमते थे।

वि०—'प्रसाद' ने अणुवाद (Atomic theory) की ओर अपनी रुचि प्रदर्शित की है। आगे भी कई स्थानों पर विद्युत्कणों का वर्णन किया है।

मृत्यु सदृश शीतल—शीतल—हृदयहीन (Cold)। परम व्योम—महाकाश। भौतिक—स्थूल, दिखाई देने वाले। कुहासा—कुहरा।

अर्थ—दृष्टि को हृदयहीन मृत्यु जैसी निराशा ही चारों ओर दिखाई देती थी। इतने में ऊपर महाकाश से जैसे स्थूल कण बरसें, उसी प्रकार घना कुहरा बरसने लगा।

वि०—'आलिंगन' एक वस्तु द्वारा दूसरी वस्तु को पूर्णरूप से छूने को कहते हैं। यहाँ दृष्टि का वस्तुओं को छूना या देखना।

वाष्प बना—वाष्प—भाप। जलसंघात—जल राशि। सौरचक्र—सूर्य मंडल। आवर्त्तन—घुमाव। प्रात—समाप्ति, प्रभात।

अर्थ—ऊपर से गिरती उन कुहरों की तहों को देख कर यह भी संदेह होता था कि कहीं यह भारी जल-राशि ही भाप बन कर तो नहीं उड़ी जा रही। कुछ हो, सूर्य-मंडल घूमता दिखाई दिया और नवीन प्रभात के साथ प्रलय का वह विषाद-पूर्ण वातावरण समाप्त हो गया।

वि०—हिलते हुए कुहरे में स्थिर रहने पर भी सूर्य-मंडल घूमता-सा प्रतीत होगा।

'निशा' यहाँ एक प्रतीक है जिसका अर्थ विषादपूर्ण वातावरण का है।

आशा

कथा—नवीन सूर्योदय के साथ प्रकृति का स्वरूप ही बदल गया। कोमल, सुनहली, उजली किरणें धरित्री पर पर छाने लगी। हिम गलने लगा। पृथ्वी निकल आई। पेड़-पौधे दिखाई देने लगे। शीतल पवन के मंद झकोरे आने लगे। समुद्र की क्षुब्ध लहरें शांत हो गईं। कोलाहल सो गया।

मनु ने आकाश की ओर दृष्टि उठाई तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई चित्रकार नीलम के प्याले में स्वर्णिम रंग घोल रहा हो। इस दृश्य ने उनकी चेतना को आध्यात्मिक अन्वेषण की ओर मोड़ा। उन्हें भान हुआ कि इस सृष्टि को परिचालित करने वाला कोई ऐसा परम पुरुष है जिसके आगे सूर्य, चंद्र, पवन, वरुण सब नगण्य हैं। निश्चित रूप से तो उसके संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता, पर वह महान् है, ब्रह्मांड का शासक है, परम सुन्दर है।

इस रमणीय प्रकृति को देख मनु का मन सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने की आशा से परिप्लावित हो गया और वे सोचने लगे कि यदि संसार में उनका नाम रहे तो कितना अच्छा हो!

मनु सामने दृष्टि डालते हैं। धान के सुनहले खेत खड़े हैं। आस-पास लताओं और शीतल झरनों की धाराओं से युक्त वह हिमालय दिखाई देता है जिसकी विविधवर्णी घनमालाओं से घिरी हिम-मंडित-चोटियाँ मुकुटधारिणी सम्राज्ञियों सी प्रतीत होती हैं। ऊपर की ओर ताकते हैं तो नीलाकाश अपनी ऊँचाई और विस्तार से चकित करता है। पर मनु को आकाश की शांति में जहाँ जड़ता और उसकी गंभीर

नीलिमा में केवल सूनेपन की प्रतीति होती है वहाँ पृथ्वी की नीचाई में आनन्द और हास्य की तरंगें परिलक्षित होती हैं। इस प्रकार वैराग्य को वे तिरस्कार और संसार के सुख को ललकभरी दृष्टि से देखते हैं।

एक गुहा में रहने योग्य परिष्कृत स्थान वे छाँटते हैं और यज्ञकर्म में लीन होते हैं। वायु-सेवन को जब निकलते हैं तब बचे अन्न का कुछ अंश कहीं दूर पर रख आते हैं जिससे किसी भूले-भटके अन्य प्राणी को सन्तोष मिले। स्वयं दुःख सहकर वे दूसरों का दुःख समझने लगे हैं।

तप-कर्म से छुटकारा पा वे अपने अभावपूर्ण जीवन पर विचार करने बैठते हैं, पर अभावपूर्ति का कोई मार्ग उन्हें दिखाई नहीं देता। उज्ज्वल किरणें, शीतल वायु, रम्य उषा, तारों-भरी रजनी सब जैसे उनके मन को अधीर बनाने के लिये ही बनी हैं। वे रात-दिन सोचते हैं—उनका भी कोई अपना होता!

पृष्ठ २३

उषा सुनहले तीर—सुनहले तीर—सुनहली किरणें। जय लक्ष्मी—विजय की देवी। उदित—प्रकट। पराजित—हारी हुई। काल रात्रि—प्रलय रात्रि, प्रलय का अंधकार। अंतर्निहित—छिपना, विलीन होना।

अर्थ—इधर उषा तीर जैसी सुनहली किरणें बरसाती हुई विजय की देवी के समान प्रकट हुई और उधर प्रलय का वह अन्धकार हार मान कर जल में विलीन हो गया।

वि०—इन पंक्तियों के पीछे युद्ध का पूरा चित्र छिपा हुआ है। युद्ध करने वालों में एक ओर कालरात्रि है दूसरी ओर उषा। उषा ने किरणों के नुकीले तीर बरसाकर कालरात्रि को ऐसा विचलित कर दिया कि वह अन्त में परास्त होकर जल में डूब मरी। उषा विजयिनी हो गई।

वह विवर्ण मुख—विवर्ण—कांतिहीन, फीका। त्रस्त—भयभीत। शरद्—एक ऋतु जो वर्षा के उपरांत क्वार और कार्तिक के महीनों में मानी जाती है। विकास—खिलना।

अर्थ—प्रलय से भयभीत प्रकृति का वह कांतिहीन मुख फिर उसी प्रकार खिल उठा जैसे वर्षा के अँधेरे दिनों के उपरान्त शरद् ऋतु के छाने से संसार खिल उठे।

वि०—किसी भयोत्पादक वस्तु के सहसा प्रकट और उसके दूर होने से जो परिवर्तन किसी प्राणी के मुख पर घटित होते हैं उन्हीं का स्वाभाविक वर्णन प्रथम दो पंक्तियों में है। कल्पना कीजिए कि आप किसी घने वन में हैं और सहसा दहाड़ता हुआ सिंह सामने से आ रहा है। पहले आपका चेहरा भय से एकदम फीका पड़ जायगा और यदि सौभाग्य से उसने आपको छोड़ दिया तो आप मुस्कराने का अवसर पा सकेंगे।

नव कोमल आलोक—आलोक—प्रकाश। हिम संसृति—हिम-राशि। सरोज—कमल। मधु—मकरंद। पिंग—पीला। पराग—पुष्प रज।

अर्थ—हृदय में स्नेह भर कर नवीन कोमल प्रकाश इस प्रकार हिमराशि पर फैलने लगा जिस प्रकार सफेद कमल पर मकरंद से सना पीला पराग बिखर जाता है।

वि०—यहाँ हिमराशि के लिए श्वेत कमल, सुनहले प्रकाश के लिए पीला पराग, अनुराग के लिए मकरंद आया है। दोनों ओर की ये तीनों वस्तुएँ वर्ण, कोमलता और रस में कैसी सम बैठी हैं!

धीरे धीरे—आच्छादन—तह। धरातल—पृथ्वीतल। वनस्पति—पेड़-पौधे।

अर्थ—धीरे धीरे पृथ्वीतल से बर्फ़ की तहें गल कर दूर होने लगीं। उनके नीचे दबे पेड़-पौधे जब उस जल से भीग कर फिर हिलते दिखाई

दिए तब ऐसा प्रतीत होता था मानो देर से आलस्य में पड़े वृद्ध अब जो सोकर उठे हैं तो शीतल जल से अपना मुँह धो रहे हैं।

वि०---यहाँ से लेकर आगे की सोलह पंक्तियों में प्रकृति वर्णन के साथ एक नव विवाहिता कोमल रमणी के जागरण का अत्यन्त मनोरम चित्र प्रसाद ने खींचा है।

नेत्र निमीलन करती—निमीलन—पलकों का खोलना बंद करना। प्रबुद्ध—सचेत। लहरियों की अँगड़ाई—तरंगों की चंचलता। सोने जाती---शान्त होने लगी।

अर्थ---जैसे कोई रमणी पूर्ण रूप से जगने के पहले कभी अपनी सुकुमार पलकें खोलती, कभी उन्हें बन्द कर लेती और फिर धीरे से खोल देती है, उसी प्रकार प्रकृति की वस्तुएँ पहले धीरे-धीरे उगीं और फिर पूर्ण विकास को प्राप्त हुईं। मानो प्रकृति क्रमशः सचेत हो गई। इधर जैसे कोई अँगड़ाई लेकर सो जाता है, उसी प्रकार समुद्र की चंचल लहरें धीरे-धीरे शान्त हो गईं।

वि०—इन पंक्तियों में स्पष्ट ही एक कोमलांगी के कलात्मक जागरण और अँगड़ाई लेकर फिर पल भर को निद्रामग्न होने का आकर्षक दृश्य है।

अँगड़ाई लेने में शरीर ऐंठ कर तिरछा हो जाता है, इसी से लहरों की अँगड़ाई का अर्थ लहरों की चंचलता हुआ।

पृष्ठ २४

सिंधु सेज पर—वधू—दुलहिन। हलचल—कष्ट।

अर्थ—अपार जलराशि में से अभी निकली थोड़ी-सी पृथ्वी ऐसी लगती थी मानो समुद्र की सेज पर कोई दुलहिन सिकुड़ी-सी बैठी हो। प्रलय-रात्रि में जो कष्ट उसे मिला है उसे याद कर कर के उसने उसी प्रकार मरोड़ में भर कर मान किया है जैसे कोई नव विवाहिता बाला पूर्व रात्रि में अपने पति के निर्दय व्यवहार पर—सुकुमार शरीर के निर्दयता

से झकझोरे जाने पर—ऐंठ कर इस मान-भावना से भर जाय कि चाहे कुछ हो इनसे अब नहीं बोलूंगी।

वि०—इन पंक्तियों में नारी जीवन की प्रथम स्वाभाविक लज्जा और मान का मधुरतम दृश्य है।

देखा मनु ने—रंजित—मनोहर, रंगीन। विजन—जनहीन, सूना। श्रांत—थका हुआ।

अर्थ—मनु ने उस भू-भाग के एक जनहीन, नवीन, मनोहर, एकान्त स्थल पर दृष्टि डाली। वहाँ की शान्ति को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो उस स्थान का कोलाहल शीतल बर्फ़ के समान जड़ हो गया हो या फिर थके पथिक के समान आँखों में गहरी नींद भर कर सोगया हो।

इंद्रनील मणि—इन्द्रनील मणि—नीलम। चपक—प्याला। सोम—चन्द्रमा, सोम रस।

अर्थ—प्रभातकालीन एवं सोमहीन (चन्द्र रहित) नीला आकाश ऐसा प्रतीत होता था जैसे किसी ने नीलम का कोई बड़ा प्याला जिसमें से सोम रस भर चुका है ऊपर उलटा लटका दिया हो। भय के उपस्थित होने पर जैसे मनुष्य की साँस पल भर को रुक जाती है और उसके दूर होने पर जैसे वह कोमलता से फिर चलने लगती है उसी प्रकार प्रलय से भयभीत जो पवन रुक गया था वह उस खटके के दूर हो जाने पर फिर कोमल साँसें लेने लगा अर्थात् पवन के मृदु झकोरे अब फिर आने लगे।

वह विराट था—विराट—महान्। हेम—सोना। कुतूहल—विस्मय। राज—विस्तार।

अर्थ—उस महान् (भगवान्) ने पृथ्वी को नवीन रंग से रँगने के लिए सुनहली उषा के रूप में आकाश के उल्टे प्याले में सोना घोला। इस दृश्य पर मनु के हृदय में सहसा एक प्रश्न उठा। इस रंग को

घोलने वाला यह कौन है? इसके उपरांत उनका विस्मय बढ़ता ही गया।

पृष्ट २५

विश्वदेव सविता—विश्वदेव—विश्वा के दस देव-पुत्र : वसु,सत्य, क्रतु, दक्ष, काल, काम, धृति, कुरु, पुरुरवा और माद्रव। सविता—सूर्य। पूषा—पशुओं का पोषक देव। सोम—चन्द्रमा। मरुत—वायु। चंचल पवमान—आँधी। वरुण—जल के देवता। अम्लान—कभी भंग न होने वाला, शाश्वत।

अर्थ—यह किसका कभी भंग न होने वाला शासन है जिसमें उस चरम शासन की आज्ञा पालन करने के लिये विश्वदेव नाम से प्रसिद्ध दस देवता, सूर्य, पशु-देव, चन्द्र, वायु, आँधी और जलदेव निरन्तर चक्कर काटते रहे हैं।

वि०—सुदूर प्राचीन काल में अनेक देवताओं का नामकरण हुआ था। प्रकृति के प्रत्येक तत्व के पीछे जैसे एक देवता उस समय छिपा हुआ दिखाई देता था। कहीं-कहीं एक ही नाम अनेक शक्तियों के लिये प्रयुक्त हुआ है जैसे विश्वदेव विश्वा के पुत्रों के लिये भी कहते हैं, ईश्वर को भी, विष्णु को भी, शिव को भी। पूषा सूर्य के लिए भी आता है, शिव के लिये भी, पशुओं के पोषक देव के लिये भी और इन्द्र के लिये भी।

विश्वदेव के सम्बन्ध में लिखा है :

वसुः सत्यः क्रतुर्दक्षः कालः कामो धृतिः कुरुः।
पुररवा माद्रवश्च विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः।

किसका था भ्रू भंग—भ्रू भंग—भौंहें टेढी करना।

अर्थ—वह कौन है जिसकी ज़रा सी भौंहें टेढ़ी होने से वह प्रलय मच गई जिसमें ये सब घबरा गये। इन्हें तो हम प्रकृति की शक्तियों के प्रतीक समझते थे, पर ये तो बड़े दुर्बल सिद्ध हुए।

वि०—जिसकी किंचित अप्रसन्नता से सूर्य वरुण जैसी शक्तियाँ

काँपती हैं वह न जाने कितना शक्तिमान् है, ऐसी ध्वनि इन पंक्तियों से निकलती है।

विकल हुआ सा—भूत—प्राणी।

अर्थ—प्रलय में पृथ्वी के समस्त चेतन प्राणियों का समूह व्याकुल होकर काँप रहा था। उनकी अत्यन्त बुरी दशा हो गई। उनकी विवशता देखने ही योग्य थी। उनसे कुछ भी करते-धरते न बना।

वि०—चेतन समुदाय से तात्पर्य यहाँ मुख्यतः देव जाति के प्राणियों से है।

देव न थे हम—तुरंग—घोड़ा। पुतले—वस्तु।

अर्थ—समझ में यह आता है कि हम जो अपने को देवता कहते थे वह व्यर्थ बात थी और सूर्य चन्द्र वरुण आदि को जो देवता समझते थे वह भी भूल से। न हम शाश्वत हैं न ये देवता। सब परिवर्तनशील हैं। यह दूसरी बात है कि जैसे रथ को खीचने वाला घोड़ा यह समझ ले कि रथ उसकी इच्छा से चल रहा है उसी प्रकार अपने अभिमान में कोई यह समझ बैठे कि संसार उसकी इच्छा पर निर्भर है; पर घोड़ों को जैसे चाबुक चलाता है उसी प्रकार हम सबको भी किसी महाशक्ति के इच्छानुसार विवश होकर कर्म में लीन होना पड़ता है। अन्तिम शासक हम नही हैं, केवल वह ही है।

पृष्ठ २६

महानील इस—व्योम—आकाश। अन्तरिक्ष—शून्य, पृथ्वी से ऊपर का सूना स्थान। ज्योतिर्मान—प्रकाश से पूर्ण। ग्रह—चन्द्र मंगल आदि। नक्षत्र—अन्य छोटे तारे। विद्युत्कण—विद्युत् परिमाणु (electrons)। संधान—खोज।

अर्थ—ऊपर महाकाश में प्रकाश से पूर्ण सूर्य चन्द्र आदि ग्रह तथा अन्य अगणित तारे और उसके नीचे शून्य में विद्युत्कण किसे खोजते से घूमते हैं?

छिपजाते हैं—तृण—घास के दल । वीरुध—लताएँ ।

अर्थ—सूर्य, चन्द्र, तारे छिप जाते हैं और न जाने फिर किसके आकर्षण से खिंचकर निकल आते हैं ? वह कौन है जिसके रस से सिंचकर लताएँ और घास के दल हरियालापन प्राप्त करते हैं ?

वि०—यहाँ मनु तो सूर्य, चन्द्र तारागण के छिपने और प्रकट होने से केवल इतना ही भाव ग्रहण कर रहे हैं कि ये भगवान् को खोजते कहीं अदृश्य हो जाते है, पर उनके प्रेम का आकर्षण इतना प्रबल है कि बार-बार फिर उन्हीं स्थानों पर नये सिरे से उन्हें खोजने के लिये आना पड़ता है । पर कवि का वह कौशल भी सराहनीय है कि उसने अपनी बात को विज्ञान के अनुकूल रखा है । ये नक्षत्र शून्य में लटके हैं और आकर्षण शक्ति के द्वारा टिके हुये हैं । विद्युत्कणों में तो आकर्षण शक्ति होती ही है ।

सिर नीचा कर—सत्ता—शक्ति । प्रवचन—व्याख्या करना, घोषणा करना । अस्तित्व—शक्ति ।

अर्थ—सिर झुकाकर सारा संसार जिसकी शक्ति को स्वीकार करता है वह कहाँ है ? और कहाँ है वह जिसके सम्बन्ध में चुप रहने पर भी हम घोषित करते हैं कि 'वह है' ।

वि०—चुपे रहने वाला बोलता ही नहीं, अतः घोषित क्या करेगा; पर बिना बोले हुये भी क्योंकि 'हम हैं' अत: 'हमें बनाने वाला कोई है अवश्य' यह बात स्वत: सिद्ध है ।

हे अनंत रमणीय—रमणीय—सुन्दर ।

अर्थ—मेरी शक्ति नहीं जो मैं यह बता सकूँ कि तुम कौन हो ? यह बात स्वयं विचार शक्ति के परे है कि तुम्हारा स्वरूप क्या है ? तुम्हारी विशेषतायें क्या हैं ? हाँ, ऐसा लगता है कि तुम परम सुन्दर अवश्य हो ।

हे विराट—

अर्थ—हे महान् ! हे इस विश्व के शासक ! 'तुम कुछ हो' ऐसा

तो मुझे आभासित होता है। और सम्भवतः मन्द गम्भीर दृढ़ स्वर से समुद्र भी यही गीत गारहा है।

वि०—यहाँ विश्वदेव पिछले विश्वदेव शब्द से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

पृष्ठ २७

यह क्या मधुर—झिलमिल—रह-रह कर प्रकट होना। सदय कोमल। व्यक्त—प्रकट। प्राण समीर—प्राण वायु; प्राण पोषक।

अर्थ—मेरे कोमल हृदय में अत्यधिक अधीरता भरने वाली मधुर स्वप्न के समान रह रह कर प्रकट होने वाली यह कौन है? अरे! यह तो प्राणों को सुख देने वाली आशा है जो आज व्याकुलता के रूप में प्रकट हुई हैं।

वि०—जिसका हृदय जितना अधिक कोमल होता है, वह उतना अधिक दुःखी रहता है—अपने लिये भी दूसरों के लिये भी।

चिन्ता के समान आशा के भी दो पक्ष हैं। वह आगामी सुख या भविष्य में इच्छा पूर्ति की सम्भावना जगाती है इससे तो हृदय में प्रसन्नता रहती है, पर उस सुख को हम शीघ्र से शीघ्र हस्तगत करना चाहते हैं, अतः प्रयत्न-काल में अधीरता और व्याकुलता भी पीछा नहीं छोड़तीं।

आशा कभी पूरी होती है, कभी नहीं भी होती, पर उसका उदय सुखकारी है इसीसे उसे 'मधुर स्वप्न' कहा गया।

यह कितनी स्पृहणीय—स्पृहणीय—वांछनीय, प्रिय। मधुर जागरण—सुख की रातों का जगना। छविमान—सुंदर। स्मित—मंद मुसिकान। मधुमय—मधुर।

अर्थ—आशा का हृदय में होना कितना प्रिय प्रतीत होता है! और इसका जगना वैसा ही सुंदर है जैसा सुख की रातों का जगना। अंतर में यह धीरे-धीरे उसी प्रकार उठती है जैसे ओठों पर मुसिकान की

लहरियाँ मंद-मंद उठती हैं। फिर यह हृदय में वैसे ही तीव्र गति से घुमड़ती है जैसे कोई मीठी तान कहीं चक्कर काटती है।

वि०—इन पंक्तियों में पहले किसी सुंदरी के सोने, फिर जगने, फिर धीरे उठने और फिर नाचने लगने का क्रमशः वर्णन है। आशा भी हृदय में सोयी रहती है, फिर जगती है, फिर उठती और इसके पश्चात् हृदय में मस्त गति से नृत्य करने लगती है। प्रसाद की पंक्तियों में ऐसे न जाने कितने मधुर दृश्य निहित रहते हैं।

जीवन जीवन की—दाह—जलन। नत होना—झुकना, चढ़ना।

अर्थ—हृदय में एक मधुर जलन का अनुभव कर रहा हूँ जो पुकार कर यह कह रही है कि जीवन चाहिए। इस नवीन प्रभात के दर्शन से जो शुभ उत्साह मेरे हृदय में भर गया है उसे किसके चरणों पर चढ़ा दूँ?

वि०—दाह (आग) को शांत करने के लिए जीवन (जल) चाहिए ही।

मनु मरते मरते बचे हैं; अतः उनके जीवन में भी यह दिन एक नवीन दिन है। जैसे दुःख में वैसे ही सुख में भी मनुष्य को कोई न कोई साथी चाहिए।

मैं हूँ यह—शाश्वत—सदैव।

अर्थ—'मेरी भी कुछ सत्ता है' यह बात वरदान के समान मेरे कानों में क्यों गूँजने लगी? और अब तो मेरी भी ऐसी इच्छा है कि मेरा नाम आकाश में सदैव गूँजता रहे।

पृष्ठ २८

यह संकेत कर रही—यह—आशा। किसकी सत्ता—अपनी (मनु की) सत्ता। विकास—उन्नति। प्रखर—तीव्र, बलवती।

अर्थ—यह आशा किसके जीवन के सरल विकास का संकेत कर रही है? भाव यह कि यह आशा इस बात का विश्वास मुझे दिलाना

चाहती है कि मेरी उन्नति बड़ी सरलता से हो सकती है। सुख-भोग करते हुए जीवित रहने की लालसा आज इतनी बलवती क्यों हो उठी है ?

तो फिर क्या—वेदना—पीड़ा।

अर्थ—तब क्या मुझे अभी और जीवित रहना चाहिए ? इस जीवित रहने से लाभ ? हे प्रभु ! कम से कम मुझे इतना तो बता दो कि कभी न मिटने वाली इस पीड़ा को लेकर मेरे प्राण कब निकलेंगे ?

× × × ×

एक यवनिका हटी—यवनिका—परदा। पट—परदा। आवरण मुक्त—ढकी वस्तु का खुलना।

अर्थ—पवन के द्वारा जैसे किसी जादू के परदे के हट जाने से भीतर कोई विलक्षण दृश्य दिखाई दे, उसी प्रकार प्रलय के परदे के हट जाने से प्रकृति का जो सौंदर्य ढक गया था वह पूर्ववत् प्रकट हो गया और वह एक बार फिर हरी-भरी दिखाई दी।

स्वर्ण शालियों की—शालियों—धानों। कलमें—डंठल। शरद इंदिरा—शरद लक्ष्मी, शरद ऋतु की देवी।

अर्थ—सुनहले धानों के डंठल बहुत दूर तक फैले हुए थे। ऐसा लगता था मानो इनके पार शरद की लक्ष्मी का कहीं कोई मंदिर है जिस तक पहुँचने के लिए यह एक मार्ग है।

वि०—दूर से धान के खेतों पर दृष्टि डालने से एक सुनहली सड़क सी दिखाई देती होगी जिसे शरद ऋतु की वैभववान् देवी तक पहुँचने का पथ मानना न्यायसंगत है।

छप्ृ २९

विश्व कल्पना सा—विश्व कल्पना—संसार की सृष्टि कैसे हुई यह कल्पना। निदान—कारण। अचला—पृथ्वी। निधान—खान।

अर्थ—(हिमालय) संसार की सृष्टि की कल्पना जैसा ऊँचा, सुख, शीतलता और संतोष को देने वाला तथा डूबती हुई पृथ्वी के लिये मणि-रत्न-जटित वह अंचल सिद्ध हुआ, जिसे पकड़ कर वह बची हुई है।

वि०—इन सब विशेषणों का कर्त्ता 'हिमालय का शरीर' है जो आगे के छंद में दिया हुआ है।

'संसार की रचना कैसे हुई' इस सत्य तक पहुँचने वाली कल्पना जितनी उत्कृष्ट होगी, उतना ही ऊँचा हिमालय है। प्रसाद ने हिमालय की ऊँचाई फिटों में नहीं बतलाई, क्योंकि यह ठीक नाप-जोख या पैमाइश वाला कथन काव्य के अन्तर्गत न आता। सिंघलदीप के वर्णन में जायसी ने भी घोड़ों की चाल या उनके सिर उटाने को फिट-इंच में नहीं बताया

मन ते अगमन डोलहिं बागा, लेत उसास गगन सिर लागा।

—पद्मावत

डूबता हुआ आदमी पास में खड़े व्यक्ति का कपड़ा पकड़ लेता है। मनु समुद्र में से निकली हुई पृथ्वी को हिमालय से सटी देखते हैं। इसीसे यह कल्पना ठीक उतरी है।

अचल हिमालय का—अचल—शांत। शोभनतम—सुन्दरतम। कलित—युक्त। शुचि—पवित्र। सानु—चोटियों वाला, पथरीला। पुलकित—रोमांचित। अधीर होना—आनन्द से सिहर उठना।

अर्थ—हिमालय का पवित्र, शांत, पथरीला, सुंदर शरीर था जिस पर लतायें उगी हुई थीं। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो यह पर्वत निद्रा में मग्न है और किसी सुख-स्वप्न को देखकर रोमांचित हो उठा है, सिहर उठा है।

उमड़ रही जिसके—नीरवता—शांति। विभूति—वैभव। अनुभूति—अनुभव।

अर्थ—हिमालय की तलहटी में निर्मल शांति का वैभव छाया हुआ था। पर्वत से झरनों की जो शीतल धारायें फूट रही थीं वे ऐसी प्रतीत होती थीं मानो गिरिवर ने अपने जीवन-भर के अनुभव को सब के कल्याण के लिये लुटा दिया है।

उस असीम नीले—नीले अंचल—नीले आकाश में।

अर्थ—झरनों की वे धारायें ऐसी भी प्रतीत होती थीं मानो उस अनंत नीलाकाश में किसी की मुसिकान देख कर हिमालय की हँसी मधुर ध्वनि करती हुई फूट उठी हो।

वि०—किसी को हँसते देख कर हँसी आ ही जाती है।

प्रभात-काल का वर्णन चल रहा है अतः आकाश की हँसी का तात्पर्य इस स्थान पर सूर्य की उज्ज्वल आभा से है।

शिला संधियों में—शिला संधि—दो चट्टानों के बीच का रिक्त स्थान। दुर्भेद्य—जिसका भेदन कठिन हो। चारण—भाट।

अर्थ—चट्टानों के बीच में जो रिक्त स्थान था उसमें टकरा कर पवन गूँज भर रहा था। जैसे किसी सम्राट् के गुणों का वर्णन कोई भाट करता है उसी प्रकार उस गूंज से पवन यह प्रचार करता प्रतीत होता था कि इस पर्वत को कोई भेद नहीं सकता, यह अडिग है, यह दृढ़ है।

पृष्ठ ३०

संध्या घनमाला—घनमाला—बादलों का समूह। छींट—रंग-बिरंगा बेल बूटेदार कपड़ा। गगन चुंबिनी—आकाश को चूमने वाली, बहुत ऊँची। शैल श्रेणियाँ—पर्वत की चोटियाँ। तुषार—बर्फ़। किरीट—मुकुट।

अर्थ—हिमालय की चोटियाँ बहुत ऊँची थीं मानो आकाश को छू रही हों। उन पर घिरे संध्या के रंग बिरंगे बादल ऐसे लगते थे मानो उन्होंने छींट की चादर ओढ़ ली है और बर्फ़ उन पर ऐसा प्रतीत होता जैसे उनके शीश का मुकुट हो।

वि०—प्रकृति में जहाँ चारों ओर की परिस्थिति को एक सूत्र में गूंथ दिया जाता है उसे संश्लिष्ट या चित्रमय चित्रण कहते हैं। यह वर्णन वैसा ही है। कहाँ बर्फ़ीली चोटियाँ और कहाँ रंगीन बादल! पर सबको मिलाकर मुकुट धारण किए एक रानी का चित्र आँखों के सामने आता है। इस प्रकार के चित्र अंकित करने के लिए बड़ी क्षमता की आवश्यकता है।

विश्व मौन गौरव—प्रतिनिध—प्रतिमूर्ति (Representative) विभा—कांति। प्रांगण—आँगन।

अर्थ—बर्फ़ से ढकी वे चोटियाँ ऐसी लगती थीं मानो कांति से भरी हुई संसार के मौन गौरव और महत्व की प्रतिमूर्तियाँ हिमालय के विस्तृत आँगन में चुपचाप बैठी सभा कर रही हैं, भाव यह कि हिमालय की चोटियों के दर्शन से शांति झरती थी, गौरव टपकता था, महत्व बरसता था।

वह अनंत नीलिमा—व्योम—आकाश। दूर दूर—विस्तृत। भ्रांत—भूला रहना, अपने को बहुत कुछ समझना।

अर्थ—आकाश का वह अनंत नीलापन जिसकी शांति यद्यपि जड़ता की दशा को पहुँच गई है, पर जो पृथ्वी से केवल बहुत ऊँचा तथा अधिक विस्तृत होने के कारण अभावमय (सूना) होने पर भी अपने को बहुत कुछ समझता है।

वि०—यहाँ कवि आकाश और पृथ्वी की तुलना करना चाहता है। यह सत्य है कि अनंत नीलिमा से भरा गगन पृथ्वी से आकार में बड़ा भी है और ऊँचा भी। पर वह केवल अभावमय है। आकाश सूना है। जिसे आकाश कहते हैं वह कोई वस्तु है ही नहीं। दृष्टि सूने में इससे आगे देख नहीं सकती, अतः धुँधलापन घना होकर नीला सा प्रतीत होता है। वहाँ शांति है, पर जड़ वस्तुओं की सी जिसका कोई मूल्य नहीं। पृथ्वी छोटी और नीची है; पर उसमें अनंत वैभव है।

उसे दिखातीं—उल्लास—आनंद। अजान—सरल। तुंग—ऊँची। सुढर—सुडौल। उठान—चोटियाँ।

अर्थ—हिमालय की वे सुडौल चोटियाँ मानो विश्व में व्याप्त आनंद की ऊँची ऊँची लहरें थीं जो आकाश को यह बतला रही थीं कि तू जहाँ जड़ और अभावपूर्ण है वहाँ जगत में सुख है, हास्य है, सरल प्रसन्नता है।

थी अनंत की गोद—अनन्त—विस्तृत पर्वत। विस्तृत—लम्बी-चौड़ी। गुहा—गुफा। रमणीय—मनोरम। वरणीय—रहने योग्य।

अर्थ—वहीं एक लम्बी चौड़ी मनोरम गुफ़ा थी जो उस विस्तृत पर्वत की गोद जैसी लगती थी। उसमें मनु ने अपने रहने योग्य एक सुंदर स्वच्छ स्थान बनाया।

पृष्ठ ३१

पहला संचित अग्नि—संचित—इकट्ठी की गई। द्युति—प्रकाश।

अर्थ—निकट में ही किसी प्रकार बहुत पहले से इकट्ठी की गई अग्नि जल रही थी जिसकी आभा सूर्य की किरणों के समान फीकी थी। उस आग को मनु ने सुलगाया तो वह शक्ति और जागरण का चिह्न बन कर धक् धक् ध्वनि करती हुई जलने लगी।

वि०—मनु के प्रज्ज्वलित करने से पहले आग मंद थी, अतः अशक्त और सोयी हुई थी, पर जब यज्ञ-कर्म के लिये उन्होंने उसे धधकाया तो वह जग उठी और शक्तिमयी हो गयी।

जलने लगा निरंतर—अग्निहोत्र—हवन, यज्ञ। समर्पण—लीन करना, लगाना।

अर्थ—समुद्र के किनारे मनु नित्य हवन करते। इस प्रकार अत्यंत धैर्यपूर्वक अपने जीवन को उन्होंने तप करने में लगाया।

सजग हुई फिर—संस्कृत—संस्कार। देवयजन—देवताओं के

निमित्त किया गया यज्ञ। वर—श्रेष्ठ; सात्विक। माया—आकर्षण। कर्ममयी—कर्मकांड संबंधी। शीतल—मधुर। छाया—प्रभाव।

अर्थ—मनु में दैवी संस्कार फिर जाग उठे। देवताओं को प्रसन्न करने के लिये जब वे यज्ञ करने लगे तो यह सात्विक आकर्षण उन पर कर्मकांड का मधुर प्रभाव डालने लगा अर्थात् मनु फिर एक बार कर्म-कांड में प्रवृत्त हुए।

वि०—यज्ञादिक क्रियाओं में लीन होना कर्मकांड कहलाता है। यज्ञ करने से मन शुद्ध होता है जिससे प्राणी उपासना करने के योग्य बनता है।

उठे स्वस्थ मनु—स्वस्थ—स्फूर्तियुक्त। अरुणोदय—सूर्य का उदय होना। कान्त—आभाभरा। लुब्ध—मुग्ध। विभूति—वैभव, सौंदर्य। मनोहर—रम्य।

अर्थ—तप समाप्त करने पर मनु उसी प्रकार स्फूर्तियुक्त होकर उठे जैसे आकाश के कोने में आभाभरा बालसूर्य उगता है। वे प्रकृति के रम्य शांत सौंदर्य को मुग्ध दृष्टि से देखने लगे।

पृष्ठ ३२

पाक यज्ञ करना—पाक यज्ञ—नवीन घर में रहने के लिए उसकी शुद्धि और अपने कल्याण के निमित्त किया जाने वाला यज्ञ। शालि—धान। वह्नि ज्वाला—अग्नि की लपटें।

अर्थ—मनु ने निश्चय किया कि वे पाक-यज्ञ करेंगे; अतः उसके लिये वे खेत से बीन कर धान लाये। उसके उपरांत यज्ञ प्रारंभ हुआ और अग्नि की लपटों ने ऊपर धुएँ की एक तह जमा दी।

शुष्क डालियों से—अर्चियाँ—लपटें। समिद्ध—प्रदीप्त हो उठीं। समृद्ध—भर जाना।

अर्थ—वृक्षों की सूखी डालों से अग्नि की लपटें प्रदीप्त हो उठीं। आहुतियों के सुगंधित नवीन धुएँ से वन और आकाश भर गया।

और सोचकर—लीला रचना—कुछ करते हुए दिन बिताना।

अर्थ—और अपने मन में यह सोच कर कि जिस प्रकार प्रलय के आघात से मैं बच गया हूँ, उसी प्रकार कुछ आश्चर्य नहीं यदि कोई दूसरा प्राणी भी कहीं जीवन बिता रहा हो।

अग्निहोत्र अवशिष्ट—अग्निहोत्र—यज्ञ, हवन, होम। अवशिष्ट बचा हुआ। तृप्त—प्रसन्न। सहज—आंतरिक।

अर्थ—यज्ञ की समाप्ति पर जो अन्न बचता उसमें से वे थोड़ा सा दूर पर कहीं रख आते थे। इस अनुमान से उन्हें बड़ा आंतरिक सुख मिलता था कि कोई भी अपरिचित प्राणी इसे पाकर संतुष्ट होगा।

वि०—निष्काम भाव से जो उपकार किया जाता है उसके बोध पर अत्यंत निर्मल हार्दिक आनन्द की प्राप्ति होती है। ऐसे सुख को सहज सुख कहते हैं।

दुख का गहन—गहन—गहरा, भारी। पाठ पढ़ना—ज्ञान होना। सहानुभूति—दूसरे के दुःख में दुःख का अनुभव करना। नीरवता—शांत मन। मग्न - तन्मय।

अर्थ—उन्होंने स्वयं भारी दुःख उठाया था, इसीसे वे दूसरों के दुःख में दुःखी होना सीख गए थे। इधर अकेले बैठे वे अपने शांत मन में गहरे उतर कर तन्मय हो जाते थे।

पृष्ठ ३३

मनन किया करते—मनन—चिंतन।

अर्थ—प्रज्ज्वलित यज्ञकुन्ड के निकट बैठकर वे चिंतन करते रहते थे। उस सूनेपन में बैठे वे ऐसे लगते मानों स्वयं तप ही शरीर धारण करके वहाँ रह रहा हो।

नोटः—तपस्या का प्रयोग यहाँ कवि ने पुल्लिग में किया है जो अशुद्ध है। पुल्लिंग शब्द का ही प्रयोग करना था। ऐसी दशा में 'तप' शब्द को किसी प्रकार पंक्ति में खपाना था।

फिर भी धड़कन—धड़कन—लालसाओं का खटकना। अस्थिर अनिश्चित। दीन—अभावपूर्ण।

अर्थ—इतने पर भी उनके हृदय में कभी लालसाएँ खटकतीं; कभी कोई नवीन चिंता उठती। इस प्रकार उनका दैनिक जीवन, जो एक प्रकार से अभावपूर्ण और अनिश्चित था, व्यतीत होने लगा।

प्रश्न उपस्थित—अंधकार की माया—अनिश्चित जीवन। विराट—अनंत भावनात्मक हृदय। छाया—भीतर।

अर्थ—क्योंकि मनु का आगामी जीवन एकदम अनिश्चित था; अतः उसे लेकर उनके सामने नित्य नए प्रश्न उठते। अपने हृदय में जब उन पर विचार करते तो उनका रूप थोड़ी-थोड़ी देर में कुछ से कुछ हो जाता। भाव यह कि मनु के सामने कोई समस्या खड़ी होती; उसे सुलझाते तो एक नवीन उलझन उत्पन्न हो जाती।

वि०—अंधकार में रंग बदलना—मंच पर नृत्य करते समय नर्तकी को कभी किसी एक हल्के रंग के, विशेष रूप से श्वेत रंग के कपड़े पहना देते हैं। मंच पर फिर अँधेरा कर देते हैं और कोने से छिपकर उसके शरीर पर रंगीन टॉर्च का प्रकाश डालते हैं। इससे उसके वस्त्र पल-पल पर रंग बदलते प्रतीत होते हैं। इस दृश्य से ऊपर का दृश्य कुछ समझा जा सकता है।

अर्ध प्रस्फुटित—अर्धप्रस्फुटित—अस्पष्ट। सकर्मक—कर्मशीला। व्यस्त—उलझा रहना।

अर्थ—उनकी समस्याओं का स्पष्ट समाधान कुछ न था। इधर सम्पूर्ण प्रकृति कर्मशीला थी। अर्थात् समय पर घोर वर्षा होती, कड़ाके का जाड़ा पड़ना, तीव्र धूप आती, घना अँधेरा घिरना। ऐसी दशा में मनु का जीवन केवल इतनी सी चिंता में ही उलझा रहा कि किसी प्रकार उनका अस्तित्व बना रहे।

तप में निरत—निरत—लीन। नियमित कर्म—नित्य कर्म। सूत्र—धागे।

अर्थ—मनु तप में फिर लीन होगए और अपना नित्य कर्म करने लगे। आकाश में जैसे अनेक बादल एकत्र हो जाते है; उसी प्रकार उनके कर्म के धागे घने होने लगे जो सांसारिक रंग में रँगे हुए थे।

वि०—भाव यह है कि जीवित रहने के लिए कम से कम अन्न, जल और सुरक्षित स्थान की आवश्यकता तो सभी को होती है। भोजन के लिए वे शिकार करते होंगे या फल तोड़ कर लाते होंगे। पानी पीने के लिए उठकर झरनों के निकट जाना पड़ता होगा। गुफा में कोई हिंस्र पशु न घुस आवे इसकी चिंता करनी पड़ती होगी। स्थान को स्वच्छ भी रखते होंगे। शीत से बचने के लिए अग्नि प्रतिक्षण प्रज्ज्वलित रखनी पड़ती होगी या किसी पशु का चर्म ओढ़ते होंगे। इस प्रकार उनका काम नित्य बढ़ता ही जाता होगा। ये सब संसारी झंझटें नहीं तो और क्या हैं?

पृष्ठ ३४

उस एकांत नियति—एकांत—एकमात्र। नियति—भाग्य। स्पंदन—हिलना, काँपना, नाचना। तीरे—किनारे पर।

अर्थ—समुद्र के किनारे पवन की प्रेरणा से जैसे लहरें चुप-चुप नाचती हैं, वैसे ही विवश होकर मनु सब कुछ वही करने लगे जो एकमात्र भाग्य की इच्छा होती।

विजन जगत की—विजन—सूने। तंद्रा—आलस्य, शिथिलता, अकर्मण्यता। सूना—असफल। सपना—कल्पनाएँ। ग्रह पथ—ग्रहों के घूमने का मार्ग। वृत्त—चक्र।

अर्थ—एक ओर उस सूने संसार में मनु किसी आलसी के समान असफल कल्पनाएँ कर रहे थे और दूसरी ओर सूर्य, चंद्र अपने-अपने पथ पर नित्य बढ़ जाते और इस प्रकार समय व्यतीत हो जाता।

प्रहर दिवस रजनी—प्रहर—तीन घंटे का समय। विरागपूर्ण—उत्साहहीन। संसृति—संसार, यहाँ मन।

अर्थ—पहर बीत जाते, दिन बीत जाता और फिर रात आ घिरती। पर यह रात जैसे और सभी के लिए विश्राम या प्रेम का संदेश लाती है वैसे मनु के लिए कोई सँदेसा न लाती। जीवन के दिन उसी प्रकार व्यर्थ सिद्ध हो रहे थे जिस प्रकार, जब मन उत्साहहीन होता है तब किसी भी नवीन काम को प्रारंभ करो वह बढ़ता ही नहीं।

धवल मनोहर चंद्र—धवल—उजली। चंद्रबिंब—चाँदनी। अंकित—युक्त। निशीथ—आधी रात, यहाँ केवल रात। उद्‌गीथ—साम गान। पुलकित—प्रसन्न।

अर्थ—स्वच्छ सुन्दर रातें रम्य उजली चाँदनी से युक्त रहती थीं। उनमें शीतल पवन जब सन्-सन् शब्द करता तो ऐसा प्रतीत होता मानो वह प्रसन्न होकर पवित्र साम-गान कर रहता है।

पृष्ठ ३५

नीचे दूर दूर—विस्तृत—फैला। ऊर्मिल—लहराता हुआ। व्यथित—क्षुब्ध। अधीर—चंचल। अंतरिक्ष—शून्य। व्यस्त—फैला या भरा। चंद्रिका निधि—चाँदनी का सागर।

अर्थ—नीचे दूर तक लहराता हुआ क्षुब्ध चंचल समुद्र फैला हुआ था और ऊपर वैसा ही चाँदनी का गम्भीर सागर भरा था।

खुली उसी रमणीय—रमणीय—सुंदर। अलस आँखें—सुप्त। मधु—रस। पाँखें—पंखुड़ियाँ।

अर्थ—उस सुन्दर दृश्य के प्रभाव से मनु की जो चेतना अभी तक सुप्त थी वह जाग्रत हो गयी। जैसे फूल की सरस पंखुड़ियाँ खिल जाती हैं; उसी प्रकार उनके हृदय के सरस भाव खिलने लगे।

वि०—वातावरण का बहुत भारी प्रभाव मन पर पड़ता है। संगीत, रम्य उद्यान, खिली चाँदनी आदि प्रेम के भावों को 'उद्दीप्त' करते हैं।

पुष्प-वाटिका में सीता को देखकर राम जैसे संयमी मनुष्य का मन भी डाँवाडोल हो गया था।

व्यक्त नील में—व्यक्त—खुले हुए। नील—नीलाकाश। चल—चंचल। प्रकाश—चंद्रमा की किरणें। कंपन—सिहरन। अतीन्द्रिय—अलौकिक। स्वप्नलोक—कल्पनालोक।

अर्थ—खुले और नीले आकाश से आने वाली चंद्रमा की किरणें जब मनु के शरीर को स्पर्श करतीं तब एक सिहरन उत्पन्न होती जिससे उन्हें एक प्रकार का सुख मिलता था। ऐसी स्थिति में एक रहस्यपूर्ण, अलौकिक, मधुर कल्पना-लोक में मनु का मन पहुँच जाता।

वि०—चाँदनीं रातों में बैठकर मनु का मन प्रेम के काल्पनिक संसार में विचरण करने लगता। कल्पना तो सत्य नहीं, इसलिए जो रम्य मूर्ति आँखों में झूलती उसे छूने में असमर्थ होने के 'अतीन्द्रिय' लिखा। वह सदैव साथ नहीं रह सकती थी इसी से 'स्वप्न' समझा; पर उसके छाया-दर्शन से भी सुख मिलता था, इसी से 'मधुर' कहा और वह किसी परिचित-व्यक्ति की न थी इसी से 'रहस्यपूर्ण' या अस्पष्ट माना।

नव हो जगी—अनादि—हृदय में स्थायी रूप से रहने वाली। वासना—कामेच्छा। मधुर—अनुकूल, तृप्तिदायिनी। प्राकृतिक—स्वाभाविक। द्वन्द्व—दो। सुखद—सुखदायी।

अर्थ—जैसे भूख का लगना स्वाभाविक और शरीर के अनुकूल है उसी प्रकार हृदय में स्थायी रूप से रहने वाली तृप्तिदायिनी कामेच्छा मनु के मन में एक बार फिर से जाग उठी। उन्होंने अनुमान किया कि दो प्राणियों के साथ-साथ रहने से बड़ा सुख मिलता होगा और वे इच्छा करने लगे कि वे किसी के साथ रहते तो सुखी होते। यह इच्छा उन्हें अत्यंत स्वाभाविक लगी।

पृष्ठ ३६

दिवा रात्रि या—दिवा—दिन। मित्र—सूर्य। मित्रबाला—उषा। वरुण—समुद्र। वरुणबाला—चंद्रमा। अक्षय—अनंत। शृंगार—सौंदर्य। उर्मिल—लहरों वाले, यहाँ उलझनमय।

अर्थ—मनु दिन में उषा के और रात में चंद्रमा के अनंत सौंदर्य को देखते। उन्हें लगता कि समुद्र की लहरों के समान जीवन की उलझनों को जब वे पार कर लेंगे तब किसी से उनका मिलन अवश्य होगा।

वि०—मान लीजिए कि समुद्र के इस किनारे प्रेमी खड़ा है। बीच में लहरें हैं। दूसरे किनारे पर प्रेमिका है। उस तक पहुँचने के लिए पुरुष को सागर की लहरों को चीरना होगा। अन्य उपाय नहीं हैं। इसी प्रकार जीवन-पथ में पड़ने वाली उलझनों को सुलझा कर ही हम प्रेमास्पद से मिल पाते हैं। मनु के जीवन की सब से बड़ी उलझन तो यह है कि चारों ओर किसी प्रेमिका का अस्तित्व तक नहीं। यह उलझन दूर हुई कि मिलन हुआ।

तप से संयम—तृषित—प्रेम का प्यासा। अट्टहास कर उठा—ज़ोर पकड़ गया। रिक्त—सूना हृदय। तम—निराशा। सूना राज—प्रेम का सूनापन।

अर्थ—मनु तपस्या काल में संयम से रहे थे जिससे उनमें शारीरिक बल की वृद्धि हुई थी। अतः उनका स्वस्थ शरीर प्रेम की प्यास से अकुला उठा। उनका मन किसी प्रेमिका के न मिलने से बहुत दिन से सूना था और अब तो उनकी अधीरता, निराशा और प्रेम का सूनापन और ज़ोर पकड़ गये।

वि०—प्रेम मन की वस्तु है, पर शरीर के स्वास्थ्य से भी उसका कम संबंध नहीं। यह नित्य परिचय का विषय है कि कोई युवक किसी सफेद बाल वाली बुढ़िया के प्रति आकर्षित होते नहीं देखा गया।

धीर समीर परस—धीर—मंद । समीर—पवन । परस—स्पर्श ॥ श्रांत—थका सा । अलक—बाल । मधुगंध—सरस और सुरभित ।

अर्थ—उनके थके से शरीर को जब मंद पवन ने आकर स्पर्श किया तब वह रोमांचित हो उठा और एक प्रकार की आकुलता उसमें भर गई । जैसे किसी के उलझे बालों को सुलझाते समय उनसे सरस गंध की चंचल लहरें फूटें उसी प्रकार आशा के भीतर से मनु के मन को अधीर करने वाली सुख की एक लहर उठी ।

वि०—श्रांत शरीर—युवा काल में मन के भावों का दब जाना या कुचला जाना शरीर को सब से अधिक हानिकारक सिद्ध होता है । ऐसी दशा में जब मन का उत्साह भंग हो जाता है, तब शरीर भी स्वतः शिथिल सा रहने लगता है । जब जीवन में कुछ है ही नहीं तब इच्छा होती है कि जहाँ पड़े हैं वहीं पड़े रहें । पर रम्य प्रकृति अपना थोड़ा बहुत प्रभाव डाल ही देती है ।

उलझी आशा—इसलिए कहा कि मनु की प्रेमिका अभी निश्चित नहीं । वह किसी को जानता पहचानता नहीं । पर प्रेम की कल्पना मात्र से भी सुख मिलता है जैसे युवक या युवतियाँ जब एक दूसरे को जानते पहचानते तक नहीं, तब भी किसी की एक अस्पष्ट-सी कल्पना करके सुखी हो लेते हैं ।

मनु का मन—संवेदन—सहानुभूति प्राप्त करने की इच्छा । कटुता—पीड़ा ।

अर्थ—कोई मेरे दुःख के प्रति भी सहानुभूति दिखाने वाला होता, इस चोट (अभाव के आघात) से मनु का मन व्याकुल हो गया । हमारे दुःख को कोई बाँटने वाला होता यह भावना संसार में मनुष्य के जीवन को पीड़ा से पीस डालती है ।

वि०—मनुष्य के दुःख का सबसे प्रमुख कारण यह है कि वह किसी

न किसी के प्यार का भूखा है। यह प्यार मिलता नहीं, इसी से जीवन में मधुरता का अभाव है।

पृष्ठ ३७

आह कल्पना का—स्वप्न—कल्पना। दल—समूह। छाया—हृदय के भीतर। पुलकित—प्रसन्न।

अर्थ—यदि केवल कल्पना से काम चल जाता तो यह संसार बड़ा सुन्दर होता, बड़ा मधुर होता। उस दशा में प्रसन्नता प्रदान करने वाली सुख की कल्पनायें हृदय के भीतर उठतीं और वहीं विलीन हो जातीं। कोई बाधा न होती।

वि०—जीवन में केवल कल्पना से काम नहीं चलता, यही तो दुःख है। प्रेम में इच्छा होती है कोई पास बैठे, कोई बात करे, कोई अपने हाथ से खिलावे। कोई कल्पना में बैठ जाय, कल्पना में बातें कर जाय, कल्पना में खिला जाय, इतने से तो मन तुष्ट नहीं होता।

संवेदन का और—संवेदन—प्रेम प्राप्ति। संघर्ष—विरोध। गाथा—कहानी। बकता—व्यर्थ सुनाता।

अर्थ—प्रेम-प्राप्ति का हृदय से यदि विरोध न होता, तो पृथ्वी में कहीं कोई अपने अभाव और असफलताओं की कहानियाँ व्यर्थ न सुनाता।

वि०—हृदय चाहता है प्रेम। प्रेम मिलता नहीं। यही विरोध है।

'बकने' शब्द का भाव यह है कि हम अपनी निराशा की कहानी सुना रहे हैं, पर ध्यान देकर कोई उसे सुनता नहीं। उसे सुनाना न सुनाना बराबर है।

कब तक और—निधि—हृदय का भेद।

अर्थ—मनु कहने लगे—हे मेरे जीवन! मैं कितने दिन तक अभी और अकेला रहूँगा, इस बात का उत्तर दो। अपने प्राणों की कहानी मैं

किसे सुनाऊँ ? अच्छा, मुझे चुप रहना चाहिए। अपने हृदय का भेद किसी को बताना ठीक नहीं। उससे कुछ लाभ नहीं।

रहीम ने कहा है—

रहिमन निज मन की व्यथा मन ही रखिये गोइ।
सुनि इठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहै कोइ।

तम के सुंदरतम—तम—अंधकार। रहस्य—आश्चर्य। क्रांति—किरण। रंजित—शोभा की किरणों से युक्त, आभाभरा। व्यथित—तापदग्ध। सात्विक—शांत, निर्विकार।

अर्थ—हे आभाभरे तारे, तुम अंधकार का सबसे रम्य आश्चर्य हो। अर्थात् इस अन्धकार में ऐसा उजला तारा कहाँ से आता है यह एक बहुत बड़े आश्चर्य की बात है। तुम नवीन रस से पूर्ण ऐसी बूंद हो जो दुःखी संसार को थोड़ी निर्विकार शीतलता प्रदान करती है।

वि०—'व्यथित विश्व' को बाह्य और आंतरिक दोनों अर्थों में समझना चाहिए। जो संसार दिन में सूर्य के ताप से दग्ध था वह तारा की छाया में शीतलता प्राप्त करता है और जिनका मन दुःखी है उन्हें भी उसके रम्य दर्शन से थोड़ी शान्ति मिलती है।

'बिंदु' शब्द की यह विशेषता है कि जहाँ तारा आकार में बूंद जैसा प्रतीत होता हैं वहाँ शीतलता का 'बिंदु मात्र' है। शीतलता का सागर तो चन्द्रमा है।

पृष्ठ ३८

आतप तापित जीवन—आतप—गर्मी, दुःख। जीवन—जल, ज़िन्दगी। छाया का देश—घनी शीतलता। अनन्त—असंख्य। गणना—गिनती।

अर्थ—हे तारे जैसे तुम गर्मी से तप्त जल को शीतलता प्रदान करते हो, उसी प्रकार दुःख से दग्ध जीवन को सुख और शान्ति की घनी

शीतलता देते हो। गिनती में तुम असंख्य हो। तुम्हारे उदित होते ही विश्राम की वेला आती है; अतः तुम मधुरता के सूचक हो।

आह शून्यते—शून्यते—शांत रात्रि। रजनी—रात। इन्द्रजाल-जननी—जादूभरी।

अर्थ—हे शांत रात्रि चुप रहने की यह भारी चतुराई तूने क्यों ग्रहण की है? जादूभरी रात इन दिनों तू इतनी मधुर मुझे क्यों प्रतीत होती है?

वि०—चुप रहने से एक तो भेद नहीं खुलता, दूसरे आकर्षण बढ़ता है; इसी से चुप रहना एक कौशल है। मनु रात से अनेक प्रश्न करते हैं, पर वह उत्तर नहीं देती। यदि वह अपना रहस्य खोल दे तो फिर उसे पूछे कौन?

तारों भरी रात वैसे मधुर और जादूभरी प्रतीत होती है, पर यहाँ मधुरता तो मनु के मन में है; अतः रजनी उन्हें मधुर प्रतीत होती है।

जब कामना—कामना—अरुण संध्या। सिंधु—आकाश। सुनहली साड़ी—सुनहली आभा। हँसती—चाँदनी छिटकाती। प्रतीप—विपरीत आचरण।

अर्थ—प्रकृति पक्ष में—जब अरुण संध्या तारा रूपी दीपक को लेकर आकाश के समुद्र में उसे बहाने आती है, तब हे रजनी यह तेरा कैसा विपरीत आचरण है कि तू उस सुनहली आभा को चीर कर चाँदनी के रूप में हँसने लगती है।

वि०—स्त्रियाँ नदी या समुद्र में अपनी किसी इच्छा की पूर्ति के लिए दीपक चढ़ाने आती हैं।

किसी की साड़ी फाड़ डालना और फिर उसकी ओर देखकर खिलखिला कर हँसने लगना कोई शिष्ट मनोविनोद नहीं है। वैसे यहाँ अरुण संध्या और रजनी दोनों रमणियाँ हैं। फिर भी मज़ाक की एक सीमा होती है!

कामना—इच्छा। सिंधु—हृदय। संध्या—धुँधला जीवन। तारा—आशा। सुनहली साड़ी—रम्य कल्पनाएं। हँसती—उपहास करती। प्रतीप—विषमता।

अर्थ—हृदय पक्ष में—संध्या से धुँधले इस जीवन में तारा जैसी किसी आशा को जन्म देने वाली इच्छा जगती है। तभी उसकी रम्य कल्पना को चीरती हुई यह निराशा रूपी रजनी हमारी स्थिति का उपहास करने लगती है। यह कैसी विषमता है।

इस अनंत काले—काले शासन—अत्याचार। उच्छृंखल—क्रूर। आँसू—तारा रूपी बूंदें। मृदु हास—चाँदनी के रूप में हँसती हुई।

अर्थ—जब संध्या कालिमा की स्याही को ताराओं के जलबिंदुओं में घोल कर नियति के असंख्य अत्याचारों का क्रूर इतिहास लिखना प्रारंभ करती है, तब हे रजनी तू चाँदनी के रूप में मंद-मंद हँसने लगती है।

वि०—रजनी संध्या के व्यर्थ प्रयास पर मुसिकाती रहती है। वह जानती है कि इस इतिहास को न कोई पढ़ने वाला है और न इस इतिहास के लिखने से नियति के अत्याचारों में कोई अंतर पड़ सकता है। पृथ्वी पर उसे जितना अत्याचार करना है उतना करेगी ही।

पृष्ठ ३९

विश्व कमल की—विश्व—संसार। मृदुल—कोमल। मधुकरी—भ्रमरी। टोना—जादू।

अर्थ—जिस प्रकार कोई कोमल भ्रमरी किसी कोने से आकर फूल को चूमती और उसे मोहित कर देती है उसी प्रकार हे रात! यह तो बतला कि तू किस कोने से इस विश्व को चूमने आती है! तेरे चुम्बन से जगत निद्रा-मग्न होने लगता है; अतः ऐसा लगता है कि कहीं दूर बैठा हुआ कोई तेरे बहाने संसार को मोहित करने वाला टोना (जादू) पढ़ रहा है।

वि०—इस विस्तृत विश्व पर ऊपर से उतरती हुई श्यामा रजनी वास्तव में कमल पर भ्रमरी सी प्रतीत होती है।

किस दिगंत रेखा—दिगंत रेखा—दिशा का कोना। संचित—एकत्र, इकट्ठी। सिसकी—आह। समीर—वायु। मिस—बहाने।

अर्थ—ठंडी हवा को चलते देख मनु कहने लगे—हे रात्रि! दिशा के किस कोने में इतनी आहभरी साँसें तुमने एकत्र कर रखी थीं जो अब छोड़ रही हो? यह वायु नहीं चल रही, तुम तीव्र वेग से किसी से मिलने जा रही हो, अतः हाँफने लगी हो। बताओ तो किससे मिलना है?

विकल खिलखिलाती—विकल—जोर से। तुहिन कण—ओस की बूंद। फेनिल लहरों—झाग उठाने वाली समुद्र की तरंगों।

अर्थ—हे रात्रि चाँदनी के रूप में तू इतने जोर से क्यों खिलखिला रही है? इतनी हँसी तू यों ही मत बिखेर। इससे ओस की बूंदों और झाग उठाने वाली समुद्र की तरंगों में आकुलता भर जायगी।

वि०—प्रसिद्ध है कि चंद्रमा की किरणों को स्पर्श करते ही समुद्र उमड़ने लगता है।

चाँदनी छाते ही ओस की बूंदें झलकती और कँपती दृष्टिगोचर होंगी मानों किरणों को परस कर वे भी सिहर उठी हों।

घूंघट उठा—घूंघट—चाँदनी का अवगुंठन। ठिठकती—रुक रुक कर चलती। स्मृति—याद।

अर्थ—हे रात! वह कौन है जिसे देख इस चाँदनी के घूंघट को उठाती हुई मुस्किराती हुई रुक-रुक कर तुम चल रही हो? तुम्हें ठिठकते देख ऐसा भी अनुमान होता है कि तुम इस सूने आकाश में घूमती हुई किसी भूली बात को फिर स्मरण करने के समान अपने किसी विस्मृत प्रेमी को याद करने का प्रयत्न कर रही हो। वह तत्काल ने याद आता नहीं, इसीलिए रुक-रुक कर चलती हो।

वि०—प्रेमी को आसपास पा प्रेमिकाओं के पैर लाख प्रयत्न करने पर भी शीघ्रता से नहीं उठते। सीता जी की दशा देखिये—

देखन मिस मृग, विहँग, तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
देखि देखि रघुवीर छवि, बाढ़इ प्रीति न थोरि।

कभी कभी भूली बात लाख प्रयत्न करने पर भी स्मरण नहीं आती। उस समय मनुष्य की विचित्र गति हो जाती है। कभी वह माथा रगड़ने लगता है, कभी घूमने लगता है, कभी चलते-चलते रुक जाता है।

रजत कुसुम के—रजत कुसुम—चाँदी का फूल। पराग—पुष्प रज। ज्योत्स्ना—चाँदनी। भूल जाना—खोजाना, मस्त हो जाना।

अर्थ—चंद्रमा रूपी चाँदनी के फूल से नवीन पुष्प-रज सी चाँदनी की इतनी धूलि हे रात्रि तू न उड़ा; नहीं तो हे बावली, औरों की बात तो दूर, स्वयं तू भी इसमें खो जायगी अर्थात् हे रात्रि यदि अधिक उजली चाँदनी तूने छितरायी तो संसार तो क्या, उसके प्रभाव से तू भी मस्त हो जायगी।

वि०—गाँव के शरारती बच्चे कभी-कभी किसी पथिक के आगे धूलि उड़ा देते हैं जिससे कुछ पल उसे पथ न दिखाई दे, पर वह धूलि यदि अधिक हुई तो उड़ाने वाला भी उसमें घिर जाता है।

पृष्ठ ४०

पगली हाँ सम्हाल—मणिराजी—मणियों का समूह, तारे।

अर्थ—हे यौवन से मदमाती रात तेरा आकाश रूपी अंचल कैसे खिसक गया? इसे सँभाल। इससे तारा रूपी मणियाँ गिर कर बिखर गई हैं। अरी मस्त, अरी चुलबुली, उन्हें तो समेट ले।

फटा हुआ था—वसन—वस्त्र। अकिंचन—दरिद्र।

अर्थ—हे यौवन से मदमत्त रात तेरा नीला वस्त्र क्या स्थान-स्थान पर फटा हुआ है? ऐसा न होता तो साड़ी के उन फटे हुए अंशों के भीतर से तारों के रूप में तेरा गात यहाँ वहाँ कैसे दिखाई पड़ जाता?

इतना तो समझ कि तुझे पता तक नहीं है और यह दरिद्र जगत जिसने रम्य रूप के कभी दर्शन नहीं किए तेरी भोली भाली छवि को घूर घूर कर ताक रहा है।

वि०—यदि किसी सुंदरी की नीली साड़ी कहीं से फटी हो तो उसमें होकर भीतरी अंग चमक उठेगा ही और जिस दरिद्र ने कभी रूप देखा ही नहीं, वह शिष्टता का ध्यान छोड़ उधर आँख फाड़ कर ताकने भी लगेगा।

फटे वस्त्र में से भीतरी अङ्ग के दमकने और दिखाई पड़ने की कल्पना श्री मैथिलीशरण गुप्त ने एक भिन्न स्थिति में की है—

इसी समय पौ फटी पूर्व में पलटा प्रकृति पटी का रंग,
किरण कंटकों से श्यामाम्बर फटा, दिवा के दमके अङ्ग।

ऐसे अतुल अनंत—अतुल—जिसकी समता न हो सके। अनंत—असीम, जिसका अन्त न हो। विभव—ऐश्वर्य। जीवन की छाती—जीवन का मध्य और मार्मिक अंश अर्थात् यौवन। दाग—आघातों के चिह्न।

अर्थ—रात्रि में उदासी की कल्पना करते हुए मनु कहते हैं—चाँदनी और तारागणों के रूप में तुम्हारा ऐसा ऐश्वर्य है कि न जिसकी कोई समता है और न जिसका कोई अंत। पर इससे तुम विरक्त क्यों हो? क्या तुम्हारे यौवन के दिनों में आघातों के जो चिह्न शेष रह गए हैं उन पर मौन विचार करती हुई तुम सब कुछ भूल गई हो?

मैं भी भूल गया—

अर्थ—जैसे तू भूल गई है वैसे ही अपने अतीत जीवन की घटनाओं को आज मैं भूल-सा गया हूँ। स्मरण नहीं कि जिस भावना में डूब कर मेरा मन सुख की नींद में मग्न था वह प्रेम-भावना थी, मधुर पीड़ा की स्थिति थी, मेरा भ्रमजाल था या और कोई ऐसी वृत्ति थी जिसे मैं नाम नहीं दे पा रहा।

पृष्ठ ४१

मिले कहीं वह—वह—सुख ।

अर्थ—हे रजनी ! तुम तो सभी स्थानों पर घूमती हो । अतः मेरा खोया सुख यदि तुम्हें कहीं अचानक पड़ा मिल जाय तो उसे लापरवाही से न फेंक देना । यदि तुमने उसे मुझे वापिस ला दिया तो उसका कुछ अंश मैं कृतज्ञता स्वरूप तुम्हें भी दूँगा । इतना तुम विश्वास रखना ।

वि०—प्रलय में सब कुछ नष्ट होने पर मनु का सुख भी नष्ट हो गया । किसी नवीन प्रेमिका की प्राप्ति पर यदि वह सुख फिर लौट आया, तो जीवन मधुर हो जायगा । उस दशा में उन दोनों को रातें प्यारी होंगी । रातें उनकी संगिनी होंगी, रातें फिर सूनी न रहेंगी । यह एक प्रकार से रातों को सुख का अंश देना हुआ ।

श्रद्धा

कथा—नित्य की भाँति एक दिवस मनु अपने विचारों में लीन बैठे थे कि अकस्मात् किसी ने आकर पूछा : इस जनहीन प्रदेश को अपनी रूपछटा से आलोकित करने वाले तुम कौन हो? इस मधुर वाणी को सुनते ही मनु ने जो दृष्टि उठाई तो देखा कि दीर्घ आकार की एक विलक्षण-सौंदर्य-सम्पन्न बालिका उनके सामने खड़ी है। नील रोओं वाली भेड़ों के चिकने चर्म-खंडों से ढका उसका अर्द्धनग्न शरीर ऐसा लगता था जैसे काले बादलों के वन में बिजली के फूल खिल उठे हों और उसकी मुसकान तो इतनी मधुर थी कि मनु देखते ही रह गए। यह श्रद्धा थी जिसका वास्तविक निवास-स्थान गांधार-प्रदेश था। हिमालय के दर्शन के लिये वह घर से निकल पड़ी थी और एक वृक्ष के नीचे अन्न एकत्र देख उसने अनुमान किया था कि प्रलय होने पर भी कोई व्यक्ति इधर निकट में अभी जीवित है।

मनु ने कहा, "मैं एक अभागा व्यक्ति हूँ जिसके जीवन का कोई निर्दिष्ट लक्ष्य नहीं। भाग्य अब मुझसे जो कराये वही करना होगा, और सच तो यह है कि प्राणी सब ओर से विवश है। कुछ भी तो संसार में स्थायी नहीं। मैंने अपनी आँखों ऐश्वर्य के शव पर विनाश का क्रूर नृत्य देखा है। मुझे निश्चय हो गया है कि जीवन का अंत नैराश्य और निराशा में होता है।"

श्रद्धा बोली, "दुश्चिंतियों के चक्र में घिर कर कभी-कभी ऐसी कुत्सित भावनाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है; पर इन्हें पोषित

करना अनुचित है। तुम्हारा अतीत दुःखमय रहा, यह सत्य है, पर तुम उसी प्रकार से भविष्य की भी व्यर्थ कल्पना किस आधार पर करते हो? वह सुखमय हो सकता है। जीवम का उद्देश्य निश्चित रूप से वैराग्य नहीं है। जब स्वयं भगवान रात-दिन सृष्टि के परिचालन में व्यस्त हैं, तब उन्हीं द्वारा निर्मित प्राणी कर्म क्षेत्र से विमुख हो बैठे, यह तो समझ में नहीं आता। दुःख के रहस्य को तुमने समझा नहीं। वह मनुष्य को सहृदय बनाकर मनुष्य के निकट खींचता है। जीवन में यदि केवल सुख ही सुख होता, तो भी प्राणी उससे ऊब जाते। वस्तुओं के स्थायित्व को लेकर तुम क्या करोगे? जो वस्तु जीर्ण हो चुकी है, या जिसका उपयोग नष्ट हो चुका है, उसे मिट जाने दो। परिवर्तन को नित्य नवीनता के रूप में देखो। सृष्टि विकासशीला है इसी से वह दिन प्रतिदिन एक से एक अच्छी वस्तु का निर्माण करती बढ़ रही है। एक जाति के मिटने पर दूसरी जाति के जन्म लेने का यही तात्पर्य है। कितनी सुंदर, कितनी विभूतियों से भरी यह सृष्टि है! तुम मन में उत्साह भर कर इसका उपभोग करो। किसी का एकाकी जीवन कभी सफल नहीं रहा; अतः बिना किसी प्रकार की हिचक के तुम्हारे जीवन में सुख भरने के लिए मैं तुम्हारे साथ आजीवन रहूँगी। देवताओ से अपने जीवन में भूलें हुई थीं। उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। मैं चाहती हूँ कि आगामी मानव-जाति एक ऐसी मानव-संस्कृति की प्रतिष्ठा करे जिसमें संयम के साथ मन के सभी मनोविकारों के विकास के लिये पूर्ण अवकाश मिले। यह जाति सभ्य और शक्तिशालिनी हो, क्योंकि भगवान का स्पष्ट आदेश है : शक्तिशाली हो, विजयी बनो।

पृष्ठ ४५

कौन तुम—संसृति—संसार। जलनिधि—समुद्र। तरंगों—लहरों, आघातों। मणि—रत्न, भव्य पुरुष। निर्जन—सूनासन। प्रभा—कांति। अभिषेक—जगमगाना, शोभाशाली बनाना।

एक दिन मनु जब उदास बैठे थे अकस्मात् किसी ने आकर पूछा—

अर्थ—जिस प्रकार लहरें समुद्र के तल से मणि को निकाल कर तट पर पटक देती हैं, उसी प्रकार सांसारिक आघातों से ठुकराये हे भव्य पुरुष तुम कौन हो? जैसे वह मणि अपनी कांति की किरणों से सूनेपन को जगमगा देती है, उसी प्रकार तुम भी चुप-चाप बैठे इस जनहीन स्थान को अपनी सुंदरता की छटा से शोभाशाली बना रहे हो।

वि०—राजा को सिंहासन पर बिठाते समय कर्मकांडी ब्राह्मण मांगलिक मंत्र पढ़ते हुए उसके शरीर पर जल के छींटे मारते हैं। इसे अभिषेक कहते हैं। यहाँ 'निर्जन' सम्राट है, 'प्रभा की धारा' अभिषेक का जल, मनु जल के छींटे देने वाले। यह दूसरी बात है कि इस दृश्य को देखने के लिए भीड़ उपस्थित नहीं। इसीसे यह अभिषेक-कर्म चुप-चाप हो रहा है।

मधुर् विश्रांत—विश्रांत—शांत। रहस्य—भेद। मौन—चुप।

अर्थ—तुम्हारी आकृति से मधुरता टपकती है और कुछ ऐसे शांत भाव से तुम इस एकांत में बैठे हो जैसे संसार के रहस्य को तुमने पूर्ण रूप से समझ लिया हो! तुम्हारे मौन (चुप रहने) से जहाँ तुम्हारी बाहरी सुंदरता का पता चलता है वहाँ यह भी झलकता है कि तुम्हारा हृदय करुणा (कोमलता) से भरा है और तुम्हारे मन की सारी चंचलता शांत हो गई है।

वि०—मन को अशांत रखने वाले दो कारण हैं लोक में नारी के रूप का आकर्षण जो मन को चंचल रखता है और अध्यात्म के क्षेत्र में इस तत्त्व की जिज्ञासा कि यह संसार क्या है? इसकी उत्पत्ति क्यों हुई? आदि। जब [illegible] मिट जाती है और अपने तथा सृष्टि के रहस्य का ज्ञान प्राणी को हो जाता है तब एक अपूर्व शांति की उपलब्धि उसे होती है। यहाँ मनु के मुख पर शांति की झलक पा यह समझ

लिया गया है कि इसका मन अचंचल है और तत्त्व-ज्ञान इसे हो चुका है

: सुना मनु ने—मधु गुंजार—मधुर वाणी। मधुकरी—भ्रमरी। प्रथम कवि—वाल्मीकि।

अर्थ—ग्रीवा झुकाए कमल के समान कोमल मुख की यह मधुर वाणी मनु ने प्रसन्न होकर सुनी। उसमें भ्रमरी के गान जैसी मिठास थी और वह अनायास वैसे ही निकल पड़ी थी जैसे एक दिन वाल्मीकि के मुख से कविता का प्रथम सुन्दर छंद निकल पड़ा था।

वि०—मुख को जब कमल माना है तब उसकी वाणी को भ्रमरी की गूँज मानना उपयुक्त ही है।

वाल्मीकि की काव्य-रचना के मूल में यह प्रसिद्ध है कि एक दिन उन्होंने क्रौंच के क्रीड़ाशील जोड़े में से एक को किसी व्याध के बाण से आहत होकर पृथ्वी पर गिरते देखा। करुणा से उनका हृदय भर आया और उन्होंने जो शाप उस समय उस वधिक को दिया वह काव्य बन कर अनुष्टुप छंद के रूप में प्रकट हुआ। वह छंद यह था

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

वैसे हमारे आदिग्रंथ वेद भी छंद-बद्ध हैं, पर वे विवरण से भरे पड़े हैं। वाल्मीकि की रामायण लौकिक छंदों में भावपूर्ण (रसात्मक) रचना होने से आदि महाकाव्य कहलाती है। रामायण उपर्युक्त घटना का ही जैसे परिवर्तित विस्तार है। रावण रूपी वधिक ने क्रौंच-क्रौंची के समान राम-सीता को एक दूसरे से पृथक् कर दिया।

वाल्मीकि के प्रसंग में भी, और यहाँ भी वाणी सहानुभूति के कारण अनायास निसृत हुई। इससे पता चलता है कि भावनाओं का विस्तार पीड़ा में ही अच्छा होता है।

एक झिटका सा—झिटका—धक्का। लुटे से—आकर्पित होकर। कुतूहल—उत्सुकता।

अर्थ—मनु के मन में प्रसन्नता का एक धक्का सा लगा अर्थात् इन शब्दों ने मनु को सहसा प्रसन्न कर दिया। जैसे कोई किसी की मूल्यवान वस्तु को लेकर भागा जा रहा हो, वैसे ही मनु को लगा कि उनके हृदय को कोई खींच रहा है; अतः आकर्षित होकर उन्होंने इधर-इधर दृष्टि डाली। उन्होंने जानना चाहा, यह मधुर वाणी किसकी है? अपने मन की इस उत्सुकता को वे अधिक समय तक दबाए न रह सके।

पृष्ठ ४६

और देखा वह—इन्द्रजाल—जादू। अभिराम—मोहक। कुसुम वैभव—फूलों से भरी।

अर्थ—उन्होंने ऐसी सुन्दर मूर्त्ति देखी जो आँखों पर मोहक जादू डाल रही थी—आँखों को बड़ी आकर्षक लगती थी। उसका गात ऐसा था जैसे फूलों से भरी कोई लता हो या फिर कोई श्याम बादल जो चाँदनी से घिरा हो।

वि०—'चंद्रिका से लिपटा घनश्याम' से यह भ्रम न होना चाहिए कि प्रसाद की श्रद्धा श्याम वर्ण की थी। नीले रोम वाले चर्म-खंडों से उसका शरीर ढका था इसीलिये 'घन श्याम' शब्द लाए हैं। आगे की पंक्तियों में भी उसके शरीर को 'बिजली का फूल' बतलायेंगे।

हृदय की अनुकृति—अनुकृति-किसी वस्तु जैसा होना, अनुकरण, अनुसार। काया—शरीर। उन्मुक्त—खुला हुआ, सरल और संकीर्णता रहित। साल—शाल वृक्ष। सौरभ—सुगंध, गुण।

अर्थ—उसके उदार हृदय जैसा ही उसका बाहरी शरीर था। यदि शरीर लंबा था तो हृदय भी विशाल था, यदि शरीर खुला हुआ था तो हृदय भी सरल और संकीर्णता-रहित था। जैसे कोई छोटा सा शाल वृक्ष जिसके नीचे फूल भी हों मलय पवन के झोंकों से झूमता हुआ प्यारा लगता है, वैसे ही उस शरीर में भोलापन आ रही थी और लावण्य (सौन्दर्य) से युक्त होने के कारण वह शोभाशाली प्रतीत होता था।

वि०—श्रद्धा के संबन्ध में भी शाल के ही समान 'मधु पवन क्रीड़ित' का अर्थ यह भी हो सकता है कि मधुर पवन उसके अंगों से अठखेलियाँ कर रहा था और 'हृदय भी अनुकृति वाह्य' को अधिक खींचें तो श्रद्धा के हृदय को लेकर 'मधु पवन क्रीड़ित' का अर्थ होगा—उसके हृदय में मधुर भाव लहरा रहे थे तथा वह हृदय अनेक शुभ गुणों का भंडार था।

मसृण गांधार देश—मसृण—चिकने। गांधार—कंधार देश। मेष—भेड़। चर्म—चमड़ा। वपु—शरीर। कांत—सुन्दर। वर्म—आवरण।

अर्थ—गांधार प्रदेश की चिकने नीले रोओं वाली भेड़ों के चर्म से उसका आभायुक्त शरीर ढका था। उसके शरीर पर चर्म के वे टुकड़े ही कोमल आवरण (वस्त्र) का काम दे रहे थे।

'वह कोमल वर्म' में एक वचन है और 'मेषों के चर्म ढक रहे थे' में चर्म बहुवचन है। 'वह' मेषों के चर्म के लिए आया है; अतः व्याकरण की दृष्टि से यहाँ वचन-दोष है।

नील परिधान बीच—परिधान—आवरण, वस्त्र। मृदुल—कोमल। मेघ वन—बादलों के वन में।

अर्थ—उस नीले आवरण में उसका सुकुमार कोमल शरीर यहाँ वहाँ से खुला हुआ इस प्रकार शोभित था जैसे बादलों के वन में गुलाबी रंग के बिजली के फूल खिल रहे हों।

वि०—यहाँ 'नील रोओं वाले चर्म-खंडों' के लिए 'बादल' और उनसे अनावृत—जैसे ग्रीवा के नीचे या नाभि के आसपास के—अंग के लिए 'बिजली के फूल' आया है। श्रद्धा ने कंधों, वक्ष और कटि-प्रदेश को ही केवल ढका होगा। यह उदाहरण कितना उपयुक्त और रम्य है!

आह वह मुख—व्योम—आकाश। अरुण—लालिमायुक्त।

अर्थ—और उस सुन्दर मुख का वर्णन मैं कैसे करूँ ? संध्या समय पश्चिम के आकाश में जब काले बादल घिर आते हैं और उन्हें चीरता हुआ लालिमा से युक्त सूर्य-मण्डल झाँकता हुआ जैसा शोभाशाली प्रतीत होता है, वैसा ही वह था।

वि०—यहाँ मुख के लिए 'अरुण रवि' और श्रद्धा के काले बालों के लिए 'घनश्याम' का प्रयोग हुआ।

पृष्ठ ४७

या कि नव—इंद्रनील—नीलम। शृंग—चोटी। माधवी रजनी—वसंत की रात। अश्रांत—निरंतर।

अर्थ—अथवा नीलम के उस छोटे से ज्वालामुखी पर्वत की चोटी पर जो अभी उमड़ने वाला नहीं, वसंत की रात में जैसे सुंदर लपटें भीतर से फूट फूट कर धधकती हैं, वैसी ही उस मुख की शोभा थी।

वि०—श्रद्धा की अवस्था थोड़ी है, इसी से उसे छोटा-सा पर्वत कहा। नील परिधान से उसका शरीर ढका है, इसीसे उस पर्वत को नीलम का बताया। चोटी शब्द का प्रयोग उसके कंधे से ऊपर के भाग के लिए किया। श्रद्धा का यौवन-काल है। इसीने उस पर्वत को वसंत की रात में धधकने देखा। ज्वालामुखी की कान्त लपटों को उसके मुख की शोभा बताया। पर श्रद्धा ने अभी कहीं प्रेम नहीं किया है, यही कारण है कि उसके अंतर के ज्वालामुखी (उद्दाम भावनाओं) को अचेत या सुप्त दिखलाया।

'मुख' के लिए 'विधु' और उस मुख की मधुरता के लिए 'सुधा' शब्द का प्रयोग हुआ है।

काव्य में नीले और काले रंग में प्रायः अंतर नहीं मानते।

और उस मुख पर—रक्त—लाल। किसलय—कोंपल, नवीन कोमल पत्ती। अरुण—प्रभातकालीन सूर्य। अम्लान—उज्ज्वल। अभिराम—रम्य, सुंदर।

अर्थ—और उस मुख पर मंद हास्य ऐसा लगता था मानो किसी लाल कोंपल पर प्रभातकालीन सूर्य की कोई उज्ज्वल किरण लेटी हुई रम्य प्रतीत होती हो।

वि०—यहाँ अरुण अधर के लिए रक्त किसलय और मुसिकान की रेखा के लिए उज्ज्वल किरण का प्रयोग हुआ है। ऐसी कल्पना तो कोई सामान्य कवि भी कर लेता। पर जैसे शयन करती कोई गौर वर्णा कोमलांगी रमणी आकर्षक लगती है, उसी प्रकार प्रसाद ने किसलय पर उजली किरण को अलसाते देखा है और इधर अधर पर मुसिकान को रुकते।

नित्य यौवन छवि—दीप्त—झलकना—। कामना—भावना। मूर्ति—मूर्तिमती, सजीव। स्पर्श—छूना। स्फूर्ति—चेतना।

अर्थ—उस रमणी को देखकर ऐसा लगता था जैसे सारे संसार की करुण-भावना ने ही शरीर कर लिया है और यौवन की जो शोभा उस पर आज झलक रही है वह सदैव ऐसी ही बनी रहेगी। उसे देखकर ऐसा मोह मन में जगता था कि इसे कैसे ही छू लें। वह इतनी सुन्दरी थी कि जड़ वस्तुओं में भी चेतना को जगा सकती थी।

वि०—मुसिकान का प्रसंग चल रहा है। खींचातानी से अर्थ उस ओर भी लगाया जा सकता है। पर ऐसा लगता है जैसे कवि की दृष्टि श्रद्धा के शरीर के अपूर्व लावण्य की ओर एक बार फिर जा पड़ी है।

उषा की पहिली—लेखा—किरण । माधुरी—मधुरता । मोद—आनन्द ।

अर्थ—प्रभातकालीन तारे के शांत प्रकाश की गोद में मधुरता में डूबी, प्रसन्नता से परिपूर्ण, मस्ती भरी, लज्जा से युक्त जैसे उषा की प्रथम रम्य किरण उठती है, वैसे ही उस शांत मुख पर मधुर, प्रसन्न, मस्त, लजीली मुस्किान छा रही थी ।

वि०—'भोर' पुल्लिंग में है और 'उषा की लेखा' स्त्रीलिंग में । अतः प्रकृति के इस दृश्य के पीछे जीवन का वह दृश्य भी छिपा है जो प्रभात के आगमन पर किसी लजीली नायिका के अपने-प्रियतम की गोद में से उठने पर सामने आता है । मधुरता, मोद और मद जैसे संतुष्ट पलों के विशेषण हैं । कवि ने इसी से जान बूझ कर गोद शब्द का प्रयोग किया है ।

पृष्ठ ५८

कुसुम कानन अंचल में—कानन अंचल—वन खंड । पवन प्रेरित—पवन के चलने से । सौरभ—गंध । साकार—दिखाई देना । मधु—मकरंद, रस ।

अर्थ—किसी वनखंड में जहाँ पुष्प खिले हों मंद पवन के चलने से गंध की ऐसी लहर उत्पन्न हो जो मकरंद से भीगे पराग के कणों से

सुगंध की वह उज्ज्वल लहर जैसी लगती, वैसी ही उस रमणी के अधर पर रम्य क्रीड़ा करने वाली (मधुरता से मंद-मंद उठने वाली) मुसिकान की वह मस्त झलक थी।

वि०—श्रद्धा के अधर की मुसिकान-रेखा का निर्माण कई वस्तुओं से हुआ—(१) वह गंध की लहर थी (२) वह मकरंद से भीगी थी (३) वसंत की चाँदनी से वह धुली भी थी।

मुसिकान का रंग श्वेत माना जाता है, इससे उसे ज्योत्स्ना-स्नात रखा, पर श्रद्धा युवती है, इसीलिए उस चाँदनी को वसंत की पूर्णिमा की चाँदनी माना; उसके मुख से गंध निकलती थी अतः ओठों पर मुसिकान को सुगन्धित रखा और रस तो उन अधरों में भरा हुआ था ही।

कहा मनु ने--रहस्य—उलझन। उल्का—प्रज्ज्वलित, टूटा तारा। भ्रांत—भटकता हुआ

अर्थ—मनु ने उत्तर--दिया—इस आकाश और पृथ्वी के बीच मेरे जीवन की उलझन दूर होने का कोई उपाय नहीं है। जैसे टूटा हुआ तारा जलते जलते सूने में बिना किसी आश्रय के भटकता फिरता है, उसी प्रकार मैं अपने दुःख की जलन को लेकर निर्जन में घूम रहा हूँ। सहारा देने वाला कोई भी नहीं।

शैल निर्झर न बना—शैल—पर्वत। हतभाग्य—अभागा। हिम खंड—बर्फ़। जलनिधि—समुद्र। पाखंड—अस्वाभाविक जीवन।

अर्थ—जिस अभागे पर्वत से कोई झरना न फूटा और जो बर्फ़ पिघल न सकने के कारण दौड़कर समुद्र की गोद में न पहुँच पाया, वैसा ही अस्वाभाविक जीवन मेरा भी है।

वि०—पर्वत के अस्तित्व की सार्थकता है झरनों के रूप में पिघलने में, नहीं तो वह जड़ है। हिम की सार्थकता है नदी बन कर समुद्र की गोद में पहुँचने में, नहीं तो उसका होना न होना बराबर है। इसी

प्रकार प्राणी के जीवन की पूर्णता है सहृदय होने और अपने प्रेमपात्र को प्राप्त करने में।

पृष्ठ ४९

पहेली सा जीवन---व्यस्त---उलझनमय। विस्मृति---कुछ समझ में न आना। चल रहा हूँ---दिन काट रहा हूँ।

अर्थ---मेरा जीवन पहेली के समान उलझनमय है। उसे सुलझाने का जब प्रयत्न करता हूँ तब कुछ भी समझ में नहीं आता। अतः बिना कुछ सोचे समझे दिन काट रहा हूँ।

भूलता ही जाता---सजल अभिलाषा---सरस इच्छाएँ। कलित---सुन्दर। अतीत---पिछला जीवन। तिमिर गर्भ---अँधेरी गुफ़ा, निराशा का अँधेरा। संगीत---गान की तान।

अर्थ---मैं रात-दिन अपने पिछले सुन्दर जीवन से संबंधित सरस इच्छाओं को भूलता जा रहा हूँ। जैसे गान की तान अँधेरी गुफ़ा में जितनी आगे बढ़ती है उतनी ही क्षीण होती जाती है, उसी प्रकार मेरे दुःखी जीवन की ये आनन्दमयी कल्पनाएँ धीरे-धीरे नित्य ही निराशा के अंधकार में मिटती जा रही हैं।

क्या कहूँ क्या हूँ---उद्भ्रान्त---लक्ष्यहीन। विवर---अवकाश, खोखला।

अर्थ---जब मेरा जीवन लक्ष्यहीन है तब मैं क्या बतलाऊँ मैं क्या हूँ? इस नीले आकाश के अवकाश (खोखले) में आज मैं हवा की लहर के समान भटकता फिरता हूँ। तुम मुझे किसी के उस उजड़े हुए राज्य के समान समझ लो जिसके चारों ओर सूनापन छा गया हो।

वि०---श्रद्धा ने आते ही प्रश्न किया था "कौन तुम?" उसी का उत्तर मनु दे रहे हैं: क्या कहूँ, क्या हूँ मैं? अपने संबंध में थोड़ा पीछे कह आए हैं, आगे और भी कहेंगे।

एक विस्मृति का---स्तूप---टीला। ज्योति---प्रकाशयुक्त कोई पिंड

जैसे सूर्य चंद्र आदि। संकलित—इकट्ठा। संकलित विलम्ब—देर में देर।

अर्थ—मैं विस्मृति का एक चेतनाहीन टीला हूँ अर्थात् टीले के समान जड़ हूँ और सुन्दर भूतकाल की सब बातें भूले हुए हूँ। किसी प्रकाश-पिंड के आगे बादल इत्यादि के छाने से जैसे उसका धुँधला-सा प्रतिबिंब पड़ता है वैसी ही मेरी गति समझो अर्थात् कीर्तिमान् देवजाति का मैं क्षुद्र वंशज हूँ। मेरा जीवन जड़ता का ढेर है और उसके सफल होने में देर में और देर लग रही है अर्थात् सफलता नित्य दूर होती जा रही है।

पृष्ठ ५०

कौन हो तुम—वसंत के दूत—सुख की संभावना बँधाने वाले। विरस पतझड़—नीरस सूने जीवन में। तपन—ग्रीष्म काल।

अर्थ—यह सब कुछ तो हुआ, पर पतझड़ में वसंत के आगमन के समान मेरे इस नीरस, सूने जीवन में सुख की संभावना बँधाने वाले हे सुकुमार! तुम कौन हो? जैसे अंधकार में बिजली की रेख चमक उठे उसी प्रकार मेरी निराशा में एक आशा की कांति आज फूटी है। तुम्हें देखकर वैसी ही शांति मिली है जैसी ग्रीष्मकाल में मंद पवन के चलने से प्राप्त होती है।

नखत की आशा—नखत—तारिका। कांत—सुंदर। दिव्य—पवित्र।

अर्थ—मेरे लिए तुम तारिका के समान उज्ज्वल आशा की किरण हो। तुम्हारे दर्शन से मन की हलचल उसी प्रकार शांति हो गई है जिस प्रकार किसी कोमल-हृदय कवि के मन को किसी सुंदर पवित्र कल्पना की एक छोटी सी लहर के उठने से शांति मिलती है।

लगा कहने आगंतुक—आगंतुक—आया हुआ। उत्कंठा—उत्सुकता। सविशेष—पूर्णरूप से। मधुमय—वसंत के आगमन की। संदेश—सूचना।

अर्थ—जो प्राणी मनु के निकट आकर खड़ा हो गया था उसने मनु की उत्सुकता को मिटाने के लिए फिर कुछ कहना प्रारम्भ किया। जैसे कोकिल प्रसन्न होकर पुष्प को वसंत के आगमन की सूचना दे, उसी प्रकार उसकी वाणी ने मनु के आगामी जीवन में सुख की संभावना बँधायी।

वि०—'कोकिल' शब्द स्त्रीलिंग है, पर प्रसाद जी उसका प्रयोग सभी स्थानों पर पुल्लिग अथवा पुंस्कोकिल के अर्थ में करते हैं जैसे—

'आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा' (चंद्रगुप्त-नाटक)

यहाँ मनु से श्रद्धा की बातचीत चल रही है। पर प्रसाद ने इस ढंग से वर्णन किया है मानो कोई पुरुष बोल रहा हो जैसे—लगा कहने आगंतुक व्यक्ति। प्रसाद महिलाओं को भी कभी कभी पुल्लिग में संबोधन करते हैं। यह ढंग उर्दू-काव्य का है जैसे—

उनके आने से जो, आजाती है मुँह पर रौनक।
वे समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।

'आँसू' में उन्होंने यही किया है—

शशि मुख पर घूंघट डाले, अंतर में दीप छिपाए।
जीवन की गोधूली में, कौतूहल से तुम आए।

पृष्ठ ५१

भरा था मन में—ललित कला—वस्तु (भवन-निर्माण), मूर्ति, चित्र, संगीत, काव्य कलाओं में से कोई। गंधर्वों के देश—गांधार प्रदेश में।

अर्थ—अपने पिता की मैं अत्यन्त प्यारी पुत्री हूँ। मेरे मन में यह नवीन इच्छा उगी कि मैं गांधार प्रदेश में रहकर ललित कलाओं का अभ्यास करूँ।

घूमने का मेरा—मुक्त—खुले हुए। व्योम तल—आकाश के नीचे। कुतूहल—विस्मय। व्यस्त—उलझन। हृदय सत्ता—मन।

अर्थ—इस खुले आकाश के नीचे मेरा घूमने का अभ्यास दिन प्रतिदिन बढ़ता ही चला गया। भ्रमण काल में भिन्न-भिन्न दृश्यों को देखकर विस्मय उत्पन्न होता; अतः मन में उठी उलझन को सुलझाने के लिए मैं उन सुंदर वस्तुओं के सत्य स्वरूप की जानकारी की खोज में रहती थी।

दृष्टि जब जाती—हिमगिरि—हिमालय। सिकुड़न—सलवट। पीर—पीड़ा।

अर्थ—हिमालय को ओर जब मेरी आँख उठती तभी मन अधीर होकर मुझसे पूछता: किस भय के कारण पृथ्वी के माथे पर यह सलवट (शिकन) पड़ी है? पृथ्वी के हृदय में भला ऐसी क्या पीड़ा है?

वि०—जब मनुष्य पीड़ित होता है और चिंता करता है तब उसके माथे पर शिकन आ जाती है। श्रद्धा हिमालय को पृथ्वी के ललाट की शिकन बतलाती है।

मधुरिमा में अपनी—मधुरिमा—सुन्दरता। सोया—गुप्त। सजग—स्पष्ट रूप से। चेतना—भावना, मन। मचल उठीं—आग्रह करने लगीं। अनजान—भोला।

अर्थ—हिमालय मुझे स्पष्ट रूप से यह संकेत करता प्रतीत हुआ कि उसकी मौन सुन्दरता भगवान का कोई महान् एवं गुप्त संदेश है। इस विचार के उठते ही मेरा भोला मन उसे अधिक निकटता से देखने का आग्रह करने लगा।

बढ़ा मन और—शृंगार—रमणीयता। आँख की भूख—नेत्रों की तृष्णा। सम्भार—सामग्री, दृश्य।

अर्थ—मन में उत्साह के उठते ही मेरे पैर बढ़ चले। पर्वत की

रमणीय चोटियों में यह देखकर कि वहाँ अगणित सुन्दर दृश्य भरे पड़े हैं, मेरे नेत्रों की सारी तृष्णा पूरी हो गई।

पृष्ठ ५२

एक दिन सहसा—क्षुब्ध—गरजता हुआ। निरुपाय—विवश। विश्रब्ध—चुपचाप, शांत भाव से।

अर्थ—एक दिन अचानक सीमाहीन होकर समुद्र पर्वत के नीचे गरजता हुआ टकराने लगा। उसी समय से मैं आज तक विवश-सी चुपचाप घूम रही हूँ।

यहाँ देखा कुछ—बलि—यज्ञ। भूतहितरत—प्राणियों के कल्याण में लीन रहने वाला।

अर्थ—यहीं निकट में मैंने यज्ञ से बचे अन्न को देखकर सोचा—प्राणियों के कल्याण के लिए यह दान किसने किया है? फिर मन में ऐसा अनुमान उठा कि प्रलय से सब कुछ नष्ट होने पर भी इस ओर अभी कोई व्यक्ति जीवित है अवश्य।

वि०—इस अन्न के सम्बन्ध में 'आशा' सर्ग में पहले ही कह आए हैं :—

> अग्निहोत्र अवशिष्ट अन्न कुछ, कहीं दूर रख आते थे।
> होगा इससे तृप्त अपरिचित, समझ सहज सुख पाते थे।

तपस्वी क्यों इतने—क्लांत—हारे हुए। वेदना—पीड़ा। वेग—अधिकता। हताश—निराश। उद्वेग—अशांति।

अर्थ—हे तपस्वी! तुम इतने हारे हुए से क्यों हो? इतनी अधिक पीड़ा किस बात से उत्पन्न हुई है? तुम इतने निराश क्यों हो? तुम अपनी अशांति मुझे तो बताओ।

हृदय में क्या—लालसा—मोह। निश्शेष—बचा हुआ। वंचित करना—धोखा देना।

अर्थ—जो सभी को अधीर बनाये रखता है, जीवन का वह मोह

क्या तुम्हारे हृदय में नहीं बचा ? तुम्हारे मन का त्याग सुन्दर वेश धारण करके कहीं तुम्हें धोखा न दे रहा हो ? अर्थात् तुम त्याग की ओर इसलिए विवश होकर तो नहीं मुड़ गए कि तुम्हें अनुराग नहीं मिला।

दुःख के डर से—अज्ञात—अपरिचित। जटिलताओं—झंझटों। अनुमान—कल्पना। कर्म—कर्म क्षेत्र। झिझकना—मुख मोड़ना।

अर्थ—तुम पहले से ही अपरिचित झंझटों की कल्पना करके उनसे उत्पन्न होने वाले दुःख से भयभीत हो गए हो और उसका परिणाम यह है कि आज कर्म-क्षेत्र से मुख मोड़ बैठे हो। तुम नहीं जानते कि जिस भविष्य की तुम कल्पना कर रहे हो वह उससे भिन्न (सुखपूर्ण) भी हो सकता है।

पृष्ठ ५३

कर रही रही लीलामय—लीलामय—मायामय। महाचिति—व्यापक चेतना, भगवान। सजग होना—हृदय में भावना का जगना। अभिराम—सुन्दर।

अर्थ—आनन्द की सिद्धि के लिए भगवान के हृदय में एक दिन यह भावना जगी कि मैं (अनेक रूपों में) प्रकट हो जाऊँ। इसी से यह सुन्दर संसार बना। यह सभी को तो प्यारा है।

वि०—संसार की सृष्टि के सम्बन्ध में हिंदुओं का यह विश्वास है कि निष्क्रिय ब्रह्म एक बार एकाकीपन के भार से अकुला उठा। उसने इच्छा की कि मैं एक से बहु हो जाऊँ—एकोऽहं बहुस्याम। अतः उसने अपनी मायाशक्ति से इस संसार को रच दिया।

जब परमात्मा ही कर्म में लीन है तब उसका बनाया हुआ पुतला मनुष्य कर्म से मुख मोड़ बैठे यह समझ में नहीं आता।

काम मंगल से—मंडित—युक्त। श्रेय—कल्याण। सर्ग—सृष्टि। तिरस्कृत—तिरस्कार, उपेक्षा। भवधाम—सांसारिक जीवन।

अर्थ—सृष्टि में इच्छा करने से कर्म उत्पन्न होता है। शुभ कर्म करने से कल्याण आता है। अतः वैराग्यवान् होने से तुम इच्छा (काम) का तिरस्कार करते हो और परिणाम यह होता है कि तुम्हारा सांसारिक जीवन असफल सिद्ध होता है।

दुःख की पिछली—पिछली—अंतिम, समाप्ति। रजनी—रात। नवल—नवीन। झीना—हल्का। नील—अंधकारपूर्ण। गात—शरीर।

अर्थ—रात के समाप्त होते-होते जैसे नवीन प्रभात फूटने लगता है; उसी प्रकार दुःख के जाते-जाते सुख प्रारम्भ हो जाता है। जैसे उषा का शरीर अंधकार के हल्के पट से ढका रहता है, उसी प्रकार दुःख के हल्के आवरण में सुख छिपा रहता है।

वि०—दुःख स्थायी नहीं है। उसकी एक अवधि है। उसके पश्चात् सुख अवश्य आता है। इस दृष्टि से दुःख से ही सुख का जन्म होता है। पर दुःख में ही सुख के छिपे रहने से मनुष्य उसे देख नहीं पाता। इसी से उसके ओझल रहने से घबरा उठता है।

जिसे तुम समझे—अभिशाप—शाप। ज्वालाओं—कष्टों। मूल—कारण।

अर्थ—जिस दुःख को तुम शाप और सांसारिक कष्टों का कारण समझते हो, स्मरण रखो वह भगवान का वरदान है। इस रहस्य को प्रत्येक प्राणी नहीं जानता।

पृष्ठ ५४

विषमता की पीड़ा—विषमता—विपत्ति। व्यस्त—घबराना। स्पंदित—सहृदय, सहानुभूतिपूर्ण। भूमा—भगवान।

अर्थ—यह विशाल विश्व विपत्तियों से उत्पन्न होने वाली पीड़ा से घबरा कर ही सहृदय बना है—जिसने स्वयं पीड़ा सही है वही दूसरे के दुःख को समझ सकता है। सत्य बात यह है कि यह दुःख ही मनुष्य के

सुख और उसकी उन्नति का कारण है। अतः दुःख प्राणी को भगवान का वह दान है जो जीवन में मधुरता लाता है।

वि०—दुःख मनुष्य के हृदय को कोमल उदार और विशाल बना कर उसे इस ओर प्रवृत्त करता है कि वह दूसरों के दुःख में हाथ बँटावे और लोक में सुख का विधान करे। इस दृष्टि से दुःख का निराला स्थान है।

नित्य समरसता—समरसता—सुख ही सुख। व्यथा—पीड़ा। द्युतिमान्—प्रकाशपूर्ण।

अर्थ यदि मनुष्य के जीवन में उतार चढ़ाव न हों और उसे केवल सुख-भोग का ही अधिकार भगवान दे दें, तब केवल इसी कारण से वह ऐसे उकता उठेगा जैसे एकदम शांत समुद्र ज्वार के रूप में उमड़ (घबरा) उठता है। और जैसे समुद्र की प्रकाशपूर्ण मणियाँ तल से निकल कर नीली लहरों में मारी-मारी फिरती हैं, उसी प्रकार उसका सुख पीड़ा से छिन्न-भिन्न हो जायगा।

लगे कहने मनु—मारुत—पवन। उच्छ्वास—बातें। अबाध—निरंतर। सविलास—सरस, सुख की।

अर्थ—मनु ने दुःख की साँस लेकर कहा—तुम्हारी बातें मेरे मन में सुख और उत्साह के बहुत से भाव उसी प्रकार उठा रही हैं जैसे पवन के चलने से मानसरोवर में सरस लहरें निरन्तर उठती रहती हैं।

किंतु जीवन कितना—निरुपाय—विवशतापूर्ण। परिणाम—अंत। कल्पित गेह—कल्पना-गृह।

परन्तु मनुष्य का जीवन अत्यन्त विवशतापूर्ण है, इसमें मुझे कुछ भी संदेह नहीं। प्रलय के दिनों में मैं यह देख चुका हूँ। जीवन सफलता का कल्पना-घर है अर्थात् जीवन में सफलता प्राप्त करना कल्पनामात्र है—सफलता प्राप्त हो ही नहीं सकती। उसका अन्त निराशा में होता है।

पृष्ठ ५५

कहा आगंतुक ने—आगंतुक—आया हुआ। अधीर होना—घबराना। जीवन का दाव—जीवन का अवसर, जीवन। मरकर—मृत्यु की चिंता न करके।

अर्थ—उस आये हुए प्राणी (श्रद्धा) ने स्नेह में भर कर कहा :—अरे तुम तो यहाँ तक घबरा गए हो कि जिस जीवन की रक्षा वीर लोग मृत्यु की चिंता न करके करते हैं उससे तुम निराश हो बैठे हो।

वि०—यहाँ जीवन का चित्र कवि ने जुए के खेल के रूप में अंकित किया है। संसार जुआ-घर है, मनुष्य खिलाड़ी, जीवन धन। जो निर्भीक होकर खेलता है वह जीतता है; जो हताश हो जाता है वह हार जाता है।

तप नहीं केवल—तप—संसार से विरक्ति। जीवन—संसार में लीन रहना। करुण (Pitiable)—अशुभ। क्षणिक—थोड़ी देर रहने वाला, अस्थायी। तरल—स्वस्थ, चंचल। आशा का आह्लाद—आनंद देने वाली आशा।

अर्थ—संसार से विरक्त होना ठीक नहीं, उसमें लीन रहना ही ठीक है। दीनता से भरे शोक का भाव जो बीच-बीच में थोड़ी देर के लिए उठता है वह तो बड़ा अशुभ है। इस हृदय में स्वस्थ इच्छाओं से पूर्ण आनन्द देने वाली आशाएँ छिपी पड़ी हैं, उन्हें उभारो।

प्रकृति के यौवन—बासी—जिसका उपयोग न हो रहा हो।

अर्थ—जिस प्रकार युवतियों का शृङ्गार बासी फूलों से नहीं होता और उस प्रकार के पुष्पों का उचित परिणाम जैसे धूल में मिल जाना है, इसी प्रकार प्रकृति के अपनी युवावस्था में बने रहने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जिस वस्तु का उपयोग नहीं रहा है वह शीघ्र से शीघ्र धूल में मिल जाय अर्थात् नष्ट हो जाय।

वि०—मनु के हृदय में अनेक सन्देह हैं। पहला तो यह कि जीवन

सत्य नहीं है। उस धारणा का श्रद्धा विरोध करती है। कहती है—'तप नहीं केवल जीवन सत्य'। मनु ने विनाश देखा है, उसके लिए उसका कहना है कि जिस वस्तु का उपयोग समाप्त हो गया उसे कलेजे से चिपटाये रखने से क्या लाभ ? तीसरा सन्देह परिवर्तन पर है। श्रद्धा का कहना है कि जिसे तुम परिवर्तन कहते हो, वह नित्य नवीनता है।

पुरातनता का यह—पुरातनता—प्राचीनता, वस्तु का उपयोगी न होना। निर्मोक—केंचुली। टेक—टिकना, रहना, छिपना।

अर्थ—प्राचीनता की केंचुली को प्रकृति एक पल भी नहीं सह सकती अर्थात् जहाँ वस्तु अनुपयोगी हुई कि उसने नष्ट किया। और जिसे तुम परिवर्तन कहते हो उसके अन्दर ही नित्य नवीनता का आनन्द छिपा है।

वि०—परिवर्तन का अर्थ है नवीनता। मनुष्य वृद्ध होकर मर जाता है, शिशु बन कर जन्म लेता है। पुरानी वस्तु टूट जाती है, नई बन जाती है। यह परिवर्तन न हो तो जीवन पहाड़ हो जाय, संसार भार हो जाय। टेनीसन का कहना है—

The old order changeth, yielding place to new,
And God fulfills himself in many ways.

पृष्ठ ५६

युगों की चट्टानों—पदचिह्न—छाप। गंभीर—गहरी, सँभल सँभल कर। अनुसरण—पीछे चलना। अधीर—तीव्रता से।

अर्थ—जिस प्रकार कोई यात्री चट्टानों पर सँभल सँभल कर चरण रखता है, उसकी प्रकार यह सृष्टि प्रत्येक युग में अपनी गहरी छाप छोड़ती हुई आगे बढ़ रही है। देवता, गंधर्व और असुरों का समूह बड़ी तीव्रता से उधर जा रहा है जिधर वह ले जा रही है।

वि०—भाव यह कि देवता अमर हैं, न गंधर्व और न असुर। एक

जाति के उपरान्त दूसरी जाति उत्पन्न होती और नष्ट हो जाती है। प्रकृति अपना काम नवीन जाति को लेकर करती है। थोड़े दिनों में वह जाति भी पुरानी होकर नष्ट हो जाती है। फिर किसी नवीन जाति का जन्म होता है। इसी प्रकार सृष्टि का विकास सम्पन्न हो रहा है और समय बीत रहा है।

एक तुम यह विस्तृत—विस्तृत—विशाल। भूखण्ड—पृथ्वी। वैभव—ऐश्वर्य। अमंद—स्थायी। कर्म का भोग—कर्मानुसार सुख दुःख की प्राप्ति। भोग का कर्म—भोगानुसार भाग्य निर्माण। जड़—प्रकृति। चेतन—चेतन प्राणी।

अर्थ—एक ओर तुम हो जो थके से बैठे हो और दूसरी ओर यह विशाल भूमि है जो स्थायी प्राकृतिक ऐश्वर्य से परिपूर्ण है। पूर्व जन्म में जो मनुष्य जैसे शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है उनका वैसा ही फल वह इस जन्म में भोगता है और इस जन्म में जैसा जीवन व्यतीत करेगा वैसा ही उसका आगामी भाग्य बनेगा। इस जड़ प्रकृति में चेतन प्राणी के सुख का विधान इसी नियम के अनुसार होता है।

अकेले तुम कैसे—यजन—जीवन यज्ञ। आत्म विचार—अपना विकास।

अर्थ—एकाकी जीवन व्यतीत करने का निश्चय क्या कोई अच्छा विचार है? अच्छा बतलाओ जीवन-यज्ञ को बिना सहधर्मिणी की सहायता के तुम अकेले कैसे पूरा कर सकोगे? हे तप में लीन रहने वाले प्राणी! आकर्षण को परे फेंक कर अपनी आत्मा का विकास तुम नहीं कर सकते।

वि०—यज्ञ करने के लिए पति-पत्नी दोनों को बैठना पड़ता है। अश्वमेध के लिए जब राम बैठे तो सीता की अनुपस्थिति में उन्हें उनकी सोने की मूर्ति निकट रखनी पड़ी। जीवन भी एक यज्ञ है जो पति-पत्नी

दोनों के सहयोग से पूरा होता है। जीवन का रथ एक पहिए के सहारे नही चल सकता।

यहाँ आत्मविस्तार से तात्पर्य सांसारिक उन्नति से है।

दब रहे हो—बोझ—दुःख का भार। अवलंब—सहायक, सहारा। सहचर—जीवन संगिनी। उऋण होना—कर्तव्य की पूर्ति करना।

अर्थ—अपने दुःख का बोझ उठाना एक ओर तुम्हें भारी पड़ रहा है, दूसरी ओर तुम इस कष्ट निवारण के लिए किसी सहायक तक को नहीं खोज रहे। क्या मैं अब किसी प्रकार की व्यर्थ देर किए बिना तुम्हारी जीवन संगिनी बन कर अपने कर्तव्य की पूर्ति नहीं कर सकती ?

वि०—यहाँ भी प्रसाद ने अपने स्वभाव के अनुसार श्रद्धा के लिए 'सहचरी' के स्थान पर 'सहचर' शब्द का प्रयोग किया है।

पृष्ठ ५७

समर्पण लो सेवा—समर्पण—अपने को देना या सौंपना। सजल संसृति—संसार सागर। उत्सर्ग—न्यौछावर। विगत विकार—स्वार्थहीन, निष्काम भाव से।

अर्थ—तुम्हारी सेवायें करने के लिए मैं तुम्हें अपने को दिए डालती हूँ। मेरा यह आत्म-समर्पण संसार-सागर में बहने वाली तुम्हारी जीवन नैया के लिए पतवार के समान सिद्ध होगा। आज से तुम्हारे चरणों में मैं बिना किसी स्वार्थभावना के अपने जीवन को न्यौछावर कर रही हूँ।

दया माया ममता—माया—मोह। रत्ननिधि—रत्नों का भण्डार स्वच्छ—निर्मल।

अर्थ—मेरा हृदय निर्मल भाव रत्नों का भंडार है। वह अब तुमसे दूर नही है। उसमें से दया, मोह, ममता, माधुर्य, अटूट विश्वास जिसकी आवश्यकता हो, प्राप्त कर सकते हो।

वनो संसृति के—संसृति—नवीन सृष्टि। मूल रहस्य—मुख्य आधार। वेल—लता, आगामी नवीन जाति। सौरभ—गंध, यश।

अर्थ—नवीन सृष्टि के तुम मुख्य आधार बनो अर्थात् आगामी जाति के तुम आदि पुरुष सिद्ध हो। आगामी नवीन जाति की लता तुम से ही बढ़ सकती है। लता पर जैसे फूल छाते हैं और उन फूलों से गंध फैलती है, उसी प्रकार फूलों के समान तुम्हारी सुन्दर संतति के कर्मों से तुम्हारा यश सारे संसार में छा जायगा।

और यह क्या—विधाता—भगवान। मङ्गल वरदान—कल्याणकारिणी वाणी।

अर्थ—और क्या तुम भगवान की इस कल्याणकारिणी वरदान-वाणी को नहीं सुन रहे कि शक्तिशाली बन कर विजय प्राप्त करो? यह ध्वनि तो सारे संसार में फैल रही है।

वि०—संसार के विचारक इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि शक्ति की ही उपासना होती है। विकासवाद के अनुसार भी योग्यतमावशेष (survival of the fittest) का सिद्धान्त ही ठहरता है। हमारे यहाँ भी प्रसिद्ध है—'वीर भोग्या वसुंधरा।'

पृष्ठ ५८

डरो मत अरे अमृत—अमृत संतान—देव पुत्र। अग्रसर—तुम्हारे आगे। मङ्गलमय वृद्धि—कल्याण और विकास। समृद्धि—वैभव।

अर्थ—हे देव-पुत्र! निडर होकर कर्म करो। आगे कल्याण और विकास ही विकास है। यदि तुम अपने जीवन को आकर्षण का शक्तिशाली केन्द्र बना सकोगे तो संसार का समस्त वैभव स्वयं खिच कर तुम तक आ जायगा।

देव असफलताओं—ध्वंस—नाश। प्रचुर—अधिक। उपकरण—सामग्री। जुटाना—इकट्ठी करना। मन का चेतन राज—मन के भाव।

अर्थ—जिस प्रकार टूटी फूटी वस्तु को गला डाल कर एक नवीन

वस्तु का निर्माण कर लेते हैं, उसी प्रकार देवताओं को अपने जीवन में जिन कारणों से असफलता मिली और जिनसे उनका नाश हुआ वे हमारे विचार के लिए बड़ी सामग्री और सम्पत्ति छोड़ गए हैं। इस नवीन विचारधारा के आधार पर मानव-संस्कृति नाम से एक नवीन सभ्यता का निर्माण हो सकता है जिसमें मन के भावों का पूर्ण विकास हो—देवताओं की भाँति आगे की जाति अंधी होकर वासना में लीन न रहे।

चेतना का सुंदर—अखिल—सभी। सत्य—प्रकृत (Natural), स्वाभाविक रूप में। हृदय पटल—हृदय पट। दिव्य अक्षर—ज्ञान, स्पष्टता से किसी बात को समझना।

अर्थ—मैं चाहती हूँ सभी भाव अपने स्वाभाविक रूप में संसार के प्राणियों के हृदय-पट पर स्पष्ट अक्षरों में रात दिन अंकित हों और इस प्रकार चेतना का एक सुन्दर इतिहास प्रस्तुत हो अर्थात् सब मनुष्य अपने अपने हृदय में यह बात अत्यंत स्पष्टता से समझ लें कि मनोभावों को उनके स्वाभाविक रूप में ग्रहण करना ही सच्चा जीवन है। संकोच या भय से किसी स्वाभाविक इच्छा का दमन नहीं करना चाहिए।

वि०—इस छंद के पीछे लेखन-क्रिया का चित्र निहित है। कागज के स्थान पर हृदय, अक्षरों के स्थान पर दिव्य अक्षर (ज्ञान), और भावों के प्रयोग के स्थान पर अखिल मानव भाव हैं। इस प्रकार मानों चेतना के इतिहास या भावों के विकास की कहानी का निर्माण हो रहा है।

विधाता की कल्याणी—कल्याणी—मंगलमय। भूतल—पृथ्वी। पटना—भरना।

अर्थ—इस पृथ्वी पर भगवान की मंगलमय सृष्टि को पूर्ण सफलता मिले। चाहे सभी स्थानों पर समुद्र ही समुद्र (जल ही जल) हो जाय,

चाहे सूर्य, चंद्र, तारे अपने स्थानों से विचलित हो जायँ और चाहे ज्वालामुखी पर्वत फटने लगें

नोट : भाव आगे के छंद में पूरा होगा।

उन्हें चिनगारी सदृश—सदृश—समान। सदर्प—अभिमान से।

अर्थ—पर जैसे पैरों से चिनगारी को कुचल देते हैं, वैसे ही इन बाधाओं को कुचल (तुच्छ समझ) कर मानव जाति प्रसन्नता से अपना सिर ऊँचा रखे और आज से जहाँ कहीं पवन की गति है, जहाँ पृथ्वी है, जहाँ जल है, वहाँ सब कहीं उसका यश फैल जाय।

पृष्ठ ५९

जलधि के फूटें—उत्स—धार। उतरना—जल के ऊपर निकलना। अभ्युदय—उन्नति।

अर्थ—चाहे समुद्र की धार फूट उठें और उनमें द्वीप कच्छप के समान कभी डूबें, कभी बाहर निकल आवें, पर मानव-जाति का साहस किसी दृढ़ मूर्ति के समान कभी टूटे न। वह अपनी उन्नति के उपाय ही सोचती रहे।

विश्व की दुर्बलता—पराजय का बढ़ता व्यापार—हार पर हार! सविलास—प्रसन्नता पूर्वक। क्रीड़ामय—सुखदायिनी। संचार—उत्पादन, जन्म, कारण।

अर्थ—अपनी दुर्बलताओं से संसार के प्राणी हताश न हों, उन पर विजय प्राप्त करने का बल संचय करें। यदि जीवन में हार ही हार मिले, तब भी वे प्रसन्नतापूर्वक हँसते रहें और उससे शक्ति का उत्पादन करें।

वि०—पराजय के आघात को जो जितना सहने में समर्थ है वह उतना ही शक्तिशाली है। निरंतर कष्ट सहने से कष्ट की शक्ति क्षीण हो जाती है। ग़ालिब का कहना है

रंज से ख़ूगर हुआ इंसाँ, तो मिट जाता है रंज।
मुश्किलें मुझ पर पड़ीं, इतनी कि आसाँ हो गईं॥

महादेवी ने इस बात को और भी सुन्दर ढंग से रखा है :

चिर ध्येय यही जलने का, ठंढो विभूति बन जाना !
है पीड़ा की सीमा यह, दुख का चिर सुख हो जाना !

शक्ति के विद्युत्कण—विद्युत्कण (Electrons)—विद्युत् परमाणु । व्यस्त—बिखरे । विकल—अशांत । निरुपाय—निस्सहाय । समन्वय—एकत्र ।

अर्थ—जैसे विद्युत्कण जब तक शून्य में इधर उधर बिखर कर घूमते रहते हैं तब तक कुछ भी करने में असमर्थ हैं, पर मिल कर वे लोकों की रचना करते हैं, इसी प्रकार मनुष्य की शक्ति जब तक इधर उधर बिखरी पड़ी है तब तक वह अशांत रहता है और निस्सहाय सा लगता है । मैं चाहती हूँ अपनी शक्ति को एकत्र करके मानव-जाति जय प्राप्त करे ।

काम

कथा—मनु बैठे-बैठे सोच रहे हैं कि शरीर में यौवन का प्रवेश भी कितने विलक्षण परिवर्तन ला देता है! रूप में आकर्षण, मन में मस्ती, भावों में विकास, जीवन में उल्लास इसी की कृपा-कोर का परिणाम है। सहसा उन्हें अपने अतीत जीवन की सुधि विह्वल करती है और वे एक गहरी साँस भर कर रह जाते हैं।

दृष्टि उठाते ही देखते हैं—चंद्रमा आकुल-सा घूम रहा है, आकाश नील कमल सा रमणीक है, पवन गंध विकीर्ण कर रहा है, अणु नृत्य निरत हैं। सोचते हैं: यह अनंत सौंदर्य क्या मिथ्या है? ईश्वर क्या इस सुन्दरता को छोड़ और किसी अन्य तत्त्व का नाम है? अच्छा, फिर वह छिप क्यों रहा है? आकाश का परदा और चाँदनी का घूँघट उसने क्यों डाल रखा है? क्या मुझे इस सौंदर्य के प्रति उदासीन हो जाना चाहिए! नहीं। शरीर स्पर्श करने के लिए, रूप निहारने के लिए, रस आस्वाद के लिए और गंध सूँघने के लिए बनी है। तब मैं प्रवृत्ति-पथ का पथिक बनूँगा, परिणाम कुछ भी हो।

इसी बीच तंद्रा की स्थिति में उन्हें एक स्पष्ट ध्वनि सुनाई पड़ती है—

मेरा नाम काम है और मेरी पत्नी का रति। हम दोनों इस सृष्टि से भी पुराने हैं। सूक्ष्म प्रकृति के हृदय में वासना रूप से हम रहते थे। उस सृष्टि के उभरते ही उपयुक्त समय पर पुरुष (ईश्वर) के समागम से सब से पहले दो अणु उत्पन्न हुए। वे बढ़ते बढ़ते असंख्य हो गए। इन्हीं अणुओं ने मिल कर सृष्टि बनी। जब इस पृथ्वी पर देव-जाति

अस्तित्व में आई तब हमने भी शरीर धारण किया। रति और काम हमारे उसी समय के नाम हैं। प्रलय में हम भी नष्ट हो गए थे। अब तो भावना-मात्र रह गए हैं। देवताओं का सारा जीवन हमारी इच्छाओं के अनुकूल व्यतीत होता था। पर उन्होंने विलास की अति कर दी थी, इसी से वे सदैव को नष्ट हो गये। संयम से उनका परिचय न था। मैं चाहता हूँ कि आगामी मानव-जाति वासना को कुचले तो न, क्योंकि यह वृत्ति भूख और प्यास के समान ही स्वाभाविक है, पर इसमें संयम आने से जीवन उन्नतशील बन सकता है। वैराग्य का उपदेश मैं नहीं दे सकता, क्योंकि इस ससार में वही प्राणी ठहर पाता है जो इसे अनुराग की दृष्टि से देखे और स्वयं को शक्तिशाली सिद्ध करे।

इस जगत की रचना प्रेम से हुई है। उस प्रेम का संदेश लेकर मेरी पुत्री (श्रद्धा) आई है। वह सुन्दर है, भावमयी है, शांतिदायिनी है। हे मनु, यदि तुम्हारे हृदय में उसे पाने की आकांक्षा हो, तो तुम उसके योग्य बनो। इतना कह कर वह वाणी शांत हो गई। मनु ने आश्चर्य चकित होकर पूछा, "देव उसे प्राप्त करने का उपाय तो बताते जाते।" पर उनके प्रश्न का कोई उत्तर न मिला।

पृष्ठ ६३

यहाँ वसंत के रूप में यौवन का वर्णन कवि ने किया है

मधुमय वसंत जीवन—मधुमय—मधुर। अंतरिक्ष—शून्य। अंतरिक्ष की लहरों—हवा। रजनी—पतझर की अंतिम रात।

अर्थ—(वसंत के पक्ष में) पतझर की अंतिम रात के चौथे प्रहर के समाप्त होते होते मधुर वसंत हवा के झकोरों में बहता हुआ चुप से वन में छा जाता है।

वसंत—यौवन। अंतरिक्ष—हृदय। लहर—भाव। रजनी के पिछले पहर—किशोरावस्था की पूर्णता।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में) किशोरावस्था के पूर्ण होते ही मधुर

यौवन, हृदय के भावों में लहराता हुआ चुप से जीवन में कब छा जाता है, पता ही नहीं चलता !

वि०—जैसे ऋतुओं में सबसे मधुर काल वसंत का है, उसी प्रकार जीवन में सब से मधुर समय योवन का। भारतवर्ष में चैत्र और वैशाख के महीनों में वसंत माना जाता है।

ग्यारह से पन्द्रह वर्ष की अवस्था किशोरावस्था कहलाती है। सोलहवे वर्ष के प्रारंभ होते ही योवन का आगमन समझना चाहिए। वसंत का प्रथम प्रभात जब फूटेगा तब उससे पहले पतझर की पूर्णिमा की रात होगी। रात में चार प्रहर होते हैं; अतः फाल्गुनी पूर्णिमा के चतुर्थ प्रहर की समाप्ति पर वसंतागम समझना चाहिए। किशोरावस्था एक प्रकार से भूल की अवस्था है और रात भी। इसी से उसे 'रजनी' कहा है। कब किशोरावस्था समाप्त हुई और कब यौवन प्रारंभ हुआ इस संधि काल को हम सहसा परिलक्षित नहीं कर पाते, इससे यौवन को 'चुपके से आये थे' लिखा है।

भावार्थ—हे यौवन, जीवन में तुम उसी प्रकार मधुरता भर देते हो जैसे वसंत वन में सुंदरता भर देता है। जैसे पतझर की पूर्णिमा की रात के चौथे पहर की समाप्ति पर वसंत हवा की हिलोरों में बहता हुआ न जाने किस पल चुपके से वन में छा जाता है; उसी प्रकार किशोरावस्था के पूर्ण होते-होते हृदय के भावों में समाकर तुम हमारे जीवन के किस क्षण में अदृश्य रूप से प्रवेश कर गए थे, हम जान नहीं पाये।

क्या तुम्हें देख—नीरवता—पतझर का सूनापन। अलसाई—बंद। आँखें—पंखुरियाँ।

अर्थ—(वसंत के पक्ष में) हे वसंत, क्या तुम्हीं को चुपचाप आते देख कोकिल मस्त होकर कूकने लगती है? क्या तुम्हें समीप समझ कर ही पतझर के दिनों की बंद कलियाँ अपनी पंखुरियों को खोल देती हैं।

कोकिल—मन। नीरवता—किशोरावस्था का हलचल रहित जीवन। अलसाई—सुप्त। कलियों—भावों। आँखें खोलना—जागना।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में) हे यौवन, क्या तुम्हें आते देख कर ही मन मस्त होकर कुछ कहने लगता है? क्या तुम्हारे प्रभाव से ही किशोरावस्था के हलचल रहित दिनों के सुप्त भाव सहसा जगने लगते हैं?

वि०—किशोरावस्था में न अपने शरीर के सौंदर्य का ज्ञान होता है और न मन की मस्ती का। यौवन का पदार्पण हुआ नहीं कि मन कुछ और प्रकार का हो जाता है, कुछ चाहने लगता है। प्रेम के सुप्त भाव अंतस्संज्ञा से उमड़ कर ओठों से टकराने लगते हैं।

भावार्थ—जैसे वसंत के आगमन पर कोकिला मस्ती में भर कर कूकने लगती है, उसी प्रकार यौवन के प्रारम्भ होते ही मन मस्त होकर प्रेम-चर्चा करना चाहता था। वसंत के छाते ही जैसे सूने वातावरण में अब तक बन्द कलियों की पंखुरियाँ खुलने लगती हैं, उसी प्रकार यौवन के शरीर में व्याप्त होते ही किशोरावस्था के सुप्त (शान्त) भाव जग (आन्दोलित हो) उठते थे।

जब लीला से—लीला—मनोविनोद, क्रीड़ा। कोरक—कली। लुकना—छिपना। शिथिल—मंद गति से बहने वाली। सुरभि—गंध। फिछलन—फिसलना; सरसता आना।

अर्थ—(वसंत के पक्ष में) हे वसंत, जब अपने मनोविनोद के लिए तुम कलियों के भीतर छिप जाते हो, तब उनके खुलने से जो गंध मंद गति से बहती है, सच बतलाओ, उसके प्रभाव से आसपास की भूमि में में सरसता आती है अथवा नहीं?

कोरक—नव युवतियाँ। शिथिल सुरभि—मत्त उच्छ्वास।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में) हे यौवन, जब अपने मनोविनोद के लिए तुम नवीन-यौवना बालिकाओं के शरीर में आ छिपते हो तब तुम्हारे

प्रभाव से प्रेम के जो मस्त उच्छ्वास उनके भीतर से फूटते हैं, सच बतलाना, उनके प्रभाव से पृथ्वी में आसपास चारों ओर सरसता छाती है अथवा नहीं !

वि०—कुछ खेल ऐसे होते हैं जिनमें खिलाड़ियों को कुछ देर को कहीं छिपना पड़ता है। यहाँ वसंत और यौवन ऐसे ही खिलाड़ी हैं जिन्हें कलिकाओं और बालिकाओं के रम्य शरीर छिपने को मिलते हैं।

कली की गंध को जो सूंघेगा वही मस्त हो जायगा; इसी प्रकार तरुणियों के यौवन-काल की बातों को सुनने का अवसर जिस सौभाग्यशाली को प्राप्त होगा वह भी मस्त और मोहित हो जायगा। भीनी गंध को सूंघ जैसे चलता पथिक रुक जाता है, उसी प्रकार प्रेम के उच्छ्वासों को सुनकर बड़े-बड़े संयमी डिग जाते हैं।

भावार्थ—क्रीड़ा करने के लिए जब वसंत कलियों के भीतर प्रवेश करता है तब उनके खुलने से जो भीनी गंध फूटती है उससे आसपास की भूमि सरस हो जाती है। इसी प्रकार युवतियों के गात में छाकर जब यौवन उनके हृदय से धीरे-धीरे प्रेम की बातें उभारता था तब उन्हें सुनने वाले व्यक्तियों के जीवन में रस भर जाता था, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

जब खिलते थे—हँसी खिलना—खिलाना, विकसित करना। फूलों के अंचल—पंखुड़ियाँ। कल—मधुर। कंठ मिलाना—उसी लय में गाना, वहाँ मधुर लय उत्पन्न करना।

अर्थ—(वसंत के पक्ष में) हे वसंत, जब तुम फूलों की पंखुड़ियों को सरस बनाते और उन्हें खिलाते थे अथवा झरनों के कोमल कल-कल स्वर से एक मधुर लय उत्पन्न करते थे

मकरन्द हँसी—मधुरता और लावण्य। फूलों के अंचल—सुमन के समान कोमल बालिकाओं के शरीर में। कलकंठ मिलाना—समर्थन करना। झरनों—मन के भावों।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में) हे यौवन, जब तुम सुमन के समान कोमल बालाओं के शरीर में मधुरता और लावण्य भर रहे थे अथवा जब उनके मन की कोमल वाणी का समर्थन कर रहे थे—

वि०—वाणी का समर्थन करने से यह तात्पर्य है कि बालाओं के अंतर से जो प्रेम की मधुर वाणी उमड़ती है वह यौवन की प्रेरणा से। चंद्रगुप्त नाटक में सुवासिनी कार्नेलिया से कहती है

"धड़कते हुए रमणी-वक्ष पर हाथ रखकर उसी कम्पन में स्वर मिला कर कामदेव गाता है।"

भावार्थ—जैसे वसंत के आते ही फूलों की पंखुड़ियाँ मधुरता से विकसित हो उठती हैं, उसी प्रकार यौवन के आते ही बालाओं के शरीर में मधुरता और लावण्य छा जाता था। जैसे वसंत की अनुकूलता से झरनों से कोमल कल् कल् ध्वनि फूटती है, उसी प्रकार युवतियों के मन की कोमल मधुर वाणी यौवन की प्रेरणा प्राप्त कर अंतर से उमड़ती थी।

निश्चिंत आह वह—निश्चिंत—चिंताहीनता। उल्लास—प्रसन्नता। काकली—कोकिल की ध्वनि। दिगंत—दिशा।

अर्थ—(वसंत के पक्ष में) कोकिल जब कूकती है तब उस काकली से चिंताहीनता (बेफिक्री) और प्रसन्नता टपकती हैं। उससे उठी आनंद की ध्वनि आकाश के कोने-कोने में गूंज उठती है।

काकली—मधुर मन। स्वर—बात। दिगंत—अंग।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में) मधुर मन से जो बात निकलती है उससे बहुत भारी निश्चिंतता और प्रसन्नता प्रकट होती है और आकाश के समान व्यापक जीवन के सभी अंगों में आनंद की गूंज भर जाती है।

वि०—प्रारम्भ में यौवन चिंताओं में ठोकर मार कर चलता है और सुख की खोज में रहता है। अतः जब तक समाज, धर्म या गुरुजन स्नेह

सम्बन्ध में बाधा डालते दिखाई नहीं देते, तब तक चारों ओर आनन्द की वर्षा सी होती रहती है।

भावार्थ—जैसे कोकिल की मधुर कूक सुन कर यह अनुमान होता है कि यह निश्चित और प्रसन्न मन से गा रही है, उसी प्रकार प्रेमी-प्रेमिकाओं की मधुर प्रणय वाणी से यह आभास मिलता था कि ये प्रसन्न हैं और इन्हें कोई चिंता नहीं सता रही। कोकिल का स्वर जैसे आकाश के कोने-कोने में गूंज उठता है, उसी प्रकार हमारे विस्तृत-जीवन के सभी अंगों में आनंद की ध्वनि भर उठी थी।

पृष्ठ ६४

शिशु चित्रकार—शिशु—बालक। आशा—भावना। अस्पष्ट—ऊटपटाँग। ज्योतिमयी लिपि—रंग।

अर्थ—(बालक के पक्ष में) किसी चंचल बच्चे को जब चित्र बनाने की सूझती है, तब उसके मन में जो भावनाएँ उठती हैं उन्हें अपने ढंग से वह अंकित कर देता है। यदि उसे आँख बनाने की इच्छा होती है तो उनमें प्रकाश दिखाने के लिए वह ऊटपटाँग ढंग से किसी प्रकार का रंग भर देता है।

शिशु—भोले। चित्रकार—कल्पना प्रधान प्रेमी। चंचलता—अन्तःकरण। ज्योतिमय लिपि—सुख पूर्ण भावना। जीवन की आँख—यौवन।

अर्थ—बच्चों के समान भोले कल्पना-प्रधान प्रेमी-प्रेमिका अपने अन्तःकरण में अनेक प्रकार की आशाओं के चित्र खींचते हैं और ऐसा विश्वास करते हैं कि उनके यौवन के दिन उज्ज्वल सुखपूर्ण होंगे। कैसे होंगे, क्या करने से होंगे, इसकी कोई स्पष्ट भावना उनके हृदय में नहीं होती।

वि०—जैसे शरीर में आँख सबसे सुकुमार और मूल्यवान अंग है,

उसी प्रकार जीवन में यौवन भी। इसी से जीवन की आँख को यौवन माना।

शैक्सपियर का कहना है कि कवि, प्रेमी और पागल एक ही श्रेणी के व्यक्ति हैं, क्योंकि वे तीनों ही केवल कल्पना से निर्मित होते हैं—

The poet, the lover and the lunatic
Are of imagination all compact.

भावार्थ—अपने चंचल स्वभाव के कारण बालकों को कभी-कभी चित्र बनाने की इच्छा होती है और वे चट से अपनी समझ के अनुसार कुछ टेढ़ी-सीधी रेखाएँ कहीं खींच लेते हैं। यही दशा उन सरल प्रेमी प्रेमकाओं की थी जो अपनी अल्हड़ता में अनेक प्रकार के सुख-स्वप्नों के कल्पना-चित्र बनाते रहते थे। बच्चे जैसे अपनी बनायी हुई रेखाओं में रंग भरने लगते हैं, उसी प्रकार ये भी ऐसी रंगीन आशा रखते थे कि उनका भविष्य सुखपूर्ण अवश्य होगा। किस मार्ग का अनुसरण करने से होगा, इसकी कोई स्पष्ट भावना उनके मन में न थी। उस समय उतना विश्वास ही उनके लिए सब कुछ था।

लतिका घूंघट से—घूंघट—पत्ता। दुग्ध—श्वेत। मधुधारा—मकरंद। प्लावित—भरना। अजिर—थाला, भूमि।

अर्थ—(वसंत के पक्ष में) लताएँ पत्तों का घूंघट काढ़ जब अपने सुमन-नयनों की श्वेत चितवन से मकरंद बरसाती हैं, तब उनके आसपास की भूमि रस से भर जाती है। इस रस के सामने संसार का समस्त वैभव तुच्छ प्रतीत होता है।

लतिका—लता सी रमणी। अजिर—आँगन।

अर्थ—(यौवन के पक्ष में) रमणियाँ जब लज्जा से घूंघट काढ़ सुमन जैसे सुकुमार नयनों की श्वेत (उज्ज्वल) चितवन से मधुर-मधुर ताकती हैं, तब देखने वालों के मन का आँगन रस से भर जाता है। इस रस के समक्ष संसार का समस्त वैभव फीका लगता है।

भावार्थ—जैसे लताएँ पत्तों की आड़ में छिपे श्वेत पुष्पों के कोने से मकरंद बरसाती हैं और उनसे नीचे की भूमि भर उठती है उसी प्रकार अप्सराएँ जब अपने मुख पर अवगुंठन डाल सुमन-नयनों की दुग्ध जैसी उज्ज्वल कनखियों से मधुर-मधुर ताकती थीं, तब मन अपूर्व प्रेम-रस से परिपूर्ण हो जाता था। उस एक चितवन का मूल्य संसार के समस्त वैभव से कहीं अधिक था।

वे फूल और—फूल—फूल सी सुकुमार देवियाँ। सौरभ—गंध। कलरव—प्यार की मीठी बातें। कोलाहल—आनंद की ध्वनि। एकांत—सूनापन।

अर्थ—एक दिन था कि फूल सी सुकुमार देवियों की हँसी यहाँ बिखरती रहती थी। सुमन की गंध के समान उनकी सुरभित साँसें निकलती थीं। पास बैठी वे प्यार की मीठी बातें करती रहती थीं। गाना होता रहता था। आनन्द की ध्वनि छा जाती थी। पर अब तो एक-मात्र सूनापन शेष रह गया है।

कहते कहते कुछ—निश्वास—साँस फेंकना। प्रगति—गति। प्रगति न रुकी—तार न टूटा।

अर्थ—इसी समय मनु को अपने व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित किसी बात का स्मरण हो आया। इस पर उन्होंने निराशा की एक साँस फेंकी, पर इससे उनकी विचारधारा का तार न टूटा।

पृष्ठ ६५

ओ नील आवरण—आवरण—परदा। दुर्बोध—कठिनाई से ज्ञात होना। अवगुंठन—परदा, घूंघट। आलोक रत्न—प्रकाशपूर्ण नक्षत्र।

तुमसे परे की वस्तुओं का ज्ञान कठिनाई से होता हो, ऐसी बात नहीं है; प्रकाशपूर्ण पदार्थ भी—जैसे सूर्य चंद्र आदि—हमारे नेत्रों के लिए परदे का काम कर रहे हैं। उनकी चकाचौंध में भी हम गगन से परे की वस्तुओं को नहीं देख पाते।

वि०—प्रकाश के कारण तो वस्तुओं के सत्य स्वरूप का ज्ञान होता है; पर यहाँ इन नीलाकाश के साथ ही सूर्य, चंद्र नक्षत्र आदि के सामने आने से इनके घूंघट में छिपा उस परम तत्त्व का मुख दिखाई नहीं देता। यह आश्चर्य की बात है।

चल चक्र वरुण—वरुण का ज्योतिभरा चल चक्र—प्रकाश और चंचलता से पूर्ण चंद्रमा।

अर्थ—हे चंद्रमा, तू आकुल होकर क्यों चक्कर काटता फिरता है। ये तारे नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है किसी की उपासना के लिए तू फूल लिए जा रहा था, वे हाथ से गिर कर बिखर गये हैं। निश्चय ही ये तारे नहीं हैं, तेरी असफलताएँ बिछी पड़ी हैं। भाव यह कि जितने ये तारे हैं, उतनी ही असफलताएँ तुम्हें जीवन में प्राप्त हुई हैं।

वि०—वरुण जल के देवता हैं। प्रत्येक देवता के हाथ में किसी अस्त्र या शस्त्र की कल्पना हिन्दुओं ने की है। विष्णु के हाथ में चक्र, इंद्र के हाथ में वज्र, शिव के हाथ में कोदंड (धनुष) और यमराज के हाथ में गदा मानते हैं। वरुण के हाथ में कवि ने चक्र देखा है। इस चक्र की दो विशेषताएँ हैं (१) यह प्रकाश से पूर्ण है (२) यह चंचल है। चंद्रमा प्रकाश से भरा है और प्रतिपल घूमता रहता है। इसी से 'चलचक्र वरुण का ज्योतिभरा' को चन्द्रमा के अर्थ में ग्रहण किया।

नव नील कुंज—नील कुंज—नील लतागृह के समान आकाश। झीमना—मस्ती से झूमना। कुसुमों—तारों। कथा—कंपन। अंतरिक्ष—वायुमंडल। आमोद—गंध। हिमकणिका—ओस की बूंद।

अर्थ—आकाश ऐसा प्रतीत होता है मानो बहुत से सटे हुए नीले

लता-गृह हों जो पवन के झकोरों से झूम उठे हों। ये कंपित तारे ऐसे लगते हैं जैसे फूल चटख रहे हों। वायु-मंडल में गंध भर गई है मानों इन्हीं तारा-पुष्पों से निकली सुगंध का प्रभाव हो। पृथ्वी पर पड़ी ओस की बूंदें ऐसी दिखाई देती हैं जैसे ऊपर से मकरंद झर पड़ा हो।

इस इंदीवर से—इंदीवर—नील कमल, यहाँ नीलाकाश। मोहिनी—मोहित करने वाली, रम्य। कारा—बंदीगृह।

अर्थ—जैसे कमल से सुगंधित मकरंद की बूंदें झर कर पृथ्वी पर एक जाल-सा बुन देती हैं, वैसे ही नीले कमल के समान इस नीले आकाश से बहने वाले सुरभित सरस पवन के झकोरों का जाल इस शून्य में फैल गया है। जिस प्रकार भौंरा प्रेम-भाव में भर कर उस मोहक वातावरण में फँस जाता है, इसी प्रकार अनुराग उत्पन्न करने वाले इस रम्य वातावरण ने मेरे (मनु के) मन को अपना बंदी बना लिया है।

वि०—कारागृह से सभी घबराते हैं, पर प्रेम का बंदीगृह ऐसा रम्य होता है कि इसमें अपनी ओर से बंद होने के लिए प्राणी तरसते हैं।

अणुओं को है—अणु-परमाणु। विश्राम—ठहरना, रुकना। कृतिमय—कर्म करने का। वेग—गति। अविराम—निरंतर रातदिन। कंपन—पुलकित होना, रोमांचित होना। सजीव—जगना।

अर्थ—ये परमाणु कर्म में इस चंचल गति से लीन हैं कि पल को भी कभी नहीं रुकते। इनके काम ने इनके हृदय में इतना आनंद जगा उठा है कि इससे पुलकित होकर ये रातदिन नाचते रहते हैं।

अनुभव की बात है कि जब व्यक्ति बहुत प्रसन्न होता है, तब नाचने लगता है। नृत्य का जन्म ही प्रसन्नता की अधिकता से हुआ है।

पृष्ठ ६६

उन नृत्य शिथिल—शिथिल—थकना। मोहमयी—मोहक। माया—जादू। समीर—शीतल मंद पवन। छनना—मंद और सूक्ष्म। छाया—शांतिप्रदान करना।

अर्थ—अणु जब नृत्य करते-करते थक जाते हैं तब उनकी साँसें तीव्र गति से चलने लगती हैं। वे ही साँसें छनती-छनती (मंद और सूक्ष्म होती) शीतल सुरभित पवन का रूप धारण कर लेती हैं तथा इतनी मोहक और जादू का सा प्रभाव रखने वाली होती हैं कि शरीर को वायु बन कर स्पर्श करते ही प्राणों तक को शांति प्रदान करती हैं।

वि०—कल्पना कीजिए कि किसी सभा में कोई नर्तकी नृत्य कर रही है और सभी की आँखें उसकी ओर लगी हुई हैं। थक कर वह एक व्यक्ति के निकट आती है और उसकी सुगन्धित तीव्र श्वास उसके शरीर को स्पर्श करती है। कितना सुख मिलता होगा उस व्यक्ति को जिस पर उस नर्तकी का इतना अनुराग बिखरा है! इसी दृश्य के आधार पर समीर को नृत्यशील अणुओं की छनी साँस माना है।

आकाश रंध्र हैं—रंध्र—छिद्र, यहाँ तारे। गहन—गंभीर वातावरण वाली। आलोक—तारे तथा चंद्रमा की किरणें।

अर्थ—ये तारे नहीं हैं आकाश के छिद्र हैं जो उजले प्रकाश से भर दिए गए हैं। इस समय सृष्टि का वातावरण कुछ गम्भीर हो उठा है। तारागण बेहोशी की सी दशा में पड़े हैं और चंद्रमा की किरणें चंचल नहीं हैं। मेरी आँखें इनके रूप को देखते-देखते थक गईं, परन्तु तृप्त नहीं हुईं, इसीसे दुख सी उठी हैं।

सौंदर्यमयी चञ्चल कृतियाँ—कृतियाँ—मूर्तियाँ, चंद्र तारे। नाच रहीं—घूम रहीं। जाँच रहीं—परीक्षा ले रहीं, अवसर नहीं देती।

अर्थ—ये तारे और चंद्रमा जो प्रकाश की सुन्दर और चंचल मूर्तियाँ हैं रहस्य बने घूम रहे हैं। ये इतने मनहर हैं कि इनके रूप पर मेरी आँखें टिक गई हैं और दृष्टि आगे नहीं बढ़ पाती।

वि०—रम्य रूप की पहिचान ही यह है कि उसे व्यक्ति देखता ही रह जाय, इधर-उधर न झाँक सके। रूप मानो देखने वालों की आँखों को ललकारता है कि शक्ति हो तो तल्लीन मत हो।

मैं देख रहा हूँ–धन–ईश्वर।

अर्थ—सृष्टि में दिखाई पड़ने वाली यह सुन्दरता क्या सत्य नहीं, किसी की छायामात्र है? या केवल मन को उलझाकर हमारे लक्ष्य से दूर करने वाली है? सुन्दरता के इस परदे के पीछे क्या ईश्वर नाम की कोई अन्य विभूति छिपी बैठी है?

वि०—दार्शनिकों का विश्वास है कि सृष्टि का समस्त सौंदर्य भगवान के रूप की छायामात्र है। यह बिंब है और सुन्दरता प्रतिबिंब। मुसलमान सूफ़ी भी ऐसी ही आस्था रखते हैं। जायसी ने पद्मावती के रूप का यही प्रभाव मानसरोवर पर दिखाया है–

नयन जो देखा कमल भा, निरमल नीर शरीर,
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर।

विचारकों का यह भी कहना है कि संसार माया है। इसमें जिसका मन उलझ जाता है वह लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाता है। भगवान इस समस्त प्रपंच से परे हैं। मनु इन्हीं धारणाओं को लेकर शंका कर रहे हैं। उन्हें विश्वास नहीं होता कि यह दृश्यमान जगत छाया है, उलझन है, असत्य है।

मेरी अक्षय निधि—अक्षय—स्थायी। निधि—कामना, इच्छा। धागे—डोरे। मन—कारण।

अर्थ—क्या मैं कभी भी इस बात को न जान पाऊँगा कि मेरे मन की वह स्थायी कामना क्या है जिसने मेरे प्राणों को डोरों के समान

उलझा भी रखा है और जो उन्हें सुलझाने का एकमात्र कारण भी है।

वि०—मन में किसी लक्ष्य या इच्छा के स्थिर होते ही उलझन तो इसलिए उत्पन्न होती है कि फिर दिन रात उसकी पूर्ति के प्रयत्न में ही संलग्न रहना पड़ता है, पर दूसरी ओर भटकने का भी प्रश्न नहीं रहता क्योंकि एक मार्ग निश्चित हो जाता है जिस पर निरंतर चलना है।

पृष्ठ ६७

माधवी निशा की—माधवी निशा—वसन्त की रात। अलसाई—शिथिल। अलकों—बालों, यहाँ बादल। लुकते—छिपने का प्रयत्न। अंतः सलिला—पृथ्वी के भीतर बहने वाली सरिता।

अर्थ—हे मेरी इच्छा, तुम वसंत की रात में छा जाने वाले शिथिल बादलों में छिपने का प्रयत्न करने वाले तारे के समान हो। तुम सुनसान मरुभूमि में पृथ्वी के भीतर बहने वाली नदी की धार के सदृश हो।

वि०—बाहर से देखने वालों को किसी की आंतरिक इच्छा का पता नहीं चल सकता, इसी से उसे बादलों में छिपे तारा या पृथ्वी के भीतर बहने वाली सरिता-धारा कहा।

श्रुतियों में चुपके—श्रुति—कान। मधुधारा घोलना—मीठी बातें करना। नीरवता के परदे—रिक्त हृदय।

अर्थ—आसपास किसी के न होने पर भी मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरे कानों में कोई चुप-चुप मीठा-मीठी बातें कर रहा है। मेरे इस रिक्त हृदय में बहुत सी भावनाएँ उठ रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे भीतर बैठा कोई कुछ कह रहा है।

वि०—यहाँ से लेकर तीन छंद शुद्ध अनुभूति प्रधान हैं। जब तक प्राणी इस स्थिति में न हो, कल्पना से इन्हें ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता।

है स्पर्श मलय—झिलमिल—मंद। संज्ञा—चेतना। पुलकित—रोमांच का सुख। तंद्रा—हल्की निद्रा।

अर्थ—लगता है मुझे किसी ने उस कोमलता से छुआ है जिससे मंद मलय पवन स्पर्श करे। मेरी चेतनाशक्ति शिथिल हो रही है। रोमांच का सा सुख मुझे मिल रहा है। मेरी आँखें झिप रही है। मुझे हल्की नींद सी आ रही है।

व्रीड़ा है यह चन्चल—व्रीड़ा—लज्जा। विभ्रम—चौंकना। मृदुल—कोमल। आँखें मीचना—उँगलियों से आँखें ढकना, मस्त बनाना।

अर्थ—(मनोदशा के पक्ष में) मुझे इस समय वैसा ही आनन्द आ रहा है जैसा किसी को उस समय आता होगा जब कोई लजीली चंचल नायिका अपने प्रेमी को देखते ही चौंक कर घूंघट काढ़ती हुई स्वयं नायक के पीछे छिपकर उसकी आँखों को अपनी कोमल उँगलियों से ढक दे।

(आन्तरिक भावना के पक्ष में) मेरे मन की यह चंचल वृत्ति किसी नायिका सी ऐसी लजीली है कि इसे मैं पहचान न पाऊँ इसी से मुझसे चौंक कर यह अपने स्वरूप को छिपाने का प्रयत्न कर रही है। जब उसने स्वयं छिपना सोच रखा है, तब भला अपने शीतल प्रभाव से मुझे क्यों मस्त किए डालती है?

उद्‌बुद्ध क्षितिज की—उद्‌बुद्ध—आलोकित। क्षितिज—आकाश का कोना। छाया—आश्रय या नीचे। काया—शरीर, यहाँ चादर।

अर्थ—आकाश के आलोकित कोने में उगे शुक्र नक्षत्र के नीचे एक काली घटा दिखाई दे रही है। यह किरणों की चादर ओढ़े सो रही है। पर इसी के भीतर उषा का रहस्य छिपा है अर्थात् इस काले बादल के भीतर से ही अभी थोड़ी देर में अरुण उषा झलकेगी।

वि०—मनुष्य विश्वास न करे यह दूसरी बात है, पर किसी लक्ष्य

के आश्रय में दुःख की काली घटा कुछ समय के उपरान्त फट जाती है और उषा के समान सुख उसके भीतर से झलकने लगता है।

पृष्ठ ६८

उठती हैं किरनों—किसलय—नवीन कोमल पत्ती। छाजन—छप्पर, आवरण, ढकना। निस्वन—गूंज। रंध्र—छेद, यहाँ तारे।—

अर्थ—चंद्रमा की किरणों ने इस श्याम घटा को इस तरह अपनी नोंक पर सँभाल रखा है जैसे डंडी पर कोमल नवीन पत्तियों का छप्पर छाया हो। पवन मधुर स्वर से गूंज रहा है। ऐसा लगता है जैसे आकाश एक विस्तृत वंशी हैं, तारे उनके छिद्र और दूर पर छिपा बैठा कोई उसे बजा रहा है।

वि०—जैसे किरणें काले बादल को उठा लेती हैं, उसी प्रकार यदि मनुष्य धैर्य न खोये तो आशा की किरणें निराशा के काले बादल को सँभाले रह सकती हैं। ऐसी स्थिति में उस दुःख में भी हृदय एक प्रकार की मिठास का अनुभव करता रहता है।

सब कहते हैं—खोलो-खोलो—परदा हटाओ। जीवनधन—जीवन सर्वस्व, भगवान्। आवरण—परदा।

अर्थ—घिरते बादलों, अगणित नक्षत्रों और आकुल चन्द्रमा को देख कर ऐसा लगता है मानो सब पुकार कर यह कह रहे हों—सामने से (आकाश के) परदे को हटाओ, हम अपने जीवन-सर्वस्व (भगवान्) की झाँकी पाना चाहते हैं। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि उनके दर्शन के लिये इन्होंने जो भीड़ लगा रखी है इससे दूसरों की दृष्टि के लिये ये स्वयं एक परदा बन गये हैं।

वि०—किसी उत्सव, तमाशे या मन्दिर में भीड़ लगाकर धक्का-मुक्की करने वाले व्यक्ति न स्वयं कुछ देख पाते हैं और न दूसरों को देखने देते हैं। ऐसा ही दृश्य ऊपर के छन्द में है।

चाँदनी सदृश खुल जाय—चाँदनी सदृश—चाँदनी जैसा, चाँदनी का। अवगुंठन—घूंघट। कल्लोल—आनन्द।

अर्थ—चाँदनी का यह घूंघट जो आकाश रूपी समुद्र की पवन-हिलोरों में असीम आनन्द में डूबकर मस्ती से हिल रहा है और जिसे उस सुन्दरी (भगवान्) ने सँभाल कर अपने मुख पर डाल रखा है, यदि किसी प्रकार खुल जाय।

नोट—भाव आगे के छन्द में पूरा होगा।

अपना फेनिल फन—फेनिल—फेन जिससे झरे। उन्निद्र—उनींदी, झूमते हुये। उन्मत्त—आवेश। मणियों—चन्द्र और तारों।

अर्थ—चाँदनी का यह उपर्युक्त घूंघट आकृति में शेषनाग के फण के समान है। जैसे फण के झटका खाते ही मुख से फेन गिरने लगता और शीश से मणियाँ झरने लगती हैं, उसी प्रकार चाँदनी के हिलते ही चन्द्रमा और नक्षत्रों के रूप में फेन और मणिजाल बिखर जाता है। जैसे शेषनाग प्रेम के आवेश में झूमते हुये भगवान् का निरन्तर गुण गान करते रहते हैं, उसी प्रकार यह चाँदनी उनींदी सी प्रतीत होती है और पवन के रूप में कुछ मत्त रागिनी गाती रहती है। चाँदनी का यह घूंघट यदि खुल जाय तो उसके दर्शन हो जायँ।

वि०—क्योंकि घूंघट कुछ कुछ झुके फण की आकृति का होता है, इसी से प्रसाद ने चाँदनी रूपी घूंघट की तुलना शेषनाग के फण से की है। पर यह कल्पना हमारी समझ में न तो रम्य है और न उपयुक्त।

'प्रसाद' जी इसके पूर्व ही आकाश के साथ प्रकाश को अवगुंठन मान चुके हैं। देखिए—

ओ नील आवरण जगती के दुर्बोध न तू ही है इतना,
अवगुंठन होता आँखों का आलोक रूप बनता जितना।

यहाँ स्पष्टता से समझ लेना चाहिये कि, चाँदनी शेषनाग के फण के लिये, पवन लहरों के लिये, फेन और मणियाँ चन्द्र और तारागणों

के लिये, तथा वायु की सनसनाहट सर्पराज के मुख से निकले भगवान के निरन्तर कीर्तन के लिये प्रयुक्त है।

पृष्ठ ६९

जो कुछ हो—न सँभालूँगा—तिरस्कार न करूगा। जीवन का मधुर भार—प्रेम। दम—किसी इच्छा का दमन करना।

अर्थ—परिणाम चाहे कुछ भी निकले, पर आज से मैं जीवन के इस मधुर भार का, जिसे प्रेम कहते हैं, तिरस्कार न करूँगा। मेरे मन में बीच-बीच में इस वृत्ति को दमन करने की या संयमपूर्वक दिन काटने की प्रेरणा होगी। ऐसी भावनाओं को मैं प्रेम-पथ की बाधायें समझ कर हटा दूँगा। ऐसे विघ्न जितने भी आवें, उन्हें आने दो। मैं चिन्ता नहीं करता।

नक्षत्रों तुम क्या—संकल्प—इच्छा।

अर्थ—(नक्षत्र-पक्ष में) हे नक्षत्रो, उषा की लालिमा कैसी होती है, यह जानना तुम्हारे भाग्य में है ही नहीं, क्योंकि तुम दोनों एक साथ नहीं रह सकते। प्रभात की वह अरुणिमा प्राणियों को नव प्रकाश देने की इच्छा से आती है। तुम देख नहीं पाते; अतः वह नही है, इस प्रकार का सन्देह तुम व्यर्थ ही करते हो।

(ज्ञान-पक्ष में)—नक्षत्र—उज्ज्वल ज्ञान के अधिपति, संयम से रहने वाले ज्ञानी। ऊषा की लाली—सांसारिक सौंदर्य।

अर्थ—हे संयम से रहने वाले व्यक्तियो, सांसारिक सौंदर्य के मूल्य को तुम क्या जानो? तुम्हारा तो उससे साथ निभ ही नहीं सकता। वह जीवन में नवीन प्रकाश फैलाने आता है। तुम उसके संपर्क से वंचित हो; अतः वह असत्य है, धोखा है, ऐसा संदेह तुम व्यर्थ ही करते हो।

नोट:—'लाली' के लिए 'उनमें' बहुवचन का प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है।

कौशल यह कोमल—कौशल—चतुराई । कोमल—सूक्ष्म । सुषमा—सौंदर्य । दुर्भेद्य—न जान पाना । हार—पतन ।

अर्थ—भगवान की यह कैसी सूक्ष्म चतुराई है कि सौंदर्य के रहस्य को हम जान नहीं पाते । मेरी इंद्रियों में जो चेतना उन्होंने भर दी है, वह क्या इसलिए कि मेरे पतन का कारण बने ?

वि०—कुछ विचारक कहते हैं सुन्दरता भ्रम है, वह संसार में मन को फँसाये रखने के लिए जाल है, भगवान से दूर करने वाली प्रवंचना है; कुछ का विश्वास है वह विभु की विभूति है, प्राणों में उसे भर कर उन्हें शीतल करो । सामान्य बुद्धि कुछ निर्णय नहीं कर पाती, क्या करे ? यही दशा इंद्रियों की है । एक वर्ग समझाता है, इनका दमन करो, ये तुम्हारे पतन का कारण हैं; दूसरा घोषणा करता है, इनसे काम लो, इनकी रचना इसीलिए हुई है ।

पीता हूँ हाँ—मधु लहर—मस्त भाव ।

अर्थ—शरीर रूपी प्याले में भरे इस जीवन-रस को जो स्पर्श, रूप, रस, गंध से निर्मित है मैं पीना प्रारंभ करता हूँ । अर्थात् आज से मैं यह विश्वास करता हूँ कि हाथ कोमल अंग को छूने के लिए बने हैं, नेत्र रूप को निरखने के लिए, जिह्वा रस चखने के लिए और नासिका गंध सूंघने के लिए । अतः अपनी इंद्रियों का उपयोग मैं पूर्ण रूप से करूंगा । जब लहरें तट से टकराती हैं तब उनकी ध्वनि में एक मधुर गूंज समायी रहती है; इसी प्रकार हृदय के तट पर जब मस्त भाव टकराते हैं तब वे एक विलक्षण आनन्द की सृष्टि करते हैं ।

पृष्ठ ७०

तारा बन कर—स्पर्शों का उन्माद—उन्मत्त भावनाएँ । मादकता—यौवन का नशा । माती नींद—मस्ती । सोऊँ—चुप रहूँ । अवसाद—दुःख ।

अर्थ—मेरी उन्मत्त भावनाएँ आज उसी प्रकार छिन्न भिन्न हो

गई हैं जिस प्रकार आकाश में तारे छितरे पड़े हैं। यौवन के नशे की मस्ती जब छा रही हो तब क्या मैं मन में दुःख भर कर चुप रहूँ?

चेतना शिथिल सी—चेतना—स्फूर्ति। अंधकार—निराशा। लहर—भाव। डूबना—विचार मग्नता। पिछले पहरों—रात के तीसरे और चौथे प्रहर।

अर्थ—अपने हृदय के निराश भावों में जब मैं डूबता हूँ तो सारी स्फूर्ति शिथिल हो जाती है। इस प्रकार के विचारों में जब मनु क्रमशः निमग्न हुए तब रात्रि का तीसरा प्रहर समाप्त होने वाला था और चौथा लगने वाला।

उस दूर क्षितिज में—दूर—भूतकाल। क्षितिज—आकाश का कोना, मन। संचित छाया—काले बादल, धुँधली स्मृतियाँ। माया—स्वभाव।

अर्थ—जैसे दूर आकाश के कोने में श्याम मेघ एकत्र हो जाते हैं, उसी प्रकार मनु के मन के किसी कोण में भूलकाल की धुँधली स्मृतियाँ घिर कर अपना एक नवीन संसार रचने लगीं। यह मन स्वभाव से ही चंचल है। प्रतिपल कुछ न कुछ सोचता रहता है।

जागरण लोक था—जागरण लोक—बाहरी संसार। स्वप्न—कल्पना। सुख—मधुर। संचार—जगाना। कौतुक—कौतूहल, विस्मय। क्रीड़ागार—खेलने का स्थान।

अर्थ—बाहरी संसार का मनु को कुछ भी ज्ञान न रहा। उनके मन में (सृष्टि-रचना संबंधी) एक कौतूहल उठा जिसने अनेक मधुर कल्पनाओं को जगाया। इन भावनाओं से उनका हृदय बहुत देर तक खेलता रहा।

था व्यक्ति सोचता—सजग—जाग्रत। कानों के कान खोल कर—स्पष्ट शब्दों में।

अर्थ—जब मनुष्य आलस्य में पड़ा-पड़ा कुछ सोचता है, तब

उसकी चेतना और भी जाग्रय हो जाती है। मनु ने ऐसी ही स्थिति में पहुँच कर अत्यंत स्पष्ट वाणी में किसी को बोलते सुना।

वि०—आलस्य में चेतना के अधिक सजग होने का कारण यह है कि एकाग्रता (concentration) बढ़ जाती है।

यह एक प्रकार से आकाश-वाणी है; पर किसी को आपत्ति न हो इसी से उन्होंने ऊपर 'स्वप्न' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि स्वप्नावस्था में उन्होंने काम की वाणी सुनी।

+ + + +

पृष्ठ ७१

प्यासा हूँ मैं—प्यासा—अतृप्त। ओघ—वासना की बाढ़। तृष्णा—कामना। चैन—शांति।

अर्थ—कामदेव बोला—मैं अब भी अतृप्त हूँ। देवताओं के जीवन में वासना की बाढ़ आई जो चढ़ कर उतर भी गई, पर मेरा जी न भरा। मेरी कामना कुछ भी शांत न हुई।

देवों की सृष्टि—सृष्टि—जाति। विलीन—नष्ट। अनुशीलन—चिंतन। अनुदिन—प्रतिदिन। अतिचार (Excess) अत्यधिक आसक्ति।

अर्थ—रात दिन मेरा (काम का) चिंतन करने से देवजाति नष्ट हो गई। मेरे प्रति उनकी अत्यधिक आसक्ति कभी कम न हुई। वासना से सब उन्मत्त रहते थे।

मेरी उपासना करते—विधान—नियम। विलास वितान तना—विलास का चँदोवा तान दिया, विलास फैला दिया।

अर्थ—वे मेरे (काम के) उपासक थे। मेरी प्रेरणा से उनके नियम बनते थे। मेरे प्रति अत्यधिक आकर्षण ने उनमें घना विलास फैला दिया।

वि०—'संकेत विधान बना' का तात्पर्य यह है कि यदि कामभावना यह प्रेरणा करती थी कि देवता और अप्सरियाँ स्वतन्त्रता से मिलें तो वे

लोग ऐसा नियम चट से बना देते थे कि स्वतन्त्रता से मिलना सभ्यता का सूचक है अतः यदि दो प्राणी कभी किसी से कहीं मिलना चाहें तो किसी को कोई आपत्ति न होगी।

मैं काम रहा—सहचर—संगी। साधन—कारण। कृतिमय—कर्ममय, गति।

अर्थ—देवताओं के जीवन में मैं सदैव संगी रहा। उनके मनोरंजन का एकमात्र कारण मैं था। उन्हें प्रसन्न रखने में मुझे प्रसन्नता प्राप्त होती थी। सच पूछो तो उनके जीवन में गति भरने वाला मैं ही था।

पृष्ठ ७२

जो आकर्षण बन—हँसना—रूप का झलकना। अनादि—स्थायी। अव्यक्त—सूक्ष्म! उन्मीलन—विकास।

अर्थ—देवियों के हृदय में स्थायी रूप से रहने वाली वासना का ही दूसरा नाम रति है। उस वृत्ति के उभरते ही रूप झलक उठता है और प्रेमियों को आकर्षित करता है। सूक्ष्म प्रकृति से जब स्थूल सृष्टि बनी उस समय उसके हृदय में भी वासना का निवास था।

वि०—चंद्रगुप्त नाटक में सुवासिनी कहती है—

"राज कुमारी! काम संगीत की तान सौंदर्य की रंगीन लहर बन कर युवतियों के मुख में लज्जा और स्वास्थ्य की लाली चढ़ाया करती है।"

हम दोनों का अस्तित्व—दोनों—रति और काम। आवर्त्तन—चक्कर। संसृति—संसार। आकार—वस्तुओं की आकृति। रूप का नर्तन—वस्तुओं का रूप।

अर्थ—जिस प्रकार कुम्हार अपने चाक को चक्कर देता हुआ नृत्य करते हुए भिन्न-भिन्न आकार के पात्र उतार देता है, उसी प्रकार प्रारंभ में हमारी प्रेरणा से ही संसार में भिन्न-भिन्न आकार और रूप की वस्तुएँ बनीं।

वि०—कुलाल-चक्र का वर्णन इस छंद में यद्यपि है नहीं, पर

'आवर्त्तन' और 'नर्त्तन' शब्दों के अर्थ का आधार वही गोचर दृश्य है।

उस प्रकृति लता—पुष्पवती—फूलों से युक्त, ऋतुमती। दो रूप—दो अणु।

अर्थ—जैसे वसंत के दिनों में लता फूलों से युक्त हो जाती है; उसी प्रकार जब प्रकृति युवती हुई तो प्रजनन (जन्म देने की) शक्ति उसमें आई। पहिली ही बार जब वह खिली तब उससे सुन्दर आकृति के दो अणु उत्पन्न हुए।

वह मूल शक्ति—मूल शक्ति—अनादि सूक्ष्म प्रकृति। उठ खड़ी हुई—विकास को प्राप्त हुई। आलस—जड़ता।

अर्थ—वह अनादि सूक्ष्म प्रकृति जड़ता को दूर फेंककर विकास को प्राप्त हुई। जैसे मा का प्रेम प्राप्त कर किसी गृहस्थ के आँगन में बच्चे दौड़ने लगते हैं, उसी प्रकार प्रकृति का प्रेम प्राप्त कर शून्य में अणु ही अणु भर गए।

पृष्ठ ७३

कुंकुम का चूर्ण—कुंकुम—केसर। अंतरिक्ष—शून्य। मधु उत्सव—वसंतोत्सव, होली।

अर्थ—विद्युत्कण जब एक दूसरे से टकराते तब प्रकाश की एक झलक फूट उठती थी। उसे देखकर ऐसा लगता था मानो शून्य में वसंतोत्सव मनाया जा रहा है और वह दृश्य उपस्थित हो गया है जब होली पर प्राणी एक दूसरे पर केसर का चूर्ण छिड़कते हुए आवेश के साथ गले मिलने को बढ़ते हैं।

वह आकर्षण—माधुरी छाया—मधुर वातावरण। मतवाली—मस्ती से भरी। माया—मोहक।

अर्थ—सबसे पहिले एक मधुर वातावरण में अणु का अणु के प्रति आकर्षण और फिर उनका मिलन हुआ। इसी क्रिया से आगे

चल कर उस संसार की रचना हुई जो मस्ती से पूर्ण और अत्यन्त मोहक है।

प्रत्येक नाश विश्लेषण—नाश—प्रलय में। विश्लेषण—कणों के रूप में बिखरना। संश्लिष्ट—कणों का एकत्र होना। मादक—मस्त कर देने वाले।

अर्थ—प्रलय के कारण जो वस्तुएँ नष्ट होकर कणों के रूप बिखर गई थीं, अब फिर वे कणों के एकत्र होने से नवीन रूप में उत्पन्न हुईं और इस प्रकार सृष्टि बनी। जैसे वसंत में सभी स्थान फूलों से भर जाते हैं और उन फूलों से फिर मस्त कर देने वाले मकरंद की बूंदें झरने लगती हैं, उसी प्रकार प्रकृति एक बार फिर हरी-भरी और रसपूर्ण हो गई।

भुजलता पड़ी सरिताओं—शैल—पर्वत। सनाथ—धन्य। व्यजन—पंखा।

अर्थ—पर्वतों से बहने वाली नदियाँ ऐसी प्रतीत होती थीं जैसे उन्होंने लता जैसी लम्बी पतली अपनी धारा रूपी भुजा को प्रियतम पर्वतों के गले में फाँस कर उन्हें धन्य कर दिया है। इधर समुद्र अपनी (डाल) हिलोरों से तप्त धरणी पर पंखा-सा झलने लगा। इस प्रकार जहाँ देखो वहाँ प्रेमी प्रेमिकाओं ने अपने-अपने जोड़े बना लिए।

कोरक-अंकुर सा—कोरक—कली। झूलना—प्रसन्न होना। नवल सर्ग—नवीन सृष्टि।

अर्थ—अंकुर और कली के समान हम दोनों साथियों का भी जन्म हुआ। इससे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। जैसे वन में मलय पवन के चलने से अंकुर बढ़ता और कलियाँ फूल बनती हैं, उसी प्रकार उस नवीन सृष्टि में हमने भी यौवन प्राप्त किया।

वि०—अंकुर के उगने और बढ़ने पर कली आती है; अतः कोरक-अंकुर चिरसंगी हैं।

पृष्ठ ७४

हम भूख प्यास—आकांक्षा—कामना। समन्वय—मेल। यौवन वय—यौवनावस्था।

अर्थ—जैसे भूख लगती है, प्यास लगती है, उसी स्वाभाविकता से हम सबके प्रिय हुए। हम आकांक्षा का तृप्ति से मेल कराने लगे अर्थात् मन में हम प्रेम की कामना जागरित करते और उसकी पूर्ति का उपाय बतलाते। देवताओं की उस सृष्टि में जो युवक युवतियों से पूर्ण थी हमारा नाम 'काम' और 'रति' पड़ गया।

वि०—सुनते हैं देवता शरीर से कभी वृद्ध नहीं होते।

सुर बालाओं की—तंत्री—वीणा। लय—स्वर में स्वर मिलाना, विरोध न करना। राग भरी—प्रेममयी।

अर्थ—रति देवियों की सखी बनी। वह उनकी हृदय-वीणा के सुर में सुर मिलाती रहती थी अर्थात् सदैव सुरांगनाओं के मन के अनुकूल बात कहती। क्योंकि वह प्रेम के मधुर जीवन से परिचित थी; अतः उनके प्रेम-पथ की उलझनें दूर करती रहती थी।

मैं तृष्णा था—तृष्णा—इच्छा। तृप्ति—प्राप्ति, संतोष। आनंद समन्वय—आनंद मिलना। पथ—प्रेम का मार्ग।

अर्थ—इधर मैं देवताओं के हृदय में इच्छाओं को उभारता और उधर रति अप्सरियों को ऐसे उपाय सुझाती रहती जिनसे इच्छाओं की पूर्ति हो। इस प्रकार आनंद प्रदान करते हुए हम अपने इच्छित मार्ग पर इन्हें ले जा रहे थे।

वे अमर रहे न—अमर—देवजाति। विनोद—भोग विलास। अनंग—जिसके अंग (शरीर) न हो, कामदेव का एक नाम। अस्तित्व —जीवन। प्रसंग—कहानी।

अर्थ—आज न वह देवजाति रही और न उनका भोग-विलास। मैं भी उस रूप में रहा। एक चेतना मात्र रह गया, अशरीरी हो गया।

मेरी सरल कहानी इतनी सी है। मेरा जीवन एक भावमात्र में सिमिट कर रह गया है और आज मैं इधर उधर भटकता फिरता हूँ।

पृष्ठ ७५

यह नीड़ मनोहर—नीड़—घोंसला। कृतियों—कर्म। रंगस्थल—रंगमंच। परंपरा—क्रम, एक के पीछे एक का आना।

अर्थ—संसार कर्म की रंगभूमि है। जैसे घोंसले की शोभा सुंदर पक्षियों से होती है, उसी प्रकार जगत में शोभा केवल उस मनुष्य की है जो शुभ कर्म करता है। यहाँ एक जाता है, दूसरा आता है। जिसमें जितनी शक्ति है वह उतनी ही देर यहाँ रुक पाता है।

वि०—शैक्सपियर के 'मर्चेंट ऑव वेनिस' में एन्टोनियो कहता है—

The world is a stage, Gratiano
Where every man must play his part
And mine a sad one.

वे कितने ऐसे—साधन (tools.), दूसरों की इच्छापूर्ति के लिए प्रयुक्त होना। सबंधसूत्र बुनना—काम पूरा करना।

अर्थ—संसार में बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जिनका जन्म दूसरों की इच्छा पूर्ति के लिए ही होता है। जैसे कपड़ा बुनते समय धागों का छुटकारा तब तक नहीं जब तक वस्त्र पूरा न बुन जाय, उसी प्रकार जो काम लेने वाले व्यक्ति हैं वे ऐसे मनुष्यों से प्रारम्भ करा कर उस समय तक काम लेते रहते हैं जब तक उनका काम पूरा न हो जाय।

वि०—संसार में थोड़े व्यक्ति स्वामी हैं, शेष सेवक। अधिकतर व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका जीवन दूसरों की स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही होता है।

ऊषा की सजल—सजल—सरस। गुलाली—लालिमा। घुलती—फैलती। वर्ण—रंग। मेघाडंबर—संध्या समय के बादल।

अर्थ—प्रभात काल में ऊषा की सरस लालिमा जो नीले आकाश

में फैलती है उससे तुम क्या समझते हो ? संध्या समय रंग-बिरंगे जो बादल छाते हैं, वे किस बात का आभास देते हैं, बता सकते हो ?

अंतर है दिन—साधक कर्म—कर्म की साधना।

अर्थ—पहले दृश्य को तुम दिन कहते हो और दूसरे को रात्रि का प्रारंभ। पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखो तो कर्म की साधना चल रही है। यह आकाश नहीं है, माया का नीला अंचल है। यह उषा और संध्या की लालिमा नहीं, उस अंचल से प्रकाश की बूंदें बरस रही हैं।

वि०—भाव यह कि इस संसार में माया का राज्य है और जैसे जैसे रात-दिन ढलते हैं वैसे ही वैसे प्रकृति अपना कर्म पूरा किए जा रही है। अतः मनुष्य को भी कर्म से विरत न होना चाहिए।

रहस्य सर्ग में 'इच्छा लोक' के प्रसंग में आया है

घूम रही है यहाँ चतुर्दिक, चल चित्रों की संसृति छाया,
जिस आलोक विंदु को घेरे, वह बैठी मुस्क्याती माया।

पृष्ठ ७६

आरंभिक वात्या उद्गम—वात्या उद्गम—पवन का जन्म। प्रगति—विकास। संसृति—संसार। शीतल छाया—संयमपूर्ण आश्रय। ऋण शोध—सुधार। कृति—भावना।

अर्थ—जैसे सबसे पहिले शून्य आकाश से पवन का जन्म होता है, उसी प्रकार मेरा जन्म सबसे पहिले हुआ है। जैसे उस वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी का विकास हुआ उसी प्रकार चेतन जगत मेरे (काम के) द्वारा विकास को प्राप्त हुआ है। देवताओं के यहाँ अति होने से जो वृत्ति विकृत हो गयी थी, वही भावना मानव जाति के संयमपूर्ण आश्रय में सुधर जायगी।

दोनों का समुचित—दोनों—वासना और संयम। समुचित—उचित। प्रतिवर्त्तन—आदान प्रदान, विशेषमात्रा या अनुपात

(Ratio) में होना। प्रेरणा—काम की भावना। विप्लव—नाश। ह्रास–संयमित।

अर्थ—जीवन का ठीक विकास, वासना और संयम के उचित अनुपात में होने से ही होता है। देवताओं के जीवन में काम की प्रेरणा एक अंधवृत्ति के रूप में थी। उसका परिणाम यह हुआ कि उस जाति का नाश हो गया। अब वह प्रेरणा उतनी उग्र न होगी, संयमित रहेगी।

यह लीला जिसकी—यह लीला—सृष्टि। मूलशक्ति—आदि शक्ति। उसका—प्रेम का। संसृति—संसार। वह अमला—श्रद्धा।

अर्थ—उस आदि शक्ति का नाम जिससे सृष्टि का विकास हुआ 'प्रेम' है और उस प्रेम का संदेश सुनाने के लिए संसार में एक उज्ज्वल शक्ति आई है।

वि०—यहाँ 'वह अमला' से तात्पर्य 'श्रद्धा' अथवा कामायनी से है। स्थूल जगत में यह श्रद्धा काम और रति की पुत्री थी, और भावजगत में यह एक वृत्ति है जिसका अर्थ आस्था का होता है।

पृष्ठ ७७

हम दोनों की संतान—दोनों—रति काम।

अर्थ—वह मेरी और रति की पुत्री है। स्वभाव की भोली और सुन्दर है। वह रंगीन फूलों की शाखा के समान आकर्षक है।

वि०—कामायनी के 'आमुख' में प्रसाद ने श्रद्धा को काम की पुत्री इस पंक्ति के आधार पर माना है—"कामगोत्रजा श्रद्धानामर्षिका"। परन्तु यदि उसे भाव भी मानें तो इस प्रकार समझना चाहिए कि काम-रति प्रेम के प्रेरक हैं, प्रेम से श्रद्धा उत्पन्न होती है अर्थात् जिसे हम प्रेम करते हैं उसमें आस्था रखते हैं, उस पर संदेह नहीं करते।

जड़ चेतनता की—जड़—जड़ प्रकृति। चेतनता—चेतन प्राणी। गाँठ—अनुराग का बंधन। सुधार—ठीक। उष्ण विचार—क्षोभ उत्पन्न करने वाले विचार।

अर्थ—चेतन प्राणी का जड़ प्रकृति में अनुराग उसी के कारण स्थापित होता है। भूलों को ठीक कर वह सारी समस्याओं को सुलझा देती है। जीवन में जब क्षोभ उत्पन्न करने वाले विचार उठते हैं तब वह शीतलता और शांति प्रदान करती है।

वि०—नारी के कारण सृष्टि प्यारी लगने लगती है और जब पुरुष अशांत होता है तब वह अपने दुलार का हाथ फेर कर उसे अगाध शांति देती है।

भाव पक्ष में इस छंद को इस दृष्टि से देखना चाहिये कि जब तक संसार में आस्था न होगी—यह सन्देह बना रहेगा कि संसार असत्य है—तब तक प्रकृति प्रिय लग ही नहीं सकती। जब किसी में विश्वास होता है तब उसकी भूलों को भी क्षमा कर देते हैं और यदि उसके प्रति विरोधी भाव उठते भी हैं तो थोड़ी देर में शांत हो जाते हैं।

उसके पाने की—वह ध्वनि—काम की वाणी।

अर्थ—हे मनु, यदि उसे पाने की इच्छा है तब उसके योग्य बनो। ऐसा कहती हुई वह वाणी उसी प्रकार शांत हो गई जैसे बजते-बजते वंशी बंद हो जाती है।

वि०—जीवन में जिसे हम प्रेम करना चाहें उसके योग्य भी हम हैं अथवा नहीं यह देख लेना चाहिए। यदि कोई दुराचारी किसी अत्यंत सभ्य, शिक्षित और सुशील रमणी से प्रेम प्रदर्शित करता है, तब वह अपना, अपनी स्नेहपात्री और प्रेम तीनों का अपमान करता है।

मन अस्थिर है, अतः यदि श्रद्धा को अंतर में बसाना चाहता है तो उसे संशयशील न होना चाहिए। इस श्रद्धा के होने से ही कर्म, भक्ति और ज्ञान में सफलता मिलती है।

मनु आँख खोल—पथ—उपाय। देव—कामदेव।

अर्थ—मनु ने आँख खोलकर (सचेत होकर) पूछा: हे देव, जिस निर्मल ज्योतिमयी की आपने चर्चा की उस तक पहुँचने का

कौन-सा मार्ग (उपाय) है ? यदि कोई उसे प्राप्त करना चाहे तो कैसे प्राप्त करे ?

पर कौन वहाँ—स्वप्न—कल्पना। भंग—टूटना। प्राची—पूर्व दिशा। अरुणोदय—सूर्य का उगना। रसरंग—सरस लालिमा।

अर्थ—पर वहाँ उत्तर देने वाला कोई था ही नहीं। मनु जो सपना देख (कल्पना कर) रहे थे, वह टूट गया। इसी समय रम्य पूर्व दिशा में सूर्य उदित हुआ और सरस लालिमा छा गई।

पृष्ठ ७८

उस लता कुंज—झिलमिल—झलक। हेमाभिरश्मि—सुनहली आभा से युक्त किरण। सोम सुधा रस—प्राचीन काल की किसी लता से खिंचा हुआ एक मधुर मादक रस।

अर्थ—उस झलकते हुए लता-गृह के साथ सुनहली किरण क्रीड़ा कर रही थी और वह वेल जिससे देवता लोग सोम रस तैयार किया करते थे आज मनु के हाथ में थी।

वि०—आगे चल कर मनु और श्रद्धा एक दूसरे को आत्म-समर्पण करेंगे, अतः यहाँ पृष्ठभूमि में पहले से ही प्रकृति की वस्तुओं को प्रेम-मग्न दिखाया है। 'कुंज' 'पुल्लिंग' है और 'रश्मि' स्त्रीलिंग। राम-सीता के दृष्टिमिलाप के पूर्व भी तुलसी ने यही किया है—

भूप बाग वर देखेउ जाई।
जहँ वसंत ऋतु रही लुभाई।
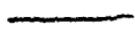
वासना

कथा—इस सर्ग में बाह्य कथानक का उतना विकास नहीं हुआ जितना आंतरिक वृत्तियों का। दो प्राणी जब एक दूसरे के सम्पर्क में आकर चुप-चुप आकर्षण का अनुभव करते हैं, तब क्या होता है कैसा लगता है, यही दिखाना इसका मुख्य उद्देश्य है।

श्रद्धा मनु के साथ रहने तो लगी, पर दोनों ही अपने अपने मन की बात कहने में सकुचाते थे; अतः उस निकटता में भी एक प्रकार की दूरी बनी रही। एक दूसरे का परिचय पाकर भी जैसे वे एक दूसरे को जान न पाये। एक दिन संध्याकाल था; मनु चिंतन में लीन थे। उसी समय उन्होंने देखा कि श्रद्धा बड़े भोलेपन के साथ एक पशु से खेल रही है और वह पशु उसके चारों ओर स्नेह से भर कर चक्कर काट रहा है। इससे उन्हें बड़ी पीड़ा हुई। वे सोचने लगे, हम से तो यह पशु ही अच्छा है जिसे श्रद्धा का स्नेह तो मिला है। ईर्ष्या-भावना कुछ और तीव्रता पकड़ गई। झुँझलाहट में भर कर वे कहने लगे : ये पशु मेरे ही दिए अन्न से तो इस घर में पल रहे हैं। यदि मैं अन्न न जुटाऊँ तो सब मर जायँ। पर मेरा तिरस्कार करने पर जैसे सब तुले हैं, कोई भी मुझे प्रेम नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि संसार की सभी उपयोगी और सुन्दर वस्तुएँ केवल मेरे सुख-विधान के लिए प्रयुक्त हों। आज से यही होगा।

इस बीच श्रद्धा निकट आ गई और मनु की आकृति को देखते ही उसने भाँप लिया कि आज इनका हृदय किसी कारण से आंदोलित और क्षुब्ध है। उसने अत्यन्त स्नेह से उनके शरीर को अपनी सुकुमार

उँगलियों से स्पर्श किया जिससे मनु के अंतर की ईर्ष्याग्नि एकदम शांत हो गई।

मनु बोले : यह क्या बात है कि तुम आकर्षित करती हुई भी मुझसे दूर-दूर रहती हो ! कितने परिताप की बात है कि तुम्हारे होते हुए भी मैं इतना दुःखी हूँ। मेरी पूछो तो मुझे ऐसा लगता है जैसे जिसकी खोज में मैं आज तक घूम रहा था, तुम्हारे रूप में वही मुझे प्राप्त हो गई है। संसार में एक-एक वस्तु आकर्षण-पाश में बद्ध है, फिर हम ही दोनों पास रहते हुए क्यों बिछुड़े हुए हैं ? बताओ, क्या मैं कभी सुखी न हो सकूंगा ? श्रद्धा ने उत्तर दिया : ऐसी बातें मैंने पहली ही बार तुम्हारे मुख से सुनी हैं। सच, मुझे पता नहीं था कि मेरे कारण तुम इतने व्यथित हो ! इतना कह कर मनु का हाथ पकड़ वह चाँदनी में उन्हें खींच लायी। उस रम्य वातावरण के प्रभाव से मनु का हृदय और भी अधिक धड़कने लगा और आवेग की बातें बराबर उनके अंतर से उमड़ती रहीं : मेरा मन वेदना की चोटों से आहत होकर छटपटा रहा है। उसे यदि कहीं विश्राम मिल सकता है तो केवल तुम्हारे प्रणय की शांत शीतल छाया में ही। आज अपने मधुर अतीत की स्मृति मुझे सता रही है। बचपन में मेरी भी एक संगिनी थी जिसका नाम श्रद्धा था। काम उसके पिता थे। प्रलय में वह मुझसे बिछुड़ गई, पर तुम्हारी छवि उसकी छवि से एकदम मेल खाती है; अतः मैं समझ रहा हूँ कि उसी को को मैंने फिर प्राप्त किया है। तुम्हारी मुसिकान ने न जाने कितने सुख के सपने मेरे हृदय में जगाये हैं !

श्रद्धा सब सुन रही थी, सब समझ रही थी। यों उसे बड़ा सुख मिल रहा था, पर लज्जा ने उसी समय उसके हृदय पर अधिकार जमा लिया और मनु के लिए आकुलता और मधुरता का अनुभव करने पर भी वह न तो कुछ कह ही सकी और न कुछ कर ही।

पृष्ठ ८१

चल पड़े कब से—अश्रांत—निरंतर। भ्रांत—जिसका गंतव्य-स्थान (destination) निश्चित न हो। विगत विकार—पवित्र हृदय वाला। प्रश्न—अभाव। उत्तर—पूर्ति।

अर्थ—जैसे दो दिशाओं से चलने वाले दो पथिक जिनके पहुँचने का स्थान निश्चित न हो, मार्ग में भटकते-भटकते निरंतर चलते रहें और सहसा कहीं एक दूसरे को मिल जायँ, वैसे ही श्रद्धा और मनु जीवन-पथ के दो पथिक थे, दोनों का हृदय जीवन-साथी खोजने को बहुत दिनों से भटक रहा था, अकस्मात् हिमालय की तलहटी में (मनु के निवास-स्थान पर) दोनों की भेंट हो गई।

एक (मनु) घर का स्वामी था और दूसरा (श्रद्धा) पवित्र हृदय वाला अतिथि। एक (मनु) अभावों से भरा था और दूसरा (श्रद्धा) उन अभावों की पूर्त्ति करने वाला।

वि०—श्रद्धा नारी है, पर उसे व्यक्ति मानकर कवि 'दूसरा था' से पुल्लिङ्ग में सम्बोधन कर रहा है। आगे भी उसने ऐसा ही किया है।

एक जीवन सिंधु था—जीवन—जल। लघु—छोटी। लोल—चंचल। नवल—नवीन। अमोल—अमूल्य। सजल उद्दाम—घना जल बरसाने वाले। रंजित—युक्त। श्री कलित—शोभा भरी।

अर्थ—मनु यदि जल से भरे समुद्र के समान थे, तो श्रद्धा उसमें उठने वाली एक छोटी सी चंचल लहर थी। मनु यदि नव प्रभात के सदृश थे, तो श्रद्धा एक अमूल्य सुनहली किरण जैसी।

मनु यदि घना जल बरसाने वाले वर्षाकालीन आकाश के समान थे, तो श्रद्धा किरणों से झलकती शोभाभरी बदली जैसी।

वि०—समुद्र और लहर, प्रभात और किरण, आकाश और बादल सभी में यह बात ध्यान देने योग्य है कि पहली वस्तुएँ व्यापक हैं, दूसरी उनका अंश। साथ ही ये वस्तुएँ एक दूसरे से चिर-संबंधित हैं। तीसरे

पहली वस्तुओं की शोभा दूसरी वस्तुओं से ही है। कहना चाहिए कि यदि दूसरे वर्ग की वस्तुएँ न हों तो पहले वर्ग की वस्तुएँ व्यर्थ सिद्ध हों। यही दशा स्त्री पुरुष की है। स्त्री के बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है, शोभाहीन है, व्यर्थ है।

नदी तट के क्षितिज—नव जलद—नवीन बादल। मधुरिमा—मधुरता, रम्यता। अविरत—निरंतर। युगल—दो। पाश—फंदा।

अर्थ—सन्ध्या समय सरिता के उस पार सुदूर आकाश के कोने में उठे किसी नवीन बादल में जैसे बिजली की दो रेखायें एक दूसरी से उलझती हुई रम्य प्रतीत होती हैं, वैसे ही श्रद्धा और मनु दोनों की चेतनायें एक दूसरी से टकरा रही थीं, पर इनमें से अभी तक एक में भी इतनी शक्ति न थी कि वह दूसरी को उलझा ले।

वि०—भावधारा सरस और चिरंतन प्रवाहशीला है, अतः 'नदी' शब्द लाए। एक दूसरे को आकर्षित करने की भावना अभी हृदय की बहुत गहराई में है और स्पष्टता से उभर नहीं पाई, यही कारण है कि 'क्षितिज' और 'सायंकाल' शब्दों का प्रयोग किया। 'नव जलद' इसलिए लिखा कि दोनों के अंतःकरण सच्चे अर्थ में प्रथम बार ही प्रेम करने को उत्सुक हुए हैं।

था समर्पण में—समर्पण—अपने को सौंपना। ग्रहण—अधिकार। सुनिहित—छिपा हुआ। प्रगति—आकर्षण की वृद्धि। अटकाव—संकोच। विजन पथ—हृदय का सूनापन। मधुर जीवन खेल—प्रेम की मधुर भावना। नियति—भाग्य, विधाता।

अर्थ—श्रद्धा और मनु ने एक दूसरे के हाथ अपने को सौंप दिया था, पर इसमें एक दूसरे पर अधिकार करने की भावना भी छिपी हुई थी। एक का दूसरे के प्रति आकर्षण वैसे बढ़ रहा था, पर संकोच के बीच में आने से वे अपने हृदय की बात स्पष्टता से न कह पाते थे। अपने सूने हृदय में वे अभी तक एक दूसरे के प्रति प्रेम की मधुर भावना

पोषित कर रहे थे, पर अब विधाता की ऐसी इच्छा थी कि ये जो पास-पास रहते हुए भी अपरिचित के समान जीवन व्यतीत कर रहे हैं प्रेमी प्रेमिकाओं की भाँति मिल कर रहें।

नित्य परिचित हो रहे—अंतर का विशेष गूढ़ रहस्य—प्रेम। सतत—निरंतर। नयन की गति रोक—दृष्टि गढ़ाए।

अर्थ—नित्य कोई न कोई ऐसी घटना हो जाती थी जिससे उन्हें एक दूसरे के आकर्षण का पता चल जाता था, पर दोनों में से खुल कर बात कोई न करता था। इससे उनके हृदय का जो अधिक गम्भीर रहस्य (प्रेम) था वह छिपा ही रह जाता था। समीपता का अनुभव करते हुए भी वे एक दूसरे से उसी प्रकार दूर थे जैसे घने वन में होकर जाने वाला पथिक पथ के अंत का प्रकाश देख कर उसे निकट ही समझता है, पर जैसे जैसे वह उसकी ओर दृष्टि गढ़ाए बढ़ता है वैसे ही वैसे वह दूर होता जाता है।

पृष्ठ ८२

गिर रहा निस्तेज—निस्तेज—आभाहीन। गोलक—गोल पिंड, यहाँ सूर्य। घन पटल—बादलों का समूह। समुदाय—समूह। कर्म का अवसाद—निरंतर काम करने से उत्पन्न थकावट। छल छंद—बहाना, धोखा। सुरस—मधुर मकरंद।

अर्थ—आभाहीन सूर्य विवश होकर समुद्र में डूब रहा था और किरणों का समूह बादलों में विलीन हो रहा था। जैसे सेवक जब काम करते करते थक जाता है और कठोर स्वामी उस समय भी काम लेना चाहता है तो वह कोई न कोई बहाना बनाकर काम से छुट्टी पा लेता है, उसी प्रकार सूर्य निरंतर चलते-चलते थक गया था और अब उसने किसी बहाने दिन से छुट्टी ली। इधर भ्रमरी ने मधुर मकरंद का संचय बंद कर दिया।

वि०—इस वर्णन से यह संकेत मिलता है कि संध्या हो गई।

उठ रही थी कालिमा—धूसर—धूलभरे। अरुण आलोक—सूर्य का प्रकाश। करुणालोक—करुण वातावरण। निर्जन—सूना वन। निलय—निवास स्थान। कोक—चकवा चकवी।

अर्थ—धूल भरे हुए दीन आकाश में कालिमा छाने लगी जिसे (क्षितिज को) सूर्य के अंतिम फीके प्रकाश ने आलिंगन किया। कालिमा और प्रकाश के विवशता के इस मिलन ने एक करुण वातावरण की सृष्टि की। उसी समय वन में शोक से भरे हुए चकवा और चकवी अपने निवास स्थान से दूर होकर एक दूसरे से बिछुड़ गए।

वि०—यहाँ सूर्य और कालिमा तथा कोक और कोकी का दुहरा वियोग-मिलन दिखाकर कवि ने संध्या के वातावरण में उदासी को अत्यधिक घनीभूत कर दिया है।

प्रसिद्ध है कि चकवा-चकवी के किसी जोड़े ने किसी मुनि की साधना में अपनी क्रीड़ा और कोलाहल से विघ्न उपस्थित किया और उस मुनि ने उन्हें रात में चिर-वियोग का शाप दिया। उसी समय से कोक-कोकी रात को नहीं मिल पाते।

मनु अभी तक—मनन—चिंतन। लगाए ध्यान—एकाग्र चित्त से। उपकरण—सामग्री। अधिकार—अपनी सम्पत्ति। शस्य—धान। धान्य—अन्न। संचार—वृद्धि, ढेर।

अर्थ—मनु अभी तक एकाग्र चित्त से चिंतन में लीन थे। कल रात के अंतिम प्रहर में कामदेव ने जो बातें कही थीं, वे उनके कानों में गूंज रही थीं, उन्हें वे अभी भूले न थे। इधर उनके घर में कुछ ऐसी सामग्री एकत्र हो रही थी जिसे वह अपनी सम्पत्ति कह सकें। वे पशु पालने लगे और उनके यहाँ धान तथा अन्न का ढेर होने लगा।

पृष्ट ८२

नई इच्छा खींच—खींच लाती—उत्साहित करती। सुरुचि

समेत—सुरुचिपूर्ण। चमत्कृत—विस्मय में भर। नियति—भाग्य। खेल बंधन-मुक्त—खुला खेल।

अर्थ—श्रद्धा की किसी भी नवीन इच्छा की पूर्त्ति मनु बड़े उत्साह से करते। इस प्रकार इस अतिथि के संकेत ही अत्यन्त सुरुचिपूर्ण (refined) आदेश बन कर उन पर सहज भाव से शासन करने लगे।

यज्ञशाला में बैठे हुए मनु ने विस्मय और कौतूहल से भर कर एक दिन भाग्य का एक खुला खेल देखा।

एक माया आ रहा था—माया—विलक्षण दृश्य। मोह—प्यार से भरा पशु। करुणा—ममतामयी श्रद्धा। सजीव—प्राणवान। सनाथ—धन्य। चपल—फुर्ती से। सतत—बराबर। चमर—पूंछ। उद्ग्रीव—गर्दन उठाना।

अर्थ—मनु ने एक विलक्षण दृश्य देखा। श्रद्धा के साथ एक पशु लगा चला आ रहा था। उन दोनों को देख कर ऐसा प्रतीत होता था जैसे करुणा (श्रद्धा) ने मोह (पशु) में आज प्राण डाल कर उसे धन्य कर दिया है। अर्थात् यदि श्रद्धा साकार करुणा थी, तो पशु साकार मोह और यह पशु श्रद्धा की ममता प्राप्त कर इस समय अपने को सौभाग्यशाली समझ रहा था।

इधर श्रद्धा अपने कोमल कर से बड़ी फुर्ती के साथ बराबर पशु के अंगों को सहला रही थी और उधर वह पशु प्यार में भर कर पूंछ हिलाता और गर्दन उठा कर उसकी ओर ताकता रह जाता था।

कभी पुलकित—पुलकित—रोमांचित। रोम—रोंगटे। राजी—समूह। भाँवर—चक्कर। सन्निधि—निकट। वदन—मुख। दृष्टिपथ—चितवन।

अर्थ—श्रद्धा के स्पर्श से जब पशु के रोंगटे खड़े होजाते तो बीच-बीच में वह अपने शरीर को उछाल देता था। फिर निकट आकर

चक्कर काटता हुआ उसके बाँधने का प्रयत्न करता। कभी-कभी अपनी भोली भाली आँखों से श्रद्धा के मुख को ताकते हुये हृदय का समस्त स्नेह एक चितवन में भर कर उस पर ढलका देता था।

पृष्ठ ८४

और वह पुचकारने—स्नेहशबलित—प्रेमपूर्वक। चाव—उत्साह। मंजु—सुन्दर। सद्भाव—कोमलता। शोभन—सुन्दर। विलास—खेल, क्रीड़ा।

अर्थ—और इधर स्नेह तथा उत्साहपूर्वक श्रद्धा का उसे पुचकारना मानो उसके हृदय की कोमलता और सुन्दर ममता का परिचायक था।

इस प्रकार थोड़ी देर में वे दोनों मनु के निकट आगए और सरल, सुन्दर, मधुर, मुग्धकारी खेल करने लगे।

वह विराग विभूति—विराग—वैराग्य। विभूति—भस्म और वैभव। व्यस्त—तितर बितर होकर। ज्वलन कण—अंगारे, आंतरिक जलन। अस्त—छिपे, ढके। डाह—ईर्ष्या।

अर्थ—जैसे पवन के चलने से राख बिखर जाती है और उसके नीचे ढके अंगारे चमकने लगते हैं, वैसे ही पशु को प्यार करते देख मनु के हृदय में ईर्ष्या जगी और वैराग्य-भावना तितर-बितर होकर बिखर गई। जो जलन कलेजे में छिपी पड़ी थी, उभर आई।

वि०—मनु सोचने लगे : यह क्या? जैसे कड़वी चीज के घूँट को न पचा सकने के कारण हिचकी आती है वैसी ही दशा मेरी क्यों हो रही है? मेरे मन में किसने यह दुखदायिनी ईर्ष्या जगाई?

आह् यह पशु—प्राप्य—अधिकार।

अर्थ—भाग्य की बात है कि पशु होकर भी इसे श्रद्धा का कितना सुन्दर, कैसा सरल स्नेह मिला है! ये पशु इस घर में मेरे ही दिये हुये अन्न से तो पल रहे हैं। आज ही मैं अन्न न दूं तो ये जीवित तक न रहें। और मैं? मुझे कौन पूछता है? मेरी कमाई में जो जिसका भाग

है वह ले लेता है और यह समझ कर कि यह तो केवल उपेक्षा का अधिकारी है, जैसे किसी के सामने कोई हीन-भाव से रोटी का टुकड़ा फेंक देता है, उसी प्रकार ये रात दिन मुझसे विरक्ति प्रकट कर रहे हैं।

अरी नीच कृतघ्नते—कृतघ्नता—किसी के उपकार को स्वीकार न करने वाली वृत्ति। पिच्छल—रपटीली। संलग्न—लगी हुई। राजस्व—राजकर। अपहृत—छीन। दस्यु—डाकू। निर्बाध—लगातार।

अर्थ—कृतघ्नता एक नीच मनोवृत्ति है। रपटीली शिला पर मलिन काई जब जम जाती है तब उस पर जो भी चरण रखता है वही फिसल कर अपना अंग-भंग कर लेता है, इसी प्रकार हृदय तो स्वभाव से चंचल है ही, उसमें कृतघ्नता की मलिन वृत्ति जिस समय उग आती है, उस समय वह अनेक हृदयों को आघात पहुँचाती है।

वि०—मैं इस घर का राजा हूँ; अतः इसमें रहने वाले प्राणियों पशु, पक्षी और श्रद्धा का धर्म है कि अपने अपने हृदय का कर (प्रेम) मुझे दें। उसे न देकर इन्होंने बहुत बड़ा अक्षम्य अपराध किया है। दूसरी ओर ये डाकू यह भी चाहते हैं कि मैं इन्हें सदैव लगातार सुख देता रहूँ।

पृष्ठ ८५

विश्व में जो—सरल—स्वाभाविक रूप से। विभूति—ऐश्वर्य की वस्तु। प्रतिदान—काम में आना। ज्वलित—धधकती हुई। वाड़व अग्नि—समुद्र के अंतर में रहने वाली आग।

अर्थ—संसार में ऐश्वर्य की जो वस्तुएँ स्वाभाविक रूप से ही सुन्दर या फिर महान् हैं, उन सब का स्वामी मैं ही तो हूँ; अतः मैं चाहता हूँ कि ये सब मेरे ही उपयोग के काम आवें। इसके अतिरिक्त मैं कोई दूसरी बात नहीं सुनना चाहता। मैं समुद्र के अन्तर में रहने वाली धधकती हुई चिर प्यासी ज्वाला हूँ; अतः और सभी का यह कर्तव्य है

कि समुद्र की लहरों के समान मेरे हृदय की आग को शीतल और शांत करें अर्थात् मेरी लालसाओं को तृप्त करें।

× × × ×

आगया फिर पास—क्रीड़ाशील—खेलती खेलती। अतिथि—मनु के घर में अतिथि बन कर रहने वाली श्रद्धा। उदार—उदार स्वभाव की। शैशव—बाल्यकाल।

अर्थ—उदार स्वभाव वाली श्रद्धा पशु के साथ खेलती-खेलती मनु के और निकट आगई। जैसे कोई चंचल बालक जब भूला-भूला सा फिरता है तब बड़ा प्यारा लगता है, वैसी ही रम्य चपलता और भूल की गहरी भावना उसकी मुखमुद्रा में अङ्कित थी।

उसने आकर मनु से पूछा: अरे, क्या तुम अभी तक ध्यान में मग्न यहीं बैठे हो! तुम्हारी आकृति से तो ऐसा आभासित होता है कि तुम्हारी आँखें कहीं काम कर रही हैं और तुम्हारे कान कहीं!

मन कहीं यह क्या—कैसा रंग—कैसा परिवर्तन। दृप्त—उठा हुआ, अहंकार भरा। उमंग—आवेश। कान्त—सुन्दर। रूप सुषमा—रूप का लावण्य।

अर्थ—और तुम्हारा मन कहीं और ही घूम रहा है! क्या हो गया है तुम्हें? आज यह परिवर्तन क्यों? इस पर, जैसे बीन की मधुर ध्वनि सुनते ही सर्प का उठा हुआ फण झुक जाता और फुसकारना बन्द हो जाता है, वैसे ही श्रद्धा की मीठी वाणी के प्रभाव से मनु की अहंकार भरी ईर्ष्या कुछ कम हुई और आवेश तो एकदम समाप्त हो गया। तब श्रद्धा ने अपने कोमल सुन्दर कर से मनु के शरीर को सहलाना प्रारम्भ किया और मनु उसके रूप-लावण्य को निहार कर कुछ-कुछ शान्त हुए।

पृष्ठ ८६

कहा अतिथि—अज्ञात—अपरिचित ने। सहचर—साथी, मनु। सुलभ—सुन्दर। चिरंतन—बराबर।

अर्थ—मनु ने कहा : हे अतिथि, अभी तक तुम एक अपरिचित के समान मुझसे दूर-दूर भागते फिरे हो और मैं तुम्हारा साथी एक सुन्दर भविष्य की कल्पना कर रहा हूँ। यद्यपि तुमसे गंभीर स्नेह मुझे बराबर मिलता रहा है, पर न जाने क्यों आज मैं तुम्हारे प्रेम की प्राप्ति के लिए अधिक व्याकुल हो उठा हूँ?

कौन हो तुम—ललचाते—मोहित करते। ज्योत्स्ना—चाँदनी। निर्झर—झरना। साख—विश्वास।

अर्थ—मैं तुम्हें पूर्ण रूप से अभी नहीं जान पाया। यह क्या बात है कि पहले तुम्हीं मुझे आकर्षित करती हो और जब मैं मोहित होकर तुम्हारी ओर बढ़ता हूँ तो पीछे हट जाती हो? चाँदनी के झरने सा तुम्हारा रूप है जिसे देखते-देखते मन भरता नहीं। अतः अनेक बार देख कर भी मैं यह विश्वास खो बैठा हूँ कि तुम्हें ठीक से पहचान पाया हूँ।

वि०—इस दृश्य में अनुपम सजीवता भरी हुई है और पहली दो पंक्तियों में तो चलचित्रों का सा आकर्षण है।

कौन करुण रहस्य—करुण—कोमल। छविमान—सुन्दर। वीरुध—पौधे। नृत्य का नव छन्द—आनन्द के नवीन स्वर।

अर्थ—तुम्हारे व्यक्तित्व में ऐसा कौन सा सुन्दर कोमल जादू है कि मैं और पशु पक्षी तो दूर, ये लता-पौधे भी तुम्हें अपनी छाया बड़ी प्रसन्नता से प्रदान करते हैं।

आज मैं इस रहस्य से अवगत हुआ हूँ कि कोई पशु हो अथवा पाषाण हो क्यों न हो सब आनन्द के नवीन स्वरों में स्वर मिला रहे हैं और इस आनन्द की उपलब्धि के लिये एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हुए एक दूसरे का आलिंगन करना चाहते हैं।

वि०—प्रसाद जी ने अपनी यह धारणा 'एक घूँट' में व्यक्त की है कि आत्मा आनन्द की उपलब्धि के लिये सौंदर्य की ओर आकृष्ट होती

है और प्रेम करती है; अतः प्रणय-व्यापार अत्यन्त प्राकृतिक होने से अत्यन्त अनिवार्य है।

'सब में नृत्य का नव छन्द' स्कंदगुप्त में देवसेना की इस विचार-धारा की छाया में और भी स्पष्टता से समझा जा सकता है :—

"प्रत्येक परमाणु के मिलने में एक सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने में एक लय है। मनुष्य ने अपना स्वर विकृत कर रखा है, इसीसे तो उसका स्वर विश्व-वीणा में शीघ्र नहीं मिलता। पांडित्य के मारे जब देखो,जहाँ देखो, बेताल बेसुरा बोलेगा। पक्षियों को देखो, उनकी 'चह-चह' 'कलकल' 'छलछल' में, काकली में, रागिनी है।"

राशि राशि बिखर—राशि राशि—ढेर का ढेर। शांत—मौन भाव से, चुपचाप। संचित—एकत्र किया हुआ। ललित—सुन्दर। लास—नृत्य। दिनांत निवास—संध्या समय।

अर्थ—प्रकृति में न जाने कब का एकत्र किया हुआ ढेर का ढेर प्यार शांत भाव से बिखर रहा है जिसे दीन संसार के पशु-पक्षी, लता-पौधे उधार माँग-माँग कर ढोने में व्यस्त हैं।

संध्या हो गई। लाल बादलों की शीतल छाया में सुन्दर लता झूम रही है और मैं आकर्षण के इस दृश्य को चकित नेत्रों से देख रहा हूँ।

और उसमें हो चला—सहज—चुपचाप। सविलास—इठलाती। मदिरा—मदमाती, मस्त। माधव—वसंत। यामिनी—रात। धीर—मन्द गति से। पदविन्यास—चरण रखना। ध्वस्त—टूटा हुआ।

अर्थ—इसी संध्या में वसंत की मदमाती रजनी चुपचुप इठलाती मन्द गति से चरण रखती हुई उतर आई है।

और इधर मेरे टूटे हृदय मन्दिर का दीन और सूना-सूना सा कोना है जो तिरस्कृत पड़ा है और जिसे बसाने की किसी को चिन्ता नहीं।

पृष्ठ ८७

इसी में विश्राम—माया—मोह । आवास—डेरा । नींद—मस्ती । हिमहास—बर्फ़ जैसी उजली हँसी । विश्राम—शांति । छविधाम—सुन्दरी ।

अर्थ—आश्चर्य है कि इसी भग्न-हृदय के मन्दिर में सांसारिक मोह ने अचल डेरा डाल रखा है। निश्चित रूप से जानता हूँ कि मेरा जीवन अभावपूर्ण है, फिर भी एक मस्ती भरे सुख की कल्पना में मैं लीन हूँ, और आशा की हिम जैसी उज्ज्वल हास्य-किरण मेरे अंतःकरण में झलक-झलक उठती है—अर्थात् आज मैं आशावादी हूँ।

और हे छविमयी ! तुम कौन हो, यह तुम्हीं बताओ ? तुम्हें देख मधुर दाम्पत्य सुख की भावना हृदय में जगती है। तुम्हीं मेरा स्वास्थ्य हो, तुम्हीं मेरी शक्ति हो अर्थात् मेरा यह स्वस्थ शक्तिशाली शरीर तुम्हारे ही उपयोग के लिये है। ऐसा लगता है जैसे आन्तरिक शान्ति केवल तुम्हारे ही संसर्ग से प्राप्त होगी। बहुत दिनों से एक सुन्दर प्रेमिका की काल्पनिक मूर्ति मैंने अपने मन में बसा रखी थी, तुम्हें देख कर यह भ्रम हो रहा है कि आज वह साकार हो गई है।

कामना की किरन—कामना—इच्छाओं । ओज—तेज । कुंदमदिर—खिला हुआ कुंद पुष्प । सुषमा—लावण्य । रुद्ध—बंद । कपाट—किवाड़ ।

अर्थ—तुम्हारी इस सौंदर्य-प्रतिमा से इच्छाओं की तेजोमयी किरणें फूट रही हैं अर्थात् जो तुम्हारे दर्शन करता है वह कर्म की एक उज्ज्वल नवीन स्फूर्ति का अनुभव अपने अंतःकरण में करता है। मेरा हृदय जिसे खोजने के लिए इतने दिनों से भटक रहा था वही तो तुम हो। सच बताओ, क्या हो तुम ?

की बात किसी से कह पाता हूँ और न मुक्त हृदय से खिलखिला कर हँस पाता हूँ ?

कहा हँस कर—उद्विग्न—विह्वल। जलद लघु खंड—मेघखंड, बादल का टुकड़ा। वाहन—सवारी।

अर्थ—श्रद्धा हँसकर बोली : मैं तुम्हारी अतिथि हूँ। इससे अधिक परिचय की भला क्या आवश्यकता है? तुमने जो कहा वह ठीक है, परन्तु यह पहला ही अवसर है जब तुमने इतनी विह्वलता मेरे प्रति प्रदर्शित की है। यदि ऐसा ही है तो बातों में समय नष्ट करना व्यर्थ है, आओ। देखो, मेघखंड की सवारी पर वह जो मुस्कराता सरल चंद्र बढ़ा चला आ रहा है, वह हमें ही तो बुलाने के लिए।

कालिमा धुलने लगी—कालिमा—अंधकार। घुलने लगा—छा गया। आलोक—प्रकाश। निभृत—शून्य। अनंत—सीमाहीन आकाश। लोक—नक्षत्र समूह। निशामुख—चंद्रमा जो रजनी का मुख है। सुधामय—सरस। दुःख के अनुमान—काल्पनिक दुःख।

अर्थ—अंधकार मिट गया और प्रकाश छा गया। इस सूने आकाश में अब तो नक्षत्रों का एक संसार बस गया। इस समय हमारे लिये भी उचित है कि इस चन्द्रमा की मनोहर सरस मुसिकान को देख कर अपने समस्त काल्पनिक दुःखों को भुला दें।

पृष्ठ ८८

देख लो ऊँचे शिखर—शिखर—चोटी। व्यस्त—अधीरता से। अस्त—छिपना। कौमुदी—चाँदनी। साधना—इच्छा।

अर्थ—देखो, पर्वत की यह ऊँची चोटी आकाश का किस अधीरता से चुंबन कर रही है। अस्त होने वाली अंतिम किरण विदा के समय पृथ्वी पर किस प्रकार लोट रही है!

तब चलो, इस चाँदनी में आज हम भी इच्छाओं के राज्य में प्रकृति

का सपनों पर शासन देख आवें अर्थात् आज इस रम्य प्रकृति की गोद में अपनी इच्छाओं से उत्पन्न अपने मन के सपने पूरे करें।

सृष्टि हँसने लगी—राग रंजित—प्रेम रस में सराबोर। स्वप्न—साध, कल्पना। संबल—पाथेय, मार्ग व्यय, सामग्री।

अर्थ—चारों ओर के उस प्रसन्न वातावरण के कारण सृष्टि उन्हें मुस्कराती सी दिखाई दी। उन दोनों की आँखों में अनुराग झलकने लगा। चाँदनी प्रेम के रस से सराबोर थी और पुष्पों से पराग उड़ रहा था।

श्रद्धा ने मनु का हाथ पकड़ लिया और हँसने लगी। इस प्रकार वे दोनों स्नेह की सामग्री लेकर अपनी साधों को पूरा करने चले।

देवदारु निकुंज गह्वर—गह्वर—गुफा। स्नान—डूबे, नहाये हुए। उत्सव—मंगल। मदिर—मस्त। माधवी—एक लता। घन—झोंके। मधु अंध—मकरंद से लदे।

अर्थ—देवदार के वृक्ष, लताभवन और गुफायें सब मधुर चाँदनी में डूबे थे। ऐसा लगता था जैसे आज सभी ने मंगल मनाने के लिए रात भर जगने का निश्चय किया है। माधवी लता की मस्त, भीनी गंध फूट उठी और मकरंद से लदे पवन के झोंकों पर झोंके आने लगे।

शिथिल अलसाई पड़ी—कांत—रम्य, सुन्दर। शिशिर कण—ओस की बूँदें। विश्रांत—थक कर। कुञ्ज—लता समूह, झाड़ियाँ। भ्रांत—बहकना।

अर्थ—ओस की बूंदों पर पड़ी छाया ऐसी प्रतीत होती थी मानो यह स्वच्छ चांदनी रात का छाया-शरीर है जो थक कर, शिथिल होकर, अलसाया हुआ उन जल-कणों की शय्या पर पड़ा है। उन लता-समूहों को देख कर जिनकी छाया एक आकर्षक कौतूहल उत्पन्न करती थी, मन की भावना बहकने लगती थी।

वि०—यह ध्यान देने की बात है कि जिस समय कवि इन दोनों को आत्म-समर्पण करने को उद्यत कर रहा है, उस समय का वातावरण भी उसने भावना के एकदम अनुकूल कर दिया है।

पृष्ठ ८९

कहा मनु ने—स्पृहणीय—वांछनीय। मदिर—मस्ती से भरे। घन—बादल। वासना—भावना।

अर्थ—मनु बोले: हे अतिथि, इससे पहले भी मैंने तुम्हें अनेक बार देखा है, पर तुम इतने सुन्दर (सौंदर्य के आधिक्य से दबे) तो कभी नहीं दिखाई दिए।

मेरा अतीत इतना मधुर था कि उसकी वांछा आज भी हृदय में बनी हुई है। कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे वे बातें इस जन्म की नहीं हैं, मेरे पूर्व जन्म की हैं। उस समय जब मस्ती से उमड़ कर बादल गरजते तो ऐसा प्रतीत होता मानों मेरे हृदय की भावनाओं को ही वे ध्वनित कर रहे हैं।

भूल कर जिस दृश्य—अचेत—अभावुक। सव्रीड़—लज्जा सहित, क्षीण रूप में। सस्मित—हँसता सा, सुखदायक। चेतना—अनुभव करने की शक्ति। परिधि—घेरा।

अर्थ—उस दृश्य को भुलाकर आज मैं अपनी सारी चेतना (भावुकता) खो चुका हूँ; पर तुम्हारे सपर्क में आकर अत्यन्त क्षीण रूप में उसी प्रकार की कोई भावना सुख की ओर फिर इशारा कर रही है।

मेरी चेतना के घेरे में आज एक दृढ़ विचार बार बार चक्र के समान गोल चक्कर काट रहा है और वह यह कि—"मैं केवल तुम्हारा हूँ।"

मधु बरसती विधु किरन—विधु—चंद्रमा। पुलक—रोमांच। मधु भार—मकरंद से लदा होने के कारण। सुरभि—गंध। घ्राण—नासिका।

अर्थ—चंद्रमा की सुकुमार किरणें सिहरती और रस बरसाती उतर रही हैं। स्वयं पवन रोमांचित सा प्रतीत होता है और रस के भार से दब कर उसकी गति मंद हो गई है। जब तुम मेरे इतने समीप हो, फिर इन प्राणों में इतनी विकलता क्यों है? मेरी नासिका न जाने किस गंध को पा तृप्त हो गई है, छक गई है!

वि०—भाव यह कि इस वातावरण का कुछ ऐसा मोहक प्रभाव है कि थोड़ी देर में मुझे अपनी सुध-बुध न रहेगी।

आज क्यों संदेह—धमनी—वे नाड़ियाँ जिनमें शुद्ध रक्त बहता है। वेदना—पीड़ा।

अर्थ—न जाने क्यों मुझे ऐसा संदेह हो रहा है कि तुम मुझ से रूठ गई हो। भीतर से इच्छा होती है कि मै तुम्हें मनाऊँ, पर साहस नहीं होता। आज मेरी नाड़ियों का रक्त कुछ पीड़ा देता हुआ बह रहा है और हृदय की धड़कनों में विशेष कँपकपी है जैसे उन पर हल्का सा किसी बात का बोझ रखा हो।

पृष्ठ ९०

चेतना रंगीन ज्वाला—ज्वाला—वासना की आग। सानन्द—आनन्द-पूर्वक। दिव्य—अलौकिक। छंद—मस्त राग। अग्नि कीट—समन्दर नाम का कीड़ा जिसका निवास अग्नि में माना जाता है। दाह—जलन।

अर्थ—मेरी चेतना वासना की रंगीन आग के घेरे में घिरी आनंद का एक मस्त राग अलाप रही है और एक अलौकिक सुख का अनुभव कर रही है अर्थात् जीवन में सामान्य जलन यद्यपि पीड़ादायक होती है, पर वासना के उमड़ने पर जो आकुलता की जलन होती है उसकी अनुभूति में एक प्रकार का रस आता है।

इस आग में मेरी चेतना यद्यपि उसी उत्साह से गिर पड़ी है जिस उत्साह से समंदर नाम का कीड़ा अग्नि में रह सकता है, और जैसे वह

उस आग में जीवित रहता है उसी प्रकार यह मिट नहीं गई है, और जिस प्रकार उसके शरीर पर न तो छाला पड़ता है और न उसे जलन का अनुभव होता है उसी प्रकार यह जलन न तो हृदय में कोई छाया डालती है और न उसे झुलसाती ही है।

वि०—मनोविकारों की अनुभूति के स्पष्ट चित्रण 'प्रसाद' की प्रतिभा की एक विशिष्टता हैं। हृदय में वासना के उमड़ने पर प्राणी कैसा अनुभव करता है, इसकी ठीक-ठीक परिचिति 'धमनियों में वेदना सा'......से लेकर 'छाले हैं न उसमें दाह' तक छह पंक्तियों में दी है। शरीर का रक्त खौल उठता है, हृदय जोर से धड़कने लगता है, मीठी-मीठी जलन सी होती है आदि।

अग्नि में भी एक कीड़ा होता है, यह कवि प्रथा ही है, उसे किसी ने देखा नहीं है। इतनी प्रशंसा प्रसाद की अवश्य करनी चाहिए कि वे वासना में चेतना के जलने के लिए एक अत्यन्त उपयुक्त उपमान ढूंढ़ लाये जो दूसरे को कठिनाई से सूझता।

कौन हो तुम—विश्वमाया—महामाया। कुहक—जादू, इंद्रजाल। व्यजन—पंखा, पवन के झकोरे, शीतल व्यवहार। ग्लानि—थकावट, चिंता।

अर्थ—हे नारी, तुम क्या हो? लगता है कि जो माया संसार भर को प्रभावित कर रही है, उसका पूर्ण जादू तुममें साकार हो गया है अर्थात् तुम संसार का सब से प्रबल आकर्षण हो। तुम्हारा रहस्य उतना ही सूक्ष्म और मनोहर है जितना प्राणों की सृष्टि का। अर्थात् जो यह जान जायगा कि प्राणों की रचना क्यों हुई, वह यह भी जान जायगा कि नारी की रचना क्यों हुई।

वि०—जैसे थका हुआ पथिक वृक्ष की रम्य छाया में सन्तोष की साँस लेता है और पवन के झकोरे पा अपनी थकावट दूर करता है, उसी प्रकार नारी के प्रेम की मनोहर छाया में जीवन-पथ पर थकान का

अनुभव करने वाले मनुष्य का हृदय निश्‍चितता की साँस लेता है और उसके शीतल व्यवहार से अपनी सारी चिंताओं को धो डालता है।

स्कन्दगुप्त नाटक में धातुसेन कहता है :—

"पहेली ! यह भी रहस्य ही है। पुरुष है कुतूहल और प्रश्न और स्त्री है विश्लेषण, उत्तर और सब बातों का समाधान। पुरुष के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिए वह प्रस्तुत है। उसके कुतूहल--उसके अभावों को परिपूर्ण करने का ऊष्ण प्रयत्न और शीतल उपचार।"

❀ ❀ ❀ ❀

श्याम नभ में—श्याम—नीले। मधु किरण—सरस किरण। मृदु—मधुर। हिलकोर—तरंग। दक्षिण का समीर—मलय पवन। विलास--मादक। अव्यक्त—अर्द्ध विकसित। अनुरक्त—प्रेम पूर्वक।

अर्थ—श्रद्धा मधुर-मधुर मुसिका दी। उसके अधर पर मुसिकान की वह रेख ऐसी लगती थी जैसे नीलाकाश में कोई सरस किरण झलक रही हो या समुद्र में कोई तरंग उठी हो, या फिर शून्य में मलयपवन की कोई मादक हिलोर हो। जैसे कुंज में कोई अर्द्ध विकसित कली खुलते समय चट् ध्वनि द्वारा एक मंद गूंज छोड़ती है वैसे ही श्रद्धा ने कुछ कहना प्रारंभ किया जिसे मनु बड़े अनुराग से सुनने लगे।

यह अतृप्ति अधीर—अतृप्ति—कामनाओं की अपूर्ति। अधीर—विह्वल। क्षोभ—विचलता। उन्माद--असंयम। तुमुल—कोलाहल करती। उच्छ्वास--तीव्र साँस। संवाद--बात। राका मूर्ति—पूर्णिमा का चंद्रमा। स्तब्ध--मौन।

अर्थ—हे सखे ! कोलाहल मचाती हुई लहरों के समान तीव्र साँसें भरते हुए तुमने जो बातें अपने मुख से कही हैं उनसे तुम्हारे मन की विह्वलता का पता चलता है। उनसे यह भी स्पष्ट है कि तुम्हारी कामनायें अभी पूर्ण नहीं हुईं जिनसे विचलित होकर तुम असंयत बातें करने पर उतारू हो गए हो। यह सब समझती हूँ। पर मैं कहती हूँ

यह सब कुछ प्रकट करने की आवश्यकता ही क्या है ?'न कुछ कहो और न कुछ पूछो। देखो तो सही, चन्द्रमा निर्मल मूर्तिमती पूर्णिमा के रूप में कैसा मौन धारण किए है ! कितना अचंचल है !

विभव मतवाली प्रकृति—विभव मतवाली—अत्यधिक ऐश्वर्य शालिनी। आवरण—साड़ी। प्रचुर—अधिक परिमाण। मंगल खील—मंगल सूचक भुने धान। अर्चना—पूजा। अश्रांत—निरंतर। तामरस—लाल कमल। चरण के प्रांत—चरणों के निकट।

अर्थ—इसे आकाश न समझो, यह अत्यधिक ऐश्वर्य शालिनी प्रकृति की नीली साड़ी है जो इस रम्य वातावरण के प्रभाव से शरीर से खिसक पड़ी है। ये तारे नहीं इसमें मंगल सूचक बहुत सी खीलें भरी हुई हैं। जहाँ तुम चंद्रमा को उगते देख रहे हो उसके नीचे आकाश पीला पीला सा लगता है और वहीं आसपास ढेर के ढेर तारे बिखरे पड़े हैं। यह रजनी का लाल कमल के समान सुंदर चरण है जिसके निकट पूजा के पुष्प निरंतर चढ़ाये जा रहे हैं।

वि०—पूर्णिमा की रात को चंद्रमा के उदित होते समय आकाश में पीताभा छा जाती है। कवियों के ही शब्दों में—

मैंने देखा मैं जिधर चला, मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद।
पीले गुलाब सा लगता था, हल्के रँग का हल्दिया चाँद।

नरेन्द्र शर्मा

तू कहती है—"चन्द्रोदय ही काली में उजियाली।"
सिर आँखों पर क्यों न कुमुदिनी, लेगी वह पद-लाली ?

—साकेत : मैथिलीशरण

मनु निरखने लगे—अगाढ़—गाढ़ी। छाया—कांति, चाँदनी। अपरूप—अपूर्व। मादिर कण—रस की बूँदें। सतत निरंतर। श्रीमंत संगीत—रम्य और मधुर वातावरण।

अर्थ—मनु जैसे-जैसे रात के सौंदर्य को अवलोकने लगे, वैसे ही वैसे वह अपूर्व चाँदनी गाढ़ी होकर अनंत अवकाश में फैलने लगी। किरणों का उतरना मानो ऊपर से निरंतर अनंत उज्ज्वल रस-बूंदों का बरसना था। प्रेमी प्रेमिकाओं के मिलने के लिए यह अत्यंत रम्य और मधुर वातावरण था।

वि०—रात उजली है; अतः उसकी छाया भी उजली है। इसी से छाया का अर्थ चाँदनी ग्रहण किया।

'अपरूप' शब्द का अर्थ कुरूप के साथ ही सुंदर रूप का भी होता है। यह शब्द इस अर्थ में हिन्दी में तो कम, पर बँगला में अधिक प्रयुक्त होता है

कंठे तार की माला दुलाये, कोरिले वरण।
रूप हीन मरणेर मृत्यु हीन अपरूप साजे।

शाजहान : रवीन्द्रनाथ

पृष्ठ ९२

छूटती चिनगारियाँ—चिनगारियाँ—उष्ण भाव। उत्तेजना—वासना। उद्भ्रान्त—असंयत। वक्ष—छाती। वातचक्र—बवंडर। लेश—शेष।

अर्थ—मनु के हृदय में असंयत वासना के उष्ण भाव फूटने लगे। एक प्रकार की मधुर जलन तीव्र हो उठी। छाती के भीतर आकुलता और अशांति भर गई। जैसे पृथ्वी पर धूलि का बवंडर चक्कर काटता है, उसी प्रकार मन में आवेश घुमड़ने लगा। इस समय मनु अपने हृदय के धैर्य को एक साथ खो बैठे।

कर पकड़ उन्मत्त से—उन्मत्त से—आवेश में भर कर। दूसरा—भिन्न ही प्रकार का। मधुरिमामय साज—लावण्य। विस्मृति—भूल। स्मृति—याद। विकल—भटकना। अकूल—बिना किनारे के।

अर्थ—मनु ने आवेश में भर कर श्रद्धा का हाथ पकड़ लिया और बोलेः आज तुम्हारे शरीर में मुझे भिन्न ही प्रकार का लावण्य दिखायी दे

रहा है। वही छवि है, निश्चित रूप से वही। किन्तु मुझसे इतनी भूल आज हुई कैसे ? संभवतः किनारा (प्रेम का आधार) न पाने के कारण ही मेरी स्मृति (याद) की नौका विस्मृति (भूल) के समुद्र में 'आज तक भटकती फिरी।

वि०—इस स्वीकृति से पता चलता है कि प्रलय से पूर्व मनु अपने देव जीवन किसी बालिका को प्रेम की दृष्टि से देखते थे। जलप्लावन में उसे खो दिया। उसकी स्मृति बार-बार सताती, पर यह समझकर कि वह ऐसे लोक को चली गयी जहाँ से लौट न सकेगी, उन्होंने संतोष कर लिया। आज यह देख कर कि इस लड़की के मुख पर वही छवि झलक मारती है जो उनकी प्रेमिका की आकृति में निहित थी मनु का मन बहुत विह्वल हुआ और आकर्षण तीव्रता पकड़ गया। इस बात का संकेत उन्होंने आशा सर्ग में भी किया है:—

मैं भी भूल गया हूँ कुछ, हाँ स्मरण नहीं होता, क्या था।
प्रेम, वेदना, भ्रांति या कि क्या, मन जिसमें सुख सोता था।
मिले कहीं वह पड़ा अचानक उसको भी न लुटा देना;।
देख तुझे भी दूंगा तेरा भाग, न इसे भुला देना !

—आशा

आगे के छंद में बात को और भी स्पष्ट करेंगे।

जन्म संगिनि एक—जन्म संगिन—बचपन की साथिनी। काम बाला—काम की पुत्री। विश्राम—शांति। सतत—सदैव। फूल—मन। अर्घ—आगत के स्वागत के लिये जल छोड़ना। सुष्मामूल— रूपवती।

अर्थ— मेरी एक बचपन की साथिन थी। उसके पिता का नाम था काम। और उसका नाम तो बड़ा ही मधुर था—श्रद्धा। हमारे प्राणों को तो सदैव उसी के सम्पर्क से शांति मिलती थी। वह अत्यंत रूपवती थी। जब कोई आता है, तब जल छोड़कर उसे अर्घ देते हैं; इसी प्रकार जब कभी वह हमारे निकट आती तब मेरा हृदय-सुमन अपने भावों के मकरंद का अर्घ भेंट कर उसका स्वागत करता था।

प्रलय में भी बच—मोद—आनंद। ज्योत्स्ना—चाँदनी। नीहार—कुहरा। प्रणय विधु—अनुराग का चंद्र। तारक—ताराओं।

अर्थ—हमारे हृदय में क्योंकि मिलन के आनन्द की उत्कण्ठा शेष थी; अतः इस सूने जगत की गोद में फिर भेंट करने के लिये हम प्रलय में भी जीवित रहे। जैसे कुहरे को भेदकर चाँदनी छा जाती है, उसी प्रकार प्रलय को पार कर तुम मेरे समीप आई हो। जैसे आकाश में चंद्रमा तारों का हार सजाये खड़ा है, उसी प्रकार मेरे सूने हृदय के नभ में अनुराग का चंद्र तुम्हारे लिए कोमल भावों का हार लिए प्रस्तुत है। उसे स्वीकार करो।

पृष्ठ ९२

कुटिल कुंतल से—कुटिल—बल खाते हुए। काल माया जाल—माया का काल जाल। नीलिमा—कालिमा। तामसा—तम समूह। दुर्भेद्य—रहस्यपूर्ण। चल—क्षणिक, चंचल!

अर्थ—हे नारी, तुम्हारे बल खाते हुए बालों से ही माया ने अपने काल-जाल का निर्माण किया है अर्थात् जिसने तुम्हारे घुँघराले केशों को देख लिया वह मोहित हो जाता है और जाल में फँसे पक्षी के समान तड़फड़ाता है। तुम्हारे नयनों की पुतली की कालिमा से ही तम-समूह की रचना हुई है अर्थात् तम जैसी काली तुम्हारी आँखों की पुतलियाँ हैं और जो उन्हें देख लेता है वह निराशा के अंधकार में भटकता फिरता है। तुम्हारी चितवन से निद्रा का रहस्यपूर्ण अंधकार ढलता है अर्थात् तुम्हारी चितवन रहस्यमयी है। जैसे अंधकार में वैसे ही तुम्हारी चितवन में क्या (भाव) छिपा है, टटोलने से भी पता नहीं चलता? और जैसे निद्रा, उसी प्रकार तुम हमें संज्ञाहीन बना देती हो। तुम्हारे अधरों पर चंचल हास्य-रेखा स्वप्न सी बिखरती है अर्थात् जैसे स्वप्न मधुर, वैसे हास्य मधुर, जैसे स्वप्न क्षणिक, वैसे हास्य क्षणिक। यह हँसी प्रेमी के हृदय में न जाने कितने सपने जगा जाती है!

हुई केन्द्रीभूत सी—केन्द्रीभूत—एकत्र। साधना की स्फूर्ति—उत्साह से भरी साधना। दृढ़—ठोस, साकार। रम्य—रमणीय। दिनकर—सूर्य। विकल व्याकुल। विश्रांत—थके। भ्रांत—मार्ग भूला हुआ।

अर्थ—हे नारी, साधना का उत्साह तुम्हीं में जाकर मिलता है अर्थात् जीवन में उत्साह पूर्वक जो साधनायें की जाती हैं, उनका अंतिम लक्ष्य नारी ही है। संसार की समस्त कोमलता को साकार रूप देने से रमणीय नारी मूर्ति का निर्माण हुआ है।

मैं दिनभर परिश्रम करने वाले व्याकुल और थके सूर्य के समान एक ऐसा पुरुष हूँ जो अब तक अपना निश्चित पथ न जानने के कारण एक बालक के समान भटक रहा है—

नोट—भाव आगे के छंद में पूरा होगा।

चन्द्र की विश्राम राका—राका—पूर्णिमा। कान्त—ज्योतिमयी। पद दलित—चरणों से कुचली। व्रज्या—पगदंडी। आक्रान्त—आक्रमण की गई। शस्य—अन्न का खेत। श्यामल—हरा भरा।

अर्थ—और तुम पूर्णिमा के चंद्र की कांतिमयी ज्योत्स्ना-बाला हो जो थके पथिक को विश्राम देती है। मैं जहाँ जीवन में भटकता फिरा हूँ, वहाँ तुमने जीवन पर जय प्राप्त की है, मैं जहाँ सूर्य सा विकल रहा हूँ, वहाँ तुम मधुरता सी शांत हो।

वह पगदंडी, जिस पर चरणों का आक्रमण होता रहता है, जो सदैव कुचली जाती है थक कर किसी हरे भरे अन्न के खेत में घबरा कर घुस जाती और चैन पाती है।

आह वैसा ही—परिणाम—फल। काम—इच्छा। चेतना—भावों से भरा हृदय। रानी—शासिका। मान—मूल्य।

अर्थ—आह, मेरे हृदय का भी आज वैसा ही परिणाम हुआ है अर्थात् जो मन पीड़ा से निरंतर आहत रहा उसे आज तुम्हारे स्नेह के

शीतल आश्रय में त्राण मिला। आज मैं तुम्हें अपने हृदय को समर्पित कर अपनी सारी इच्छाओं की पूर्ति होने की सम्भावना देख रहा हूँ।

हे संसार की शासिका सुन्दर रमणी, तुम्हें सामने रख कर ही सृष्टि की समस्त वस्तुओं का मूल्य आँका जाता है। आज तुम मेरे भावों से भरे हृदय के दान को स्वीकार करो।

× × × ×

पृष्ठ ९४

धूम लतिका सी—धूम लतिका—लता सा कुहरा। दीन—बेचारी। शिशिर निशीथ—माघ और फाल्गुन के जाड़ों की रात। सव्रीड—लज्जामयी। नर्ममय उपचार—प्रणय की श्रृंगारी चेष्टायें।

अर्थ—जाड़ों की रात में जैसे बेचारी कुहरा रूपी लता ऊपर से झड़ने वाले ओस बिंदुओं के बोझ से दबने के कारण आकाश रूपी वृक्ष पर चढ़ने का प्रयत्न करते हुए भी, उस पर नहीं चढ़ पाती; उसी प्रकार श्रद्धा अपनी ही सुकुमारता और लज्जा से दबकर मनु का खुला आलिंगन न कर पायी। मनु ने जब उसकी ओर भुजा बढ़ाई तो वह सिकुड़ गई। इतना होने पर भी उनकी ओर से प्रणय-चेष्टाओं को देख वह उनके शरीर से लगी ही रह गई।

वि०—'पंत' जी ने गुन्जन की 'मधुबन' कविता में 'नर्म' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में किया है

देख चंचल मृदु-पटु पद-भार, लुटाता स्वर्ण-राशि कनियार,
हृदय फूलों में लिए उदार, नर्म-मर्मज्ञ मुग्ध मन्दार।

और वह नारीत्व—नारीत्व—नारी होने के नाते। मूल—प्रधान। मधु—प्रेम। अनुभाव—वृत्ति। हँसना—विकसित होना। व्रीडा—लज्जा। कूजन—गूंज। रास—नृत्य करना, छाना।

अर्थ—साथ ही नारी हृदय की वह प्रधान वृत्ति जिसे प्रेम कहते हैं उभर कर विकसित हुई और उसने श्रद्धा के मन में एक नवीन उत्कंठा

को जन्म दिया। इस समय उसके हृदय में एक साथ ही मधुर लज्जा, चिंता और आह्लाद के भाव उठे; पर सब मिल कर हृदय में एक विलक्षण आनन्द की गूंज छा गई।

वि०—ऐसी स्थिति में मन में 'लज्जा', 'चिंता' और 'उल्लास' तीनों का संयोग दिखाना काव्य-पटुता और मनोवैज्ञानिक अध्ययन का परिचय देना है। प्रणय की बातें प्रथम बार ही कही सुनी जा रही हैं, अतः लजाना बहुत ही स्वाभाविक है। प्रेम की मीठी बातें सुनने से एक प्रकार की गुदगुदी का अनुभव होता है, अतः उल्लास भी हृदय में उमड़ता ही है। पर ऐसी बातें कहते-करते समय यह भी पता रहता है कि हम बहे किस ओर जा रहे हैं; अतः यह आशंका कि हमारे इस आवेश का कहीं दुष्परिणाम न निकले, यह व्यक्ति कहीं विश्वासघात न करे, उस आह्लाद पर 'चिंता' का हल्का पुट भी दे जाती है!

गिर रही पलकें—गिर रहीं—धीरे-धीरे मुँदती आई। नोक—अग्र भाग। वे रोक—एकदम। स्पर्श करना—छूना। ललित—सुन्दर। कदंब—एक पेड़ और उसके पुष्प का नाम, कदम।

अर्थ—श्रद्धा की पलकें धीरे-धीरे मुँदती आयीं, नासिका का अग्र-भाग झुकने लगा, भौंहें एकदम कान तक खिंच गईं और लज्जा ने उसके सुन्दर कान और कपोलों में लाली भर दी, कदंब पुष्प के समान उसका शरीर रोमांचित हो उठा और वाणी गद्‌गद् हो गई।

वि०—कदंब की उपमा रोमांचित होते समय दी जाती है। मैथिली-शरण जी ने 'द्वापर' में राधा-कृष्ण के सम्बन्ध में लिखा है :—

> ऊपर घटा घिरी थी नीचे पुलक कदंब खिले थे;
> झूम-झूम रस की रिम-झिम में दोनों हिले मिले थे।

किंतु बोली—समर्पण—शरीर और हृदय का सौंपना। बंध—बंधन। दान—प्रेम का दान। उपभोग—भोगना, धारण करना। विकल—आनन्द विह्वल।

अर्थ—श्रद्धा बोली हे देव, मेरा आज का यह आत्म-समर्पण कहीं नारी-हृदय के लिए युग-युग के बंधन का कारण तो न हो जायगा ? मैं बड़ी दुर्बल हूँ। तुम्हारे इस स्नेह-दान को, जिसके धारण करने में मेरे प्राण आनन्द से अधीर हो उठे हैं, सहेजने की शक्ति भी मुझमें आ सकेगी, इतना तो बतला दो ?

वि०—सृष्टि की प्रथम नारी श्रद्धा ने जिस दिन आत्म-समर्पण किया, उसी दिन मानो समस्त नारी जाति ने अपना सब कुछ पुरुष को दे डाला है। श्रद्धा के हृदय के संस्कार आज की सभी नारियों में विद्यमान हैं। विश्वासघात होने और अत्याचार सहने पर भी नारी पुरुष को बराबर प्रेम किए चली जारही है। उसके लिए अपने शरीर, प्राण, धर्म, लोक, परलोक किसी की चिंता नहीं करती ।

लज्जा

कथा—ज्योत्स्ना-धौत रजनी में मनु के मुख से अपने लिए प्रेम की मधुर विह्वल बातें सुनकर श्रद्धा को एक प्रकार का सुख मिला और वह सोचने लगी कि जो व्यक्ति मेरी अनुराग-दृष्टि प्राप्त करने के लिए इतना छटपटा रहा है, उसे आत्म-समर्पण क्यों न कर दूँ? ठीक इसी समय लज्जा ने उसके अन्तर में प्रवेश किया और वह जो कुछ करना चाहती थी न कर सकी। इस पर उसे बड़ी झुँझलाहट उत्पन्न हुई।

श्रद्धा सोचने लगी : क्या हो गया है मुझे जिसके कारण आजकल जहाँ एक ओर शरीर रोमांचित हो उठता है, वहाँ मन को एक ऐसे संकोच-भाव ने आ दबाया है जिससे मैं अपने में ही सिकुड़ती चली जाती हूँ। मेरे अंग मोम से कोमल हो गए हैं, खिलखिलाकर मैं हँस नहीं सकती, चितवन में वक्रता आ गई है, पलकें स्वतः झुक-झुक जाती हैं। अभी-अभी की तो बात है कि मैं मनु के जीवन को सुखी बनाना चाहती थी, पर इच्छा होने पर भी उधर बढ़ने से मुझे न जाने किसने रोक लिया? यह कैसी परवशता है कि स्वतंत्रता से मैं कुछ भी नहीं कर सकती?

लज्जा बोली : इतने चकित होने का कोई कारण नहीं है। यह मैं हूँ जिसके कारण स्त्रियाँ मनमानी नहीं कर सकतीं। इस यौवन की शक्ति को तुम जानती नहीं हो। यह बड़ा चंचल है। प्राणी को कहीं से कहीं बहाकर यह ले जाता है। पर इस पर मेरा अंकुश रहता है। ठोकर खाने वाली रमणी को मैं एक बार समझा अवश्य देती हूँ। यदि वह मेरी बात सुनती है तो मर्यादा के भीतर रहने के कारण परिणाम में सुख पाती है।

श्रद्धा बोली : तुम्हारा कहना सच है। पर मैं क्या करूँ? मैं जानती

हूँ कि शरीर से मैं दुर्बल हूँ, पर यह मन भी जिस पर मेरा पूर्ण अधिकार है क्यों ढीला हो चला है ? क्यों ऐसी भावना हृदय में जगती है कि नारी-जीवनकी सार्थकता पुरुष की समता करने में नहीं है, उस पर विश्वास करते हुए उसका आश्रय पाने में है। मैं ऐसी जाग्रति में विश्वास नहीं रखती जो जीवन-पथ पर पुरुष से होड़ करने को बाध्य करे। यह बात नहीं है कि मेरी चेतना विलुप्त हो गयी हो, पर पुरुष के सम्पर्क में आते ही इच्छा होती है कि 'पूर्ण आत्म-समर्पण करके निश्चिंत हो जाना ही भला है। पुरुष पर अधिकार जमाने की भावना नारी के स्वभाव के बहुत अनुकूल नहीं है।

लज्जा ने उत्तर दिया : यदि ऐसी बात है तब तुम्हें समझाना व्यर्थ है। यदि तुम्हारा ऐसा ही निश्चय है तब तुम अत्यन्त स्पष्टता से यह भी समझ लो कि तुमने अपने जीवन की सभी प्रिय साधों की आज आहुति दे डाली। आज से नारी विश्वास का प्रतीक होगी और अंतर में अनंत हाहा-कार लिए रहने पर उसे मुसिकाते हुए रात दिन पुरुष के लिए बलि देनी होगी।

पृष्ठ ९७

कोमल किसलय—किसलय—कोंपल। अंचल-आड़। गोधूली-दिन और रात्रि की संधि का वह समय जब गायें बन से लौटती हैं और अपने खुरों से धूल उड़ाती चलती हैं, सन्ध्या वेला। धूमिल—धुँधले। पट—वातावरण। स्वर—लौ। दिपती—उजली।

अर्थ—कोमल कोंपलों की आड़ में छिपी नन्ही कली जैसे और भी सुंदर प्रतीत होती है, सन्ध्या के धुँधले वातावरण में दीपक की लौ जैसे और भी उजली दिखाई देती है

नोट:—भाव चौथे छंद पर जाकर पूरा होगा।

मंजुल स्वप्नों—मंजुल—सुंदर। विस्मृति—सुध-बुध भूले रहना।

निखरता—तीव्रता पकड़ता । सुरभित—सुगंधित । छाया—आड़ । बुल्ले—बुलबुला । विभव—रम्यता । बिखरना—बढ़ना ।

अर्थ—मन वैसे ही मस्त है, इस पर सुंदर स्वप्न देखते समय जब मनुष्य अपनी सुध-बुध भूले रहता है, उसकी मस्ती और भी तीव्रता ग्रहण करती है । बुलबुला वैसे ही सुंदर लगता है, पर जब सुगंधित लहरें उठ-उठ कर उस पर छाती हैं तब वह और भी रम्य प्रतीत होता है

वि०—स्वप्न मन की कल्पना का परिणाम होते हैं । जैसी कल्पनाएं हम करते हैं, या जो स्मृतियाँ अंतस्संज्ञा में निहित रहती हैं, वे ही स्वप्न बन कर दिखाई दे जाती हैं । प्रायः अनुभव की वस्तुएं ही स्वप्न में आती हैं, पर यदि हम कोई ऐसी वस्तु भी सपने में देखें जिसे हम संसार में सामान्यतः नहीं देखते, तब विश्लेषण करने पर पता चलता है कि हमारे अनुभव की कई वस्तुएँ घुलमिल गई हैं जैसे सोने का पर्वत यदि दिखाई दे तो सोना और पर्वत दोनों जाने पहचाने हैं । मन की जो भावनाएं जाग्रतावस्था में सुप्त रहती हैं वे ही सपनों में तीव्रता ग्रहण करके भव्य या भयंकर रूप धारण कर लेती है ।

वैसी ही माया—माया—आकर्षण । लिपटी—युक्त । माधव—वसंत । पानी भरे—सुन्दरता लिए ।

अर्थ—उसी प्रकार के अतिरिक्त आकर्षण से युक्त, अधरों पर उँगली रखे तथा आँखों में एक कौतूहल भावना और वसंत की सरसता की सुन्दरता लेकर—

वि०—'आँखों में पानी भरे हुए' में 'पानी' शब्द उस विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जिसमें किसी वस्तु पर 'चाँदी या सोने का पानी चढ़ाना' आता है । 'आँखों में सरसता का पानी था' का भाव हुआ 'आँखों में सरसता झलक रही थी' ।

नीरव निशीथ में—नीरव—स्तब्ध, शांत । निशीथ—रात । जादू आकर्षण ।

अर्थ—स्तब्ध रजनी में कहीं दिखाई देने वाली लता के समान तुम कौन हो जो मेरी ओर बढ़ती चली आरही हो ? तुमने अपनी कोमल भुजायें फैला रखी हैं। उनमें इतना आकर्षण है कि मैं चाहने लगी हूँ कि तुम उनसे मेरा आलिंगन करतीं।

वि०—इन चारों छंदों के पढ़ने से लगता है कि श्रद्धा कहीं एकांत में बैठी है। संभवतः रात्रि का समय है। सामने से एक छाया-मूर्ति जो किसी रमणी की है, अपनी ओर बढ़ती उसे दिखाई देती है। क्योंकि उसका रहस्य खुला नहीं है, इसी से हृदय में वह एक कौतूहल की भावना उत्पन्न करती है। कौन है ? क्यों आई है ? क्या काम है ? ऐसे प्रश्न स्वाभाविक हैं। परन्तु वास्तविक बात यह है कि श्रद्धा के सामने न कहीं कभी कोई आया और न किसी ने इस सर्ग में उससे बातें कीं। यह छायामूर्ति मन की लज्जा-वृत्ति है। जब मन में प्रथम बार लज्जा जगती है, तब अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्पों का जन्म होता है। अपनी बुद्धि के अनुसार मन में उठे कुतूहल का समाधान श्रद्धा स्वयं ही कर लेती है। परन्तु वृत्ति के शुष्क विश्लेषण में वर्णन और भी दुरूह हो जाता, इसी से कवि ने दो रमणी पात्रों में कथोपकथन की शैली का प्रयोग किया है।

अधरों पर उँगली रखना स्त्रियों की एक मुद्रा है जो बड़ी प्यारी लगती है; परन्तु यहाँ बाह्य आकृति-चित्रण से कहीं अधिक गहरा कवि का आशय है। वासना की प्रेरणा से जब नारी पुरुष को आत्म-समर्पण करना चाहती है तब उसके अंतर की स्वाभाविक लज्जा उसे एक बार अवश्य टोकती है और बिना बोले ओठों पर उँगली रखकर वर्जन भी किया जाता है। उसी अर्थ में 'अधरों पर उँगली धरे हुए' आया है। श्रद्धा जैसे ही अपने शरीर को सौंपना चाहती है, वैसे ही लज्जा टोकती है और कहती है:—हैं, रुको, यह क्या करने जा रही हो ?

किन इन्द्रजाल के—इन्द्रजाल—अद्भुत । सुहागकण—सुहावना पराग या पुष्परज । राग—रस, मकरंद । मधुधार—माधुर्य ।

शब्दार्थः—न जाने सुहावने पराग और मकरंद से परिपूर्ण किन अद्भुत पुष्पों को लेकर तुम सिर नीचा किए एक माला गूंथ रही हो ? इस दृश्य से एक विलक्षण माधुर्य की सृष्टि हो रही है ।

फूल—भाव । सुहाग—सौभाग्य । राग—प्रेम । सिर नीचा—करना—लजाना ।

भावार्थः—आज कुछ ऐसे अद्भुत भाव मेरे मन में विकसित हो रहे हैं जो प्रेमपक्ष के हैं और मेरे सौभाग्य के सूचक हैं । उन भावों की लड़ियों को पिरोने में अर्थात् उन्हें अपने हृदय में संचित रखने में मेरा सिर लाज से झुका रह गया है अर्थात् मैं लज्जा का अनुभव करने लगी हूँ । इस भावना के उदित होते ही एक निराले माधुर्य की सृष्टि अंतःकरण में हो रही है ।

श्रद्धा के पक्ष में:—अपने सौभाग्य को स्थिर करने के लिये मैं प्रेम के अलौकिक भावों की एक माला मन में गूंथ रही हूँ, पर मन के गले में उसे पहनाते समय हाथ ऊपर को उठते नहीं अर्थात् मन में तो प्रेम की बड़ी मीठी-मीठी भावनाएं उठती हैं, पर ज्यों ही मैं उन्हें मनु से कहना चाहती हूँ त्यों ही लजा कर रह जाती हूँ ।

वि०—सिर झुकाए पुष्प गूँथती हुई किसी बाला का मनोरम दृश्य इस छंद से आँखों के आगे नाचने लगता है ।

पृष्ठ ९८

पुलकित कदंब-पुलकित—रोमांचित । फलभरता—फलों से भरे रहने के कारण । डर—भार के आधिक्य से ।

अर्थ—जैसे कदंब-माला का एक एक पुष्प देखने में रोमांचित-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार तुम (लज्जा) मन में एक भाव के उपरांत दूसरे भाव की गुदगुदी उत्पन्न करती हो; जैसे फलों के बोझ

से डाल स्वतः झुक जाती है, उसी प्रकार मन पर जब तुम्हारा (लज्जा-का) बोझ छा जाता है तब वह दबा रहता है—कुछ भी नहीं कह पाता।

वरदान सदृश हो—वरदान—कल्याणमय। नीली किरनों—धुँधले प्रकाश का। सौरभ से सना—सुगंध से युक्त।

अर्थ—तुमने मेरे हृदय पर धुँधले प्रकाश से युक्त बड़ा हल्का और अत्यंत सुगन्धित अपना (लाज का) अंचल डाल दिया है। यह अंचल नारी के लिए कल्याणमय सिद्ध होता है।

वि०—लाज का घूँघट ऐसा नहीं होता जिसके भीतर से नारी के मन-मुख का दर्शन न हो सके। उसके रहने पर भी हृदय की भावनाएँ छिपती नहीं, पर शिष्ट समाज में भावों की नग्नता हेय समझी जायगी, अतः वह एक आवश्यक वस्तु है। लाज दोनों ओर के असंयम की बाढ़ को रोके रहती है, इसी से नारी के लिए वह वरदान सिद्ध होती है।

सब अंग मोम से—मोम से—कोमल। बल खाना—लचकना। सिमटना—सिकुड़ना, संकोच का अनुभव करना। परिहास—उपहास, व्यंग्य करते हुए किसी पर किसी का हँसना।

अर्थ—मेरे सभी अंग मोम के समान कोमल हो रहे हैं। इस कोमलता के कारण तन लचक लचक जाता है। जैसे जब कोई किसी बात को लेकर किसी पर व्यंग्य करता हुआ मुस्कराता है तो सुनने वाला संकोच का अनुभव करता है, उसी प्रकार मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरे शरीर के परिवर्तनों पर व्यंग्य कसता हुआ कोई कह रहा है कि तुझे हो क्या गया है, और मैं उसे सुनकर सिकुड़ी-सी जा रही हूँ।

स्मिति बन जाती है—स्मिति—मंद हास्य। तरल हँसी—खिल-खिला कर हँसना। बाँकपना—तिरछापन। प्रत्यक्ष—आँखों के सामने।

अर्थ—मैं खिलखिला कर हँसना चाहती हूँ पर संकोच ऐसा आ

धर दबाता है कि अट्टहास मंद मुसिकान में परिवर्तित हो जाता है। चितवन तिरछी हो जाती है।

वस्तुओं को आँखों के सामने देखकर भी ऐसा लगता है जैसे मैं उन्हें सपने में देख रही हूँ अर्थात् एक विचित्र मादकता की दशा में आजकल रहने के कारण ठोस वस्तुएँ भी छाया-चित्र सी लगती हैं।

मेरे सपनों में—सपनों—कल्पनाओं। कलरव—आनंद, सुख, मधुर ध्वनि। संसार—जीवन, पक्षी जगत्। आँख खोलना—प्रारंभ होना, जगना। समीर—वातावरण, पवन। इतराना—इठलाना।

अर्थ—जैसे स्वप्न-काल (रात) की समाप्ति पर पक्षियों का संसार जग कर कल ध्वनि करने लगता है और वह मधुर स्वर-लहरी पवन की लहरों पर तैरती हुई इतराती फिरती है, उसी प्रकार मेरी कल्पनाओं की समाप्ति पर जब मेरे आनंद का जीवन प्रारंभ हुआ और यह सुख प्रेम के वातावरण में समाकर इठला उठा—

नोट—भाव तीसरे छंद में पूर्ण होगा।

पृष्ठ ९९

अभिलाषा अपने यौवन—यौवन—तीव्रता। वैभव—भावनाओं की विभूति। सत्कृत—सत्कार।

अर्थ—हृदय की अभिलाषा अपनी पूर्ण तीव्रता (intensity) के साथ जब उस सुख का स्वागत करने चली और अपने जीवन भर की शक्ति और भावनाओं की विभूति से जब उसने बहुत दूर से आये (कठिनाई से प्राप्त) उस आनंद (मनु के मिलन) का सत्कार करना चाहा

वि०—यद्यपि मनु श्रद्धा के पास नहीं आए, श्रद्धा ही मनु के पास दूर देश (गांधार प्रदेश) से आई है—कुँआ ही प्यासे के पास आया है—पर यह भूल है कि पुरुष ही स्त्री के प्रेम का प्यासा होता है। स्त्री भी

से डाल स्वतः झुक जाती है, उसी प्रकार मन पर जब तुम्हारा (लज्जा-का) बोझ छा जाता है तब वह दबा रहता है—कुछ भी नहीं कह पाता।

वरदान सदृश हो—वरदान—कल्याणमय। नीली किरनों—धुँधले प्रकाश का। सौरभ से सना—सुगंध से युक्त।

अर्थ—तुमने मेरे हृदय पर धुँधले प्रकाश से युक्त बड़ा हल्का और अत्यंत सुगन्धित अपना (लाज का) अंचल डाल दिया है। यह अंचल नारी के लिए कल्याणमय सिद्ध होता है।

वि०—लाज का घूँघट ऐसा नहीं होता जिसके भीतर से नारी के मन-मुख का दर्शन न हो सके। उसके रहने पर भी हृदय की भावनाएँ छिपती नहीं, पर शिष्ट समाज में भावों की नग्नता हेय समझी जायगी, अतः वह एक आवश्यक वस्तु है। लाज दोनों ओर के असंयम की बाढ़ को रोके रहती है, इसी से नारी के लिए वह वरदान सिद्ध होती है।

सब अंग मोम से—मोम से—कोमल। बल खाना—लचकना। सिमटना—सिकुड़ना, संकोच का अनुभव करना। परिहास—उपहास, व्यंग्य करते हुए किसी पर किसी का हँसना।

अर्थ—मेरे सभी अंग मोम के समान कोमल हो रहे हैं। इस कोमलता के कारण तन लचक लचक जाता है। जैसे जब कोई किसी बात को लेकर किसी पर व्यंग्य करता हुआ मुस्कराता है तो सुनने वाला संकोच का अनुभव करता है, उसी प्रकार मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरे शरीर के परिवर्तनों पर व्यंग्य कसता हुआ कोई कह रहा है कि तुझे हो क्या गया है, और मैं उसे सुनकर सिकुड़ी-सी जा रही हूँ।

स्मिति बन जाती है—स्मिति—मंद हास्य। तरल हँसी—खिल-खिला कर हँसना। बाँकपना—तिरछापन। प्रत्यक्ष—आँखों के सामने।

अर्थ—मैं खिलखिला कर हँसना चाहती हूँ पर संकोच ऐसा आ

ओठों तक आकर रुक जाती हैं आगे नहीं बढ़ पातीं अर्थात् जो मैं उनसे कहना चाहती हूँ, वह भी नहीं कह पाती।

वि०—हिचकना, आँखें भर कर न देख सकना, मन की बात न कह सकना, सब लज्जा के लक्षण हैं।

संकेत कर रही—संकेत करना—कहना। रोमाली—रोम समूह। वरजना—टोकना, विरोध करना। भ्रम में पड़ना—अर्थ न खुलना।

अर्थ—मनु को स्पर्श करने या आलिंगन करने की कामना ज्यों ही मन में जगती है कि शरीर के ये रोम खड़े होकर मानों मेरी भावना का विरोध करते हुए से कहते हैं—ऐसा न करना।

मुँह से मैं कुछ कह नहीं सकती, पर मेरी काली भौंहों का चंचल हो जाना, यदि उस चंचलता की भाषा को पढ़ने वाला कोई हो तो यह व्यंजित करता है कि मेरे हृदय में किसी का प्रेम है। पर जैसे किसी पुस्तक में लिखी काली पंक्तियों की भाषा का अर्थ उस समय तक नहीं खुल सकता जब तक उन्हें कोई पढ़ने वाला न हो, इसी प्रकार मेरी भौंहों के इशारों का अर्थ उस समय तक स्पष्ट न होगा जब तक मनु अपने आप उसे न समझें।

तुम कौन हृदय—परवशता—विवशता। स्वच्छंद सुमन—ऋतु की प्रेरणा से उगे पुष्प और यौवन की प्रेरणा से उठे भाव।

अर्थ—तुम कौन हो? क्या तुम्हारा ही दूसरा नाम विवशता है? भाव यह कि जब लज्जा हृदय में प्रवेश करती है तब लाख इच्छा होने पर भी नारी क्रियात्मक रूप के कुछ नहीं कर पाती। मुझे लगता है कि मन के अनुकूल कुछ भी कर दिखाने में मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। जैसे वन में ऋतु की प्रेरणा से जो फूल स्वतः खिलें उन्हें कोई बीन ले जावे, उसी प्रकार मेरे जीवन में यौवन की प्रेरणा से जो भाव स्वाभाविक रूप से फूटे, उन्हें तुमने खिलने न दिया।

पुरुष के प्रेम की प्राप्ति के लिए छटपटाती रहती है, इसी से मनु के प्रेम की महत्ता की चर्चा श्रद्धा कर रही है।

किरनों का रज्जु—किरनों—साहस। रज्जु—डोर। समेट—खींच। अवलंबन—सहारा। रस—प्रेम। निर्झर—झरना। धँस—प्रवेश करके। शिखर—चोटी। प्रति—ओर।

अर्थ—तुमने साहस की वह किरण-डोर खींच ली जिसके सहारे मैं प्रेम के झरने में प्रवेश करके आनन्द की चोटी (सीमा) की ओर बढ़ती।

वि०—इस छंद में इस प्रकार का एक दृश्य निहित है कि एक ऊँचा पर्वत है; उससे झरना फूट रहा है जिसका जल चारों ओर फैल गया है। इस जल के परे एक युवती खड़ी है। वह पर्वत की चोटी पर पहुँचना चाहती है; पर तैरना नहीं जानती। देखती है पर्वत के शिखर से लेकर जल में होती हुई उसके चरणों तक एक डोर आई है। उसे बड़ी प्रसन्नता होती है और आशा करती है अब उसकी साध पूरी हो जायगी। पर रस्सी को पकड़ कर आगे बढ़ने की वह ज्यों ही आकांक्षा करती है कि गिरि-शिखर पर अधिष्ठित कोई अन्य रमणीमूर्ति चट से उस डोर को खींच कर उस युवती को निराश कर देती है।

रूपक को हटा कर देखते हैं तो यह पर्वत आनंद का है, यह निर्झर प्रेम का है, यह डोर साहस की है, वह पथिक युवती श्रद्धा है और डोर को खींचने वाली रमणी-मूर्ति लज्जा।

छूने में हिचक—हिचक—झिझक। कलरव—मधुर। अधरों पर आकर रुकना—न कह सकना।

अर्थ—मनु को छूना चाहती हूँ तो एक प्रकार की झिझक का अनुभव करती हूँ। उन्हें आँखें भर कर देखना चाहती हूँ तो पलकें नीचे की ओर झुक जाती हैं। मधुर परिहासपूर्ण बातें हृदय से उमड़ती हैं, पर

ओठों तक आकर रुक जाती हैं आगे नहीं बढ़ पातीं अर्थात् जो मैं उनसे कहना चाहती हूँ, वह भी नहीं कह पाती।

वि०—हिचकना, आँखें भर कर न देख सकना, मन की बात न कह सकना, सब लज्जा के लक्षण हैं।

संकेत कर रही—संकेत करना—कहना। रोमाली—रोम समूह। वरजना—टोकना, विरोध करना। भ्रम में पड़ना—अर्थ न खुलना।

अर्थ—मनु को स्पर्श करने या आलिंगन करने की कामना ज्यों ही मन में जगती है कि शरीर के ये रोम खड़े होकर मानों मेरी भावना का विरोध करते हुए से कहते हैं—ऐसा न करना।

मुँह से मैं कुछ कह नहीं सकती, पर मेरी काली भौहों का चंचल हो जाना, यदि उस चंचलता की भाषा को पढ़ने वाला कोई हो तो यह व्यंजित करता है कि मेरे हृदय में किसी का प्रेम है। पर जैसे किसी पुस्तक में लिखी काली पंक्तियों की भाषा का अर्थ उस समय तक नहीं खुल सकता जब तक उन्हें कोई पढ़ने वाला न हो, इसी प्रकार मेरी भौंहों के इशारों का अर्थ उस समय तक स्पष्ट न होगा जब तक मनु अपने आप उसे न समझें।

तुम कौन हृदय—परवशता—विवशता। स्वच्छंद सुमन—ऋतु की प्रेरणा से उगे पुष्प और यौवन की प्रेरणा से उठे भाव।

अर्थ—तुम कौन हो? क्या तुम्हारा ही दूसरा नाम विवशता है? भाव यह कि जब लज्जा हृदय में प्रवेश करती है तब लाख इच्छा होने पर भी नारी क्रियात्मक रूप से कुछ नहीं कर पाती। मुझे लगता है कि मन के अनुकूल कुछ भी कर दिखाने में मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। जैसे वन में ऋतु की प्रेरणा से जो फूल स्वतः खिलें उन्हें कोई बीन ले जावे, उसी प्रकार मेरे जीवन में यौवन की प्रेरणा से जो भाव स्वाभाविक रूप से फूटे, उन्हें तुमने खिलने न दिया।

वि०—'हृदय की परवशता' से अधिक सुन्दर 'लज्जा' की परिभाषा नहीं हो सकती।

पृष्ठ १००

संध्या की लाली—आश्रय-शरीर धारण करना। छायाप्रतिमा—छायामूर्ति, सूक्ष्म शरीर वाली।

अर्थ—संध्या की लालिमा सा जिसका अंग था और सुनहली किरणों सा जिसका हास्य, वह सूक्ष्म शरीरधारिणी लज्जा श्रद्धा के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए धीरे से बोली।

वि०—जैसा प्रारंभ में कह आए हैं कोई छाया-मूर्ति कहीं नहीं है। श्रद्धा ने जो प्रश्न किए हैं, उनका उत्तर श्रद्धा की बुद्धि ही दे रही है।

प्रेम और लज्जा दोनों का रंग लाल माना जाता है, इसी से छाया-मूर्ति के शरीर और हास्य की कल्पना संध्या की लालिमा के रूप में अत्यन्त उपयुक्त हुई है।

छाया-प्रतिमा शब्द से यह न भ्रम होना चाहिए कि लज्जा का रंग (छाया-सा) काला होगा। छाया-शरीर, मनुष्यों के स्थूल शरीर से भिन्न, सूक्ष्म शरीर के अर्थ में आता है। चाँदनी को साकार मानें तो उसका छाया-शरीर उजला होगा और इसी प्रकार उषा का अरुण। वनदेवियों का छाया-शरीर उज्ज्वल होता है।

इतना न चमत्कृत—चमत्कृत—चौंकना।—उपकार—हित। पकड़—रोक।

अर्थ—हे बाले, मुझे देखकर तुम इतनी चौंको मत। मेरे समझाने पर यदि तुम अपने मन को नियंत्रण में रख सकीं तो इसमें उसी का हित है। जो स्त्रियाँ प्रेम में उतावली हो जाती हैं उनके आवेशपूर्ण मन के लिए मैं एक 'रोक' हूँ जो यह समझाती है कि तुम जो कुछ करने

जा रही हो, उसके परिणाम पर मेरे कहने से पल भर रुक कर थोड़ा सोच-विचार कर लो।

वि०—श्रद्धा का पहला सीधा प्रश्न यह था कि तुम हो कौन ? आक्षेप यह था कि तुम्हारे होने से मैं परतंत्रता का अनुभव कर रही हूँ। लज्जा ने दोनों बातों का बड़ा सुन्दर छोटा सा उत्तर दिया—मैं एक 'पकड़' हूँ।

नोट :—आगे के ग्यारह छंदों में यौवन का वर्णन है जिसके अंत में लज्जा ने अपने को उस चपल (यौवन) की धात्री बताया है। यह बात भी इस ओर संकेत करती है कि लज्जा युवतियों की हित-साधिका है।

अंबर चुंबी हिम शृंगों—अंबर चुंबी—आकाश को छूने वाली, ऊँची। शृंग—चोटी। कलरव—मधुर। प्राणमयी—चेतना की लहरें। उन्माद—मस्ती।

अर्थ—आकाश को चूमने वाली पर्वत की ऊँची चोटियों पर जमे बर्फ के पिघलने से जल की धाराएँ जैसा मधुर कोलाहल करती हुई बहती हैं, यौवन काल में भी भावों के फूटने से वैसी ही मधुर गूंज हृदय में भर जाती है। इस यौवन के आते ही चेतना की मस्तीभरी लहरें उठाती एक बिजली की धार मन में बहती है।

मंगल कुंकुम की श्री—मंगल—मांगलिक या शुभ लक्षण सम्पन्न। कुंकुम—रोली। श्री—शोभा। सुहाग—सौभाग्य। इठलाना—इतराना। हरियाली—प्रसन्नता।

अर्थ—जैसे रोली एक मंगलसूचक शोभा की वस्तु है उसी प्रकार सुन्दरता से युक्त यौवन जीवन का सब से शुभ काल है। उसके आते ही शरीर में उषा से भी अधिक निखरी अरुणिमा छा जाती है। उसमें सुन्दर सौभाग्य इतराता फिरता है। वह हरा-भरापन या प्रसन्नता लाता है।

पृष्ठ १०१

हो नयनों का—कल्याण—सुख। वासंती—वसंत ऋतु। वनवैभव—वन को ऐश्वर्यशालिनी वस्तुएँ यथा हरे भरे खेत, खिले सुमन, मौर से युक्त रसालवृन्द, पक्षियों का चहकना। पंचम स्वर—मधुर कूक, उत्कृष्टता, उत्तमता। पिक—कोकिल।

अर्थ—देखने वालों के नेत्रों को वह सुख देता है। उसमें खिले पुष्प के समान आनन्द अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। वसंत ऋतु आने पर वन की सभी ऐश्वर्यशालिनी वस्तुओं में कोकिल का स्वर में कूकना जैसे पृथक पहचाना जा सकता है, उसी प्रकार जीवन की सभी विभूतियों में यौवन की उत्कृष्टता स्पष्ट प्रकट रहती है।

वि०—चन्द्रगुप्त नाटक में इसी भाव को दूसरे ढंग से प्रसाद जी ने व्यक्त किया है—

"अकस्मात् जीवन-कानन में एक राका-रजनी की छाया में छिपकर मधुर वसंत घुस आता है। शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं। सौंदर्य का कोकिल—'कौन?' कह कर सबको रोकने टोकने लगता है, पुकारने लगता है।"

वाद्यों के सात स्वरों में से पाँचवें स्वर को वाह्य प्रकृति में कोकिल के स्वर के समान कोमल और मधुर माना जाता है।

जो गूँज उठे फिर—गूंजना—भरना। मूर्च्छना—मधुर तान, (Melody)। रमणीय—सुन्दर।

अर्थ—कोकिल की तान जैसे सुनने वाले के रोम रोम में छा जाती है, उसी प्रकार यौवन का दर्शन करते ही उसका माधुर्य दर्शक की नस-नस में भर कर उमड़ता है।

जैसे साँचे में ढलकर पदार्थ एक भिन्न ही आकार प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार देखने वालों की आँखें साँचे हैं जिन में भर कर यौवन सुन्दर रूप के दृश्यों में परिवर्तित हो जाता है।

वि०—यौवन और रूप दो भिन्न वस्तुयें हैं। यौवन जीवन का एक काल विशेष है, और रूप शरीर के अंगों की सुडौलता और चारुता पर निर्भर करता है। जीवन में यौवन एक बार सभी प्राप्त करते हैं, पर रूपवान होना सभी के भाग्य में नहीं। फिर भी यौवन का ऐसा प्रभाव है कि उसके आने पर शरीर में एक विलक्षण आकर्षण आजाता है। जो रूपवान है उसके यौवन का तो कहना ही क्या?

नयनों की नीलम—नीलम की घाटी—काली पुतलियाँ। रस घन—रस भरे बादल। कौंध—बिजली की चमक।

अर्थ—जिसके आते ही नीलम के पर्वतों की घाटियों में उमड़ने वाले जल-भरे बादलों के समान काली-काली पुतलियों वाली रमणियों की आँखों में रस भर जाता है और जैसे उन बादलों में बिजली की बाहरी चमक के साथ भीतर शीतल जल भी भरा रहता है, उसी प्रकार यौवन में रूप की बाहरी चकाचौंध के साथ अन्तर में प्रेम की शीतल धारा भी रहती है।

हिल्लोल भरा हो—हिल्लोल—आनन्द। ऋतुपति—वसंत। गोधूली—संध्या। ममता—करुणा, अनुराग। मध्याह्न—दोपहर।

अर्थ—उस यौवन में वसंतऋतु का आनन्द, गोधूलिवेला की ममता, प्रभात काल की जाग्रति और दोपहर का तीव्रतम ओज समाया रहता है।

भाव यह कि जैसे वसंत आते ही प्रकृति हरी-भरी और पक्षियों की चहचहाहट से परिपूर्ण हो जाती है तथा देखने वालों की आँखों को आकर्षित करती है, उसी प्रकार यौवन के आते ही शरीर स्वस्थ और सुन्दर तथा मन प्रेम के कोलाहल से भर जाता है। वह और अपनी रम्यता से दर्शकों के मन को लुभाता है। संध्या-वेला जैसे ताप-दग्ध थके व्यक्तियों को घनी छाया और विश्राम देकर अपनी ममता प्रकट करती है, उसी प्रकार युवतियाँ संसार के ताप से दग्ध और

कार्यभार से शिथिल अपने प्रेमियों को कोमल कर के शीतल स्पर्श और चितवन की स्निग्धता से विश्राम पहुँचा अपना अनुग्रह प्रकट करती हैं। रात का समय जैसे सोने में व्यतीत होता है और प्रभात के फूटते ही जैसे सब जग पड़ते हैं, उसी प्रकार किशोरावस्था भूल का समय है और यौवन के पदार्पण करते ही जीवन को आँख खोल कर देखना पड़ता और सभी को उत्तरदायित्व निभाना होता है। मध्याह्न में सूर्य जैसे अपनी प्रखरता की सीमा पर होता है, उसी प्रकार यौवन में शरीर की सभी शक्तियाँ अपना पूर्ण विकास प्राप्त करती हैं।

हो चकित निकल—चकित—चौंकने का भाव। सहसा अकस्मात्। प्राची के घर—पूर्व दिशा के आकाश। नवल—नवीन। बिछलना—फिसलना। मानस—सरोवर, मन। लहरों—तरंगों, भाव।

अर्थ—जैसे पूर्व दिशा के गगन से चाँदनी आश्चर्य-चकित होकर इधर उधर देखती है, उसी प्रकार यौवन-काल में सौंदर्य शरीर से अकस्मात् फूट कर इस उस को ताकता है। जैसे नवीन चाँदनी सरोवर की लहरों पर पड़ कर फिसल-फिसल जाती है, उसी प्रकार भावों से लहराते प्रेमियों के हृदय रूप की चाँदनी को सँभाल नहीं पाते।

पृष्ठ १०२

फूलों की कोमल—अभिनन्दन—आदरभाव। मकरंद—पुष्प रस। कुंकुम—केसर।

अर्थ—इसी यौवन के प्रति अपना आदरभाव प्रदर्शित करने के लिए फूल अपनी पंखुरियों को मानो प्रस्फुटित कर (खोल) देते हैं। और केसर मिश्रित चंदन से जैसे किसी का स्वागत किया जाता है, उसी प्रकार सुमन अपने अन्तर में रस रक्षित रखते हैं।

फूलों—हृदयों। पंखड़ियाँ—भाव। मकरंद—प्रेम का रस।

भाव पक्ष में—इसी यौवन के प्रति अपना आदर-भाव प्रकट करने

के लिए प्रेमियों के हृदय अपनी भाव-निधि खोल देते हैं और इसी के स्वागत के लिए प्रेम-रस की केसर और चंदन को सुरक्षित रखते हैं।

वि०—एक बात यहाँ ध्यान देने की है। सुमन के रस या हृदय के रस के लिये कवि केवल कुंकुम या केवल चंदन नहीं लाया, दोनों लाया है। ऐसा लगता है कि कवि की दृष्टि दोनों के मिश्रण पर इसलिए है कि पुष्प के पक्ष में एक ओर तो मकरंद में पीले पराग का घुलना सार्थक हो जाता है और दूसरी ओर कुंकुम और चंदन के मिलने से जो द्रव्य उत्पन्न होगा, वह काव्य में निर्दिष्ट अनुराग के रंग से मेल खाता है।

कोमल किसलय—किसलय—कोंपल, पल्लव, पत्ती। मर्मर—वह शब्द जो पत्तों के हिलने पर सुनाई देता है। रव—ध्वनि। जय घोष—जय-ध्वनि, जय के नारे। उत्सव—पर्व, कोई मांगलिक या प्रसन्नता का अवसर।

अर्थ—जैसे किसी सम्राट् के आगमन पर 'महाराज की जय' हो की ध्वनि चारों ओर गूंज जाती है, उसी प्रकार कोमल पल्लवों से जो मर्मर ध्वनि निकलती है वह मानो यौवन की विजय-घोषणा है।

जैसे चार आदमी मिल कर किसी आनन्दोत्सव को मनाते हैं वैसे ही यौवन में सुख और दुःख के सम्मिश्रण से जीवन का उत्सव मनाया जाता है।

वि०—सभी उत्कृष्ट विचारक अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचे हैं कि दुःख एक अनिवार्य वस्तु है। इसके बिना सुख की कोई महत्ता नहीं। सुख और दुःख के उचित सामंजस्य में ही जीवन का आनन्द है। प्रसाद ने इस तथ्य की घोषणा अपनी कृतियों में बराबर की है; पर संभावतः पंत जी से अधिक स्पष्ट और सरल शब्दों में इसे कोई नहीं कह पाया—

जग पीड़ित है अति-दुख से, जग पीड़ित रे अति सुख से।
मानव-जग में बँट जावें, दुख सुख से औ सुख दुख से।

उज्ज्वल वरदान—उज्ज्वल—शुभ्र, सुन्दर, मंगलमय। चेतना—चेतना से युक्त प्राणियों के लिये। सपने—कामना। जगना—बना रहना।

अर्थ—चेतन प्राणियों के लिये यौवन भगवान का एक शुभ्र वरदान है। इसी का दूसरा नाम सौंदर्य है। यह काल ऐसा है जिसमें अगणित इच्छाओं की पूर्ति की कामना बनी रहती है।

मैं उसी चपल की—चपल—चंचल यौवन। धात्री—धाय, संरक्षिका। गौरव—गरिमा। ठोकर—आघात, पतन। धीरे से—सहृदयता से।

अर्थ—लज्जा बोली, हे श्रद्धा मैं इसी यौवन की जो स्वभाव से अत्यन्त चंचल है संरक्षिका (धाय) हूँ। जैसे धाय अपने नियन्त्रण में रहने वाले चपल बालक की पल-पल पर रक्षा करती है और उसे गौरव और महानता का पाठ पढ़ाती है, उसी प्रकार नारी-जाति को मैं गरिमा और महत्ता के साथ व्यवहार करना सिखलाती हूँ। जैसे जब बच्चे के ठोकर लगने वाली होती है तभी धाय उसे धीरे से बतला देती है कि देखकर न चलने से ठोकर खा जाओगे, इसी प्रकार जब स्त्री आवेश में आकर उच्छृंखलता की ओर बढ़ती है जिससे उसे हानि पहुँचने की संभावना रहती है, तब मैं एक बार उससे चुपचाप अत्यन्त सहृदयता से यह अवश्य कह देती हूँ कि देखो यदि इस ओर तुम बढ़ीं तो पतन की संभावना है। आगे तुम जानो।

मैं देवसृष्टि की रति—देवसृष्टि—देव जाति। रति—काम की पत्नी, एक देवी। पंचबाण—कामदेव का एक नाम।

अर्थ—जिस समय देव जाति इस पृथ्वी पर निवास करती थी, उस समय मेरा नाम रति था। प्रलय में उस जाति के विनाश पर अपने पति कामदेव से मुझे बिछुड़ना पड़ा। तब से मैं निषेध की दीन आकृति मात्र हूँ अर्थात् पहिले जैसे देवियों के मन में मैं प्रबल उत्तेजना

उत्पन्न करने की शक्ति रखती थी, वह अब मुझसे छिन गई। इसीसे अपनी अतृप्ति की भावना को एकत्र करके—

नोट—भाव आगे के छन्द में पूरा होगा।

वि०—कामदेव के पाँच बाण ये हैं—द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्माद।

पृष्ठ १०३

अवशिष्ट रह गई—अवशिष्ट—शेष। अतीत—भूतकाल। लीला—प्रणय क्रीड़ा। विलास—भोग। अवसाद—थकावट। श्रमदलित—श्रम से चूर।

अर्थ—अब तो मैं अपने अतीत काल की असफलता के संस्कार के समान सब के अनुभव में ही शेष रह गई हूँ।

मेरी तीव्रता आज उसी प्रकार कम हो गई, जिस प्रकार प्रणय-क्रीड़ा में भोग के उपरांत श्रम से चूर होने पर उत्साहपूर्ण मन में खिन्नता और (सबल) शरीर में थकावट का अनुभव होता है।

मैं रति की प्रतिकृति—प्रतिकृति—प्रतिमा। शालीनता—विनम्रता (modesty)। नूपुर—घुँघरू।

अर्थ—मेरा नाम लज्जा है। मैं रति की प्रतिमा हूँ। नारियों को विनम्रता सिखलाना मेरा काम है। जैसे नृत्य के समय मस्ती से घूमने वाले चरणों में नूपुरों के संयोग से नियन्त्रण रहता है, उसी प्रकार उन सुन्दरियों में जो यौवन की मस्ती में न जाने क्या कर बैठें, मेरे अनुनय से एक संयम रहता है।

वि०—'मनाने' शब्द का सौंदर्य यह है कि यदि नूपुर चरणों में न हों तो वे निश्चित होकर तीव्रता से घूमें, पर घुंघरुओं को भी एक गति से बजाने की ओर नर्तकी का ध्यान रहता है; अतः उस गति में अधिक बन्धन और संयम आजाता है। इसी प्रकार मस्त रमणियों के पैरों पर गिर कर मानो लज्जा यह विनय बराबर करती रहती है कि तुम्हारे मन

में आवे वही करना, पर भाई थोड़ा मेरा भी ध्यान रहे। और जहाँ लज्जा का तनिक भी ध्यान रखा जाता है, वहाँ संयम स्वतः आजाता है और संयम आने से आवेग चमक उठता है।

लाली बन सरल—लाली—लालिमा। अंजन—काजल। कुँचित—बल खाती हुई। घुंघराली—गोल लच्छेदार। मरोर—ऐंठन।

अर्थ—मेरे कारण रमणियों के सरल कपोल लाल हो जाते हैं। उनकी आँखों में अंजन न लगा रहने पर भी मेरी लज्जा की अनुभूति में ऐसा लगता है जैसे वह लगा हुआ हो। बल खाती हुई घुंघराली लटों के समान मैं रमणियों के मन में ऐंठन (टीस) उत्पन्न करती हूँ।

वि०—'लज्जा' संयम और सौंदर्य दोनों की पोषिका है। कपोलों के साथ 'सरल' विशेषण की यह सार्थकता है कि लज्जा की लाली झलकने पर ही रमणियों के कपोल सुन्दर और आकर्षक प्रतीत होते हैं, नहीं तो वे सामान्य कपोल हैं।

चन्द्रगुप्त नाटक में 'मन की मरोर' और 'कपोल की लाली' को स्पष्टता से समझा दिया है—

"राजकुमारी, काम-संगीत की तान सौंदर्य की रंगीन लहर बन कर, युवतियों के मुख में लज्जा और स्वास्थ्य की लाली चढ़ाया करती है।"

चंचल किशोरता—किशोरसुन्दरता—वे सुन्दरियाँ जो अभी किशोरावस्था में हैं। मसलन—उँगलियों से किसी वस्तु को दबाते हुये मलना या रगड़ना।

अर्थ—सुन्दर किशोरियों के मन जब चंचल होते हैं तब मैं उन पर नियन्त्रण रखती हूँ। जैसे कान को हल्के-हल्के कोई मसले तो वह लाल हो जाते हैं। इस क्रिया से एक ओर थोड़ी पीड़ा होती है, पर सुन्दरता भी झलकने लगती है। इसी प्रकार मेरे नियन्त्रण में रहने वाली रमणी यद्यपि थोड़ी क्षुब्ध रहती है, पर उस संयम से प्रेम में विलक्षण माधुर्य आ जाता है।

पृष्ठ १०४

हाँ ठीक परन्तु—पथ—मार्ग, निर्दिष्ट कर्मों की सूची। निविड़—घोर। निशा—अनिश्चित भविष्य। संसृति—संसार। आलोकमयी—प्रकाशपूर्ण, आशाभरी। रेखा—किरण, सहारा।

अर्थ—श्रद्धा बोली, तुम जो कहती हो, वह सब सच है। पर मुझे इस बात का उत्तर दो कि मैं अपना जीवन किस मार्ग पर अनुसरण करती हुई काटूँ? संसार रूपी इस घोर रात्रि में प्रकाश की किरण मैं कहाँ पाऊँगी?

भाव यह कि यदि मेरा भविष्य निश्चित रहा तो मैं कुछ भी नहीं कर पाऊँगी। जैसे अँधेरी रात में किरणों के फूटने की आशा लिये आँखें बैठी रहती हैं, उसी प्रकार उस सहारे का संकेत तुम करो जिसके आश्रय में मैं अपने पल सफल बना सकूँ।

यह आज समझ—दुर्बलता—शारीरिक बल की हीनता। अवयव—शरीर। सबसे—प्रकृति के अन्य प्राणियों विशेष कर पुरुष जाति से।

अर्थ—आज इतनी बात तो मैं जान गई हूँ कि नारी होने के नाते मैं बलहीन हूँ। भगवान ने हमारे शरीर को सुन्दर और कोमल बनाया है, पर इस कोमलता का अर्थ शारीरिक बल की हीनता है। अपनी इस कमी के कारण ही नारी-जाति सभी से सदैव पराजित होती रहेगी।

पर मन भी क्यों—ढीला—पराधीन, परवश। अपने ही—स्वतः, बिना किसी प्रकार के दबाव के। घन श्याम खंड—काले बादलों के टुकड़े।

अर्थ—थोड़ी देर के लिये शरीर की बात छोड़ दो। मैं पूछती हूँ मेरा यह मन अपने आप ही क्यों पराधीन हो रहा है? पानी से भरे काले बादलों के समान मेरी आँखें आँसुओं से क्यों भरी हुई हैं?

वि०—काले बादलों से कोई कहता नहीं कि तुम बरसो, पर वे

अपने स्वभाव से विवश हैं, बरसते हैं। इसी प्रकार प्रेम करना भी नारी का स्वभाव है।

सर्वस्व समर्पण करने—समर्पण—न्यौछावर। महातरु—विशाल वृक्ष। छाया—आश्रय। ममता–इच्छा, कामना। माया में–मोहमयी।

अर्थ—जैसे कोई ताप-दग्ध प्राणी किसी विशाल वृक्ष की छाया में पहुँच कर यह इच्छा करता है कि अब तो यहीं चुपचाप पड़ा रहूँ तो अच्छा है, वैसे ही मेरे मन में ऐसी मोहमयी कामना क्यों जगती है कि मैं किसी पुरुष का भारी विश्वास प्राप्त कर अपना सब कुछ उस पर न्यौछावर कर दूँ और उसके आश्रय में अपना जीवन चुपचाप काट दूँ।

छाय पथ में—छायापथ—आकाश गंगा। तारक द्युति—तारिका का प्रकाश। झिलमिलाना—टिमटिमाना। लीला—भावना। अभिनय—क्रीड़ा। निरीहता—भोलापन। श्रमशीला–श्रम का जीवन।

अर्थ—मेरे मन में ऐसी मधुर कामना क्यों क्रीड़ा कर रही है कि आकाश गंगा में मंद टिमटिमाने वाली तारिका के समान मैं अपने जीवन का आदर्श रखूँ अर्थात् एक ओर तो मैं यह नहीं चाहती कि मेरा अस्तित्व बिल्कुल मिट जाय, दूसरी ओर मैं यह भी नहीं सोचती कि सूर्य अथवा चन्द्र के समान आभासित होने वाले पुरुष से अपने व्यक्तित्व को प्रधानता दूँ।

मैं कोमलता, भोलेपन और श्रम के जीवन को क्यों पसन्द करती हूँ?

पृष्ठ १०५

निस्संबल होकर—निस्संबल—बिना सहारे के। मानस—सरोवर, मन। गहराई—गहरापन, गंभीरता। जागरण—जाग्रति (awakening)। लहरें—भावनाओं। सुघराई–सुन्दरता।

अर्थ—जैसे किसी गहरे सरोवर में तैरने वाला प्राणी सोचे कि उसे किसी भी समय सहारे की आवश्यकता पड़ सकती है, वैसे ही अपने मन

में जब मैं गंभीरता ने विचार करती हूँ तभी इस निर्णय पर पहुँचती हूँ कि मैं यदि अकेले-अकेले जीवन यापन करूँ तो आश्रयहीन हूँ।

अपनी इस रम्य भावना में डूबकर कि पुरुष का आश्रय पाकर फिर कुछ करना शेष नहीं, मैं अन्य किसी प्रकार की जाग्रति की कल्पना कभी नहीं करना चाहती।

नारी जीवन का चित्र—चित्र—सत्य, सत्ता, रहस्य। विकल—इधर उधर, अस्त व्यस्त। अस्फुट—टेढ़ी सीधी। आकार—जन्म।

अर्थ—बतलाओ नारी जीवन का वास्तविक चित्र क्या यही है जो मैंने तुम्हें अपने शब्दों द्वारा अभी खींच कर दिखलाया?

जैसे कोई चित्रकार टेढ़ी-सीधी रेखाओं में जब इधर उधर रंग भरता है, तब एक कला-कृति का निर्माण करता है; इसी प्रकार नारी का शरीर त्वचा की सीमा में हड्डियों और नसों का एक ढांचा मात्र है; जब तुम्हारा (लज्जा का) रंग इधर उधर भर जाता है, तब उसी में रम्यता आजाती है।

वि०—'चित्र' शब्द यहाँ विशेष रूप से 'सत्ता' के अर्थ में आया है। श्रद्धा पीछे कह आई है कि उसकी दृष्टि में नारी शरीर से ही बलहीन नहीं है, पुरुष के लिए मन से भी दुर्बल है। वह उसके ऊपर विश्वास करना चाहती है। आत्म-समर्पण ही उसका स्वभाव है। उसकी सेवा में वह अपनी सारी शक्ति लगाने को उत्सुक रहती है, उसकी बराबरी करने की स्पर्द्धा उसमें बिल्कुल नहीं है। इतना कहकर वह जानना चाहती है कि नारी की वास्तविक सत्ता, उसके जीवन का वास्तविक सत्य क्या इसके अतिरिक्त और कुछ है?

रुकती हूँ और—अनुदिन—रातदिन। बकती—ऊटपटांग बातें सोचती।

अर्थ—भाव की प्रेरणा से कुछ करने के लिए कटिबद्ध होने पर बीच-बीच में कभी-कभी थोड़ी रुक-ठहर जाती हूँ; पर वह रुकना सोच

विचार में पड़ कर दूसरी ओर मुड़ने के लिए नहीं होता। एक बार जो निश्चय कर लिया वह कर लिया।

वि०—जैसे कोई पागल स्त्री रातदिन कुछ ऐसा बड़बड़ाती रहती है जिसमें एक बात का संबंध दूसरी बात से नहीं होता, उसी प्रकार मेरा मन भीतर-भीतर रात-दिन न जाने क्या ऊटपटांग बातें सुझाता रहता है।

मैं जभी तोलने—तोलने—अधिकार करने। उपचार—प्रयत्न, उपाय। तुल जाना—अधिकार में होना। झूले सी झोंके खाना—आकर्षण के बंधन में आना।

अर्थ—प्रयत्न तो मैं यह करती हूँ कि पुरुष पर अधिकार कर लूँ, पर होता यह है कि मैं उसके हाथों बिक जाती हूँ—वशीभूत हो जाती हूँ।

अपनी भुजाएँ उसके गले में डालती तो इसलिए हूँ कि उसे इनमें फाँस लूँ, पर जैसे वृक्ष को बाँधने का प्रयत्न करने वाली लता अपने लघुभार के कारण स्वयं झूले सी लटक कर उसमें फँसी रह जाती है, वैसे ही मैं भी जिस व्यक्ति को भुजाओं में बाँधना चाहती हूँ उससे बँधकर (आकर्षित होकर) रह जाती हूँ।

इस अर्पण में—अर्पण—आत्म समर्पण। उत्सर्ग—त्याग। दे दूँ—त्याग करूँ। कुछ न लूँ—स्वार्थ का संबंध न रखूँ।

अर्थ—मैं आत्म समर्पण स्वार्थ के लिए नहीं, त्याग के लिए करती हूँ। मेरा हृदय इतना भोला है कि वह केवल देना जानता है, लेना नहीं सीखा।

पृष्ठ १०६

क्या कहती हो—क्या कहती हो—आश्चर्य की बात है। ठहरो—अपनी बात बंद करो। संकल्प—दृढ़ निश्चय। सोने से सपने—सुनहली साधें।

अर्थ—लज्जा बोली : हे नारी, तुम यह कह क्या रही हो! आश्चर्य होता है मुझे ऐसा सुनकर। अपनी बात को अब यहीं थाम कर मुझसे

इतना और सुनती जाओ कि यदि यह सब कुछ सत्य है, तब मेरे समझाने के पूर्व ही तुमने जीवन की सुनहली साधों को आँखों की अंजली में आँसुओं का जल भर कर दृढ़ निश्चय का मंत्र पढ़ते हुए किसी को दान में दे डाला।

वि०—अंजली में जल भर कर मंत्र का उच्चारण करते हुए दान देने का विधान है। यहाँ पुरुष के लिए नारी द्वारा अपने जीवन की अत्यंत प्रिय साधों को उत्सर्ग करने की चर्चा है। अश्रुजल का भाव यह है कि पुरुष के कारण स्त्री का जीवन यद्यपि रोते ही व्यतीत होता है, तथापि अपने स्वभाव से विवश होने के कारण के वह उसके लिए त्याग किए ही जाती है।

नारी तुम केवल—श्रद्धा—आस्था, विश्वास। रजत नग—रुपहला पर्वत, कैलास। पग तल—तलहटी। पीयूष—अमृत, मधुर। स्रोता—झरना।

अर्थ—हे नारी, तुम्हारा ही दूसरा नाम श्रद्धा है। जैसे कैलास पर्वत के चरणों (तलहटी) की समभूमि में मीठे पानी के सोते बहते हैं, उसी प्रकार पुरुष पर अगाध विश्वास करती हुई तुम प्रेम की धार से जीवन के पथ को सम (सुगम और सुखमय) करती हुई उसे सुन्दर बनाओ।

देवों की विजय—देवों—अच्छे विचारों। दानवों—बुरे विचारों। नित्य विरुद्ध—स्वाभाविक विरोधी।

अर्थ—क्योंकि हृदय की सत् और असत् भावनायें एक दूसरे की स्वाभाविक विरोधिनी हैं; अतः इनमें संघर्ष चलता ही रहता है। इस युद्ध में दैवी भावनाओं (अच्छे विचारों) की अंत में जय होती है और आसुरी भावनाओं (बुरे विचारों) की पराजय।

आँसू से भीग—स्मिति रेखा—मुस्कान। संधिपत्र—आत्मसमर्पण की प्रतिज्ञा।

अर्थ—जैसे पराजित जाति विजेता को अपना सब कुछ सौंपने को बाध्य होती है और भीतर से मन चाहे रोता हो, पर ऊपर से हँसते-हँसते संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं, उसी प्रकार अब जब पुरुष के सामने मन में विवश होकर तुम झुक गईं तब इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि मन की सब इच्छाएँ उसे अर्पित करनी होंगी। ऐसा करने में चाहे तुम्हारा अंचल आँसुओं से भीगा रहे—चाहे तुम्हें कितनी ही कष्ट हो—पर सर्वस्व-समर्पण की प्रतिज्ञा ओठों पर मुसिकान की रेखा लाकर करनी होगी।

कर्म

कथा—मनु में दैवी संस्कार फिर उभर आये और हृदय में यज्ञ करने की प्रेरणा बार बार होने लगी। सोमरस पान की लालसा उनके हृदय में जगी। यज्ञ करने से इस इच्छा की पूर्ति भी हो सकती थी; इधर वे चाहते थे कि श्रद्धा का मन किसी प्रकार लगा रहे। अतः उनके हृदय में साधना के लिए एक नवीन स्फूर्ति का जन्म हुआ।

मनु के समान प्रलय में किसी प्रकार दो असुर पुरोहित बच गए थे। उनके नाम थे आकुलि और किलात। श्रद्धा के हृष्ट-पुष्ट पशु को देखकर आकुलि की जिह्वा उसके मांस खाने को तरसने लगी, पर श्रद्धा की संरक्षकता में रहने के कारण पशु को प्राप्त करना कठिन था। इस लालसा का पता पा उसके मित्र ने कहा: चलो इस सम्बन्ध में कुछ प्रयत्न कर देखें।

इधर मनु सोच रहे थे: यज्ञ करने से मेरे मन के सपने तो पूरे हो जायँगे, पर यह निर्जन प्रदेश है, पुरोहित को कहाँ से लाऊँ? श्रद्धा मेरी प्रेमिका है, उसे यज्ञ में आचार्य नहीं बनाया जा सकता। ठीक इसी समय असुर मित्रों ने बड़ी गंभीर वाणी में कहा: तुम यज्ञ चाहते हो न? इस कर्म से तुम सृष्टि के शासक के प्रतिनिधि जिन सूर्यचन्द्र को तुष्ट करना चाहते हो, हम दोनों को तुम्हारे पास उन्हीं ने भेजा है। मनु ने सोचा संयोग की बात है कि पुरोहित स्वयं मिल गए। अब जीवन को एक नवीन गति मिलेगी, सूनापन जगमगा उठेगा, और श्रद्धा भी प्रसन्नता का अनुभव करेगी।

अग्नि धधकी, आहुतियाँ पड़ने लगीं और यज्ञ समाप्त हो गया;

पर श्रद्धा ने उसमें भाग तक न लिया। वेदी के चारों ओर अस्थि-खंड और रुधिर के छींटे पड़े थे। मनु ने सोम-रस का पान किया। अपनी संगिनी के आचरण पर उन्हें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। पर वह आती भी कैसे? उसी के प्रिय पशु की हत्या उस यज्ञ में हुई थी। उसकी कातर वाणी उसने अपने कानों सुनी थी, जिससे उसे गहरी मानसिक व्यथा हुई थी। बाहर चाँदनी खिल रही थी, पर वह शयन-गुहा में लेटे-लेटे इस बात पर पश्चात्ताप मना रही थी कि जिस व्यक्ति को मैं इतना प्रेम करती हूँ, वह इतना कुटिल क्यों निकला? इसके उपरांत विचारों के समुद्र में वह और भी गहरे पैठ गई और सृष्टि, उसके पाप-पुण्य, जगत के दुःख, उसके छल, उसकी निष्ठुरता तथा उसके दुर्व्यवहार पर देर तक वह सोचती रही।

मनु सोम-रस के मद और आंतरिक वासना से उत्तेजित हो गुहा में खिंच आए। श्रद्धा उस समय सो रही थी; पर उस चाँदनी में उसका रूप और भी निखर उठा था। उसकी चिकनी खुली भुजाओं, उसके उन्नत भरे उरोजों में अपनी ओर खींचने की असीम शक्ति थी। चारों ओर हल्का प्रकाश हल्के अंधकार से मिला हुआ फैला था। उन्होंने श्रद्धा की हथेली अपने हाथ में लेली और बोलेः मानिनी आज तुम्हारा यह कैसा मान है? सुन्दरी मेरे स्वर्ग-सुख को धूलि में मिलाने का प्रयत्न न करो। यहाँ मुझे और तुम्हें छोड़कर कोई नही है। सोम-रस में इन अरुण अधरों को डुबाओ और मस्ती का आनंद लो।

श्रद्धा की नींद उचट गई थी। उसने अत्यंत सरल भाव से उत्तर दिया : अभी अभी मेरे प्रति आकर्षण प्रकट किया जा रहा है। पर हो सकता है कि कल ही यह भाव परिवर्तित हो जाय। तब फिर एक नवीन यज्ञ प्रारंभ होगा और फिर किसी पशु की बलि दी जायगी। मैं जानना चाहती हूँ कि क्या स्वार्थ और हिंसा के आधार पर ही तुम्हारा मानव-धर्म चलेगा? मनु बोलेः श्रद्धा व्यक्तिगत सुख को तुम जितना हेय

समझती हो, वह उतना है नहीं। चार दिन का जीवन है, यदि उसमें भी अपने अभावों की पूर्ति न हुई तो यह पल विफल ही रहे। श्रद्धा ने टोकाः यदि मनुष्य अपने स्वार्थ का ही ध्यान रखेगा तो सृष्टि नष्ट हो जायगी। ये कलियाँ यदि सौरभ और मकरंद का वितरण न करें तो गंध-रस तुम कहाँ से पाओगे ? सुख का संग्रह स्वार्थ के लिए नहीं किया जाता, वरन् इसलिए किया जाता है कि दूसरों को हम सुखी बना सकें।

श्रद्धा तर्क तो सद्विचारों को लेकर कर रही थी, पर उसका हृदय भी प्यासा था। मनु ने उसकी इस दुर्बलता को पहचान लिया और यह कहते हुए कि आगे से जैसा तुम कहोगी वैसा ही होगा, सोमपात्र उसके अधरों से लगा दिया। बड़े विनय के साथ उन्होंने फिर कहाः श्रद्धा इस लज्जा ने हमें एक दूसरे से पृथक कर रखा है। प्राण, इसे दूर कर दो। इसके उपरांत उन्होंने श्रद्धा का चुम्बन किया जिससे शरीर का रक्त खौल उठा। वे दोनों और निकट आगए। और तब...

पृष्ठ १०९

कर्म सूत्र संकेत—कर्म—यज्ञ कर्म। कर्म सूत्र-कर्म की डोर, कर्म व्यापार। सोमलता-प्राचीन काल की एक लता जिसका रस मादक होता था और जिसे वैदिक ऋषि पान करते थे। शिंजिनी—धनुष की डोरी। धनु—धनुष।

अर्थ—मनु के हृदय में सोमरस पान की लालसा जगी और इस मादक रस का पान क्योंकि यज्ञ की समाप्ति पर ही सम्भव था; अतः मनु के लिए सोम लता यज्ञ-कर्म की ओर प्रवृत्त करने वाली हुई। जैसे धनुष की डोरी धनुष के कोनों पर चढ़कर उसे खींच देती है, वैसे ही मनु के जीवन को कर्म की डोर ने कस दिया अर्थात् जैसे खिचे हुए धनुष से उसी प्रकार उनके जीवन से शिथिलता दूर हो गई।

हुये अग्रसर उसी—अग्रसर—आगे बढ़ना। उसी—यज्ञ कर्म की ओर। छुटे—धनुष से छूटे हुए। कटु—तीव्र। थिर—स्थिर, शांत।

अर्थ—छूटे हुए तीर के समान कर्म-पथ पर मनु बढ़ते ही चले गए। उनके हृदय से 'करो यज्ञ' की एक तीव्र पुकार उठी, अतः शांत भाव से बैठे रहना उन्हें कठिन हो गया।

वि०—इन दोनों छंदों में मिलाकर एक समूचे दृश्य की कल्पना की गई है। यहाँ जीवन धनुष के लिए तथा कर्मसूत्र उसकी डोर के लिए प्रयुक्त हैं। मनु तीर के स्थानापन्न हैं। जैसे धनुष से छूटा बाण एक दिशा की ओर सरसराता चला जाता है, उसी प्रकार मनु कर्म के पथ पर दौड़े चले जा रहे हैं। स्मरण रखना चाहिये कि कर्म से तात्पर्य यहाँ वेद विहित यज्ञ कर्म मात्र से है।

भरा कान में कथन—कथन—बात। अभिलाषा—कामना। अतिरंजित—तीव्र, रंगीन।

अर्थ—कामदेव की यह बात कि इस पृथ्वी पर प्रेम का संदेश सुनाने के लिए एक शांतिदायिनी निर्मल ज्योति आई है और यदि तुम उसे प्राप्त करना चाहते हो तो उसके योग्य बनो अभी तक मनु के कानों में गूंज रही थी। इसी समय एक नवीन कामना ने उनके मन में जन्म लिया। उस शक्ति को प्राप्त करने की आशा तीव्रता से हृदय में उमड़ने लगी और वे उस संबंध में सोच विचार करने लगे।

ललक रही थी—ललकना—तीव्र होना। ललित—मधुर, सुन्दर। लालसा—आकांक्षा। दीन विभव—दीनता और वैभवहीनता।

अर्थ—मनु के हृदय में यह मधुर आकांक्षा तीव्र हो उठी कि मैं सोमरस पान की अपनी प्यास बुझाऊँ। उनका जीवन वैभवहीन, दीन और उदास था।

जीवन की अविराम—अविराम—निरंतर। तरणी—नौका। गहरे—गहरे जल में।

अर्थ—मनु ने निश्चय किया कि अब वे निरंतर साधना में लीन रहेंगे। इसी से उनके जीवन में एक उत्साह छा गया। जैसे पवन के

उलटने पर नौका कहीं की कहीं गहरे जल में पहुँच जाती है, उसी प्रकार साधना के उत्साह के नवीन झोंके ने उन्हें जीवन की गंभीरता की ओर ला पटका।

पृष्ठ ११०

श्रद्धा के उत्साह के वचन—उत्साह—अनुराग। प्रेरणा—किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए किसी को उकसाना। भ्रांत—उल्टा। तिल का ताड़—छोटी बात बढ़ाकर कुछ का कुछ समझना।

अर्थ—इधर श्रद्धा ने मनु के प्रति अपने हृदय का उत्साह प्रदर्शित किया था ही और उधर कामदेव ने एक प्रेममयी ज्योति को प्राप्त करने की प्रेरणा की थी। इन दोनों बातों के संयोग से मनु ने काम के संदेश का अर्थ उल्टा ही लगाया—काम की वाणी का संकेत तो यह था कि श्रद्धा के हृदय का मूल्य पहचानो और उसके सम्पर्क में अपनी लौकिक और आध्यात्मिक उन्नति करो; पर मनु ने यह अर्थ लगाया कि श्रद्धा के शरीर की प्राप्ति ही सब कुछ है। वह छोटी सी बात को बढ़ा कर कुछ का कुछ समझ बैठे।

बन जाता सिद्धान्त—सिद्धान्त—धारणा, मत, निर्णय। पुष्टि—समर्थन। उसी ऋण को—वैसी ही बातों को। सब से—यहाँ वहाँ से। सदैव—रात दिन। भरना—इकट्ठा करना।

अर्थ—होना यह चाहिए कि किसी सम्बंध में बहुत से प्रमाण मिलने पर ही हम कोई सिद्धान्त बनावें, पर होता यह है कि मन पहले कोई सिद्धान्त बना लेता है और तब उसका समर्थन होता रहता है। जब वह धारणा हृदय में घर कर लेती है तब बुद्धि रात दिन यहाँ वहाँ से अनुकूल बातें इकट्ठा करती रहती है।

मन जब निश्चित—निश्चित—दृढ़। मत—धारणा। दैव बल—भाग्य, अदृष्ट। प्रमाण—उसे सिद्ध होना। घटना—घटनायें।

अर्थ—जिस समय मन कोई निश्चित धारणा बना लेता है, उस

समय बुद्धि और भाग्य का सहारा पाकर वह उसी को सत्य सिद्ध करने वाली घटनायें निरंतर देखता है।

वि०—यह सामान्य अनुभव की बात है कि यदि किसी प्राणी के मन में यह बात बैठ जाय कि संसार में छल ही छल है, तब वह जहाँ संदेह का कारण नहीं भी होता वहाँ भी अकारण संदेह करता है।

पवन वही हिलकोर—हिलकोर—झोंका। तरलता—चंचलता, लहरों। अंतरतम—हृदय। नभ तल—आकाश।

अर्थ—तब पवन के झोंकों, जल की चंचल लहरों तथा आकाश में केवल अपने अंतर की धारणा की प्रतिध्वनि ही उसे सुनाई देती है—भाव यह कि वायु की हिलोरें, जल की तरंगें और गगन की गूंज अपनी अपनी भाषा में मानो उसी के मत को घोषणा करती फिरती हैं।

सदा समर्थन करती—समर्थन—पुष्टि। तर्क शास्त्र—वे ग्रंथ जिनमें वस्तुओं की विवेचना और सिद्धान्तों का खंडन-मंडन करना सिखलाया जाता है, युक्ति शास्त्र, न्याय शास्त्र (Logic)। पीढ़ी—परंपरा, एक के उपरांत दूसरा। उन्नति–विकास। सीढ़ी–ऊपर चढ़ने के सोपान या साधन।

अर्थ—तर्क शास्त्रों को उठाता है तो उनमें यही पाता है कि एक के उपरांत दूसरा उसी की बात की पुष्टि कर रहा है। तब उसे यह निश्चय हो जाता है कि जो वह सोच रहा है वही एकमात्र सत्य है और विकास तथा सुख उसी सत्य का सहारा लेने से प्राप्त हो सकते हैं।

पृष्ठ १११

और सत्य यह—गहन—गूढ़, कठिन, दुरूह। मेधा—बुद्धि। क्रीड़ा—खेल, कौशल। पंजर—पिंजड़ा।

अर्थ—और सत्य! यह एक शब्द आज समझ के लिए कितना गूढ़ (कठिन) हो गया है! पर सच पूछते हो तो यह बुद्धि की क्रीड़ा के पिंजड़े में बंद पालतू तोते के समान है। भाव यह कि जैसे पालतू

तोते की सीमा पिंजड़ा, उसी प्रकार सत्य की सीमा प्राणी की बुद्धि। अपनी बुद्धि से वह जो सिद्ध करदे वही सत्य है।

सब बातों में खोज—बातों—क्षेत्रों। स्पर्श—छूना। छुई मुई—लजालू नाम का पौधा जो उँगली से छूते ही संकुचित हो जाता है।

अर्थ—सभी क्षेत्रों में तुम्हारी खोज की रट लगी हुई है अर्थात् दार्शनिक वैज्ञानिक, साहित्यकार, समाज-सुधारक सभी सत्य को पाने के लिए उतावले हो रहे हैं। किन्तु जैसे हाथ से छूते ही छुईमुई का पौधा कुम्हला जाता है, उसी प्रकार जिसे सत्य कह कर घोषित किया जाता है, उस के संबंध में तर्क करो कि वह ठहर ही नहीं पाता।

असुर पुरोहित—पुरोहित—धर्म गुरु। विप्लव—जल प्लावन। सहना—झेलना।

अर्थ—मनु के समान ही दो असुर पुरोहित जल-प्लावन से किसी प्रकार मरते-मरते बच गए थे और इधर-उधर भटकते फिरते थे। उनके नाम आकुलि और किलात थे। इस बीच उन्होंने अनेक कष्टों को झेला था।

नोट:—'जिनने' शब्द का प्रयोग खड़ी बोली के अनुसार अशुद्ध है। 'जिन्होंने' होना चाहिए। छंद के अनुरोध से कवि-स्वातंत्र्य की दृष्टि से ही इसे क्षम्य कहा जा सकता है।

देख देखकर—व्याकुल—तरसना। आमिष लोलुप—मांस-प्रिय। रसना—जिह्वा। कुछ कहना—खाने की लालसा प्रकट करना।

अर्थ—मनु के पशु को जब वे बार-बार देखते तो उनकी मांस-प्रिय जिह्वा चंचल हो उठती और तरसने लगती और तब उस पशु को खाने की लालसा उनकी आँखों में झलकती।

क्यों किलात—तृण—पत्ते जड़ें आदि। लहू का घूँट पीना—क्षोभ से मन मारे बैठे रहना।

अर्थ—आकुलि बोला: क्यों किलात, पत्ते जड़ें आदि चबाकर मैं

कब तक जीवित रहूँ और कब तक इस पशु को जीता देख कर खून के घूँट पीता रहूँ—क्षोभ से मन मारे बैठा रहूँ ?

पृष्ठ ११२

क्या कोई इसका—उपाय—ढंग। सुख की बीन बजाना—बिना किसी बाधा के सब का उपभोग करना।

अर्थ—क्या कोई भी ऐसा ढंग नहीं निकल सकता जिससे इस पशु को मैं खा सकूँ ? यदि मांस खाने को मिल जाता तो बहुत दिनों के उपरांत एक बार तो चैन की वंशी बजा लेता—इच्छा की तृप्ति हो जाती।

आकुलि ने तब कहा—मृदुलता—कोमल स्वभाव की। ममता—अपनत्व की भावना से पूर्ण। छाया—रक्षा करने वाली।

अर्थ—आकुलि ने उत्तर दिया : क्या तुम्हें इतना नहीं सूझता कि उस पशु के साथ उसकी रक्षा करने वाली कोमल स्वभाव की एक ममतामयी रमणी (श्रद्धा) हँसती हुई बराबर रहती है ?

नोट—यह उत्तर किलात की ओर से होना चाहिए।

अंधकार को दूर—आलोक—प्रकाश। माया—छल। बिंधना—वेधना, छेदा जाना, नष्ट होना।

अर्थ—जैसे प्रकाश की किरण अंधकार को मिटाती और हल्की बदली को वेध देती है, उसी प्रकार मेरा छल उसके सामने नष्ट हो जाता है, चलता नहीं है।

तो भी चलो आज—स्वस्थ—शांत। सहज—स्वाभाविक रूप से।

अर्थ—तब भी चलो। आज इस पशु की हत्या के लिए जब तक मैं कुछ करके न दिखाऊँगा, तब तक हृदय को शांति न मिलेगी। इस सम्बन्ध में सभी प्रकार के सुख दुःखों को मैं स्वाभाविक रूप से अंगीकार करूँगा।

यों ही दोनों—विचार—निश्चय। कुंज—लता गृह। सोचना—

तर्क वितर्क करना। मन से—तल्लीनता से, सच्ची भावना से।

अर्थ—आकुलि और किलात इस प्रकार का निश्चय कर उस लतागृह के द्वार पर आये जिसके भीतर बैठे मनु तल्लीनता से तर्क-वितर्क कर रहे थे।

पृष्ठ ११३

कर्म यज्ञ से जीवन—कर्म यज्ञ—यज्ञ क्रिया। सपनों का स्वर्ग—मधुर कामनाएँ। विपिन—वन, सूना स्थान। मानस सरोवर, मन। कुसुम—फूल।

अर्थ—यज्ञ क्रिया से मेरे जीवन की मधुर कामनायें फलवती होंगी। जैसे वन में स्थित सरोवर में फूल खिलते हैं, वैसे ही इस सूने स्थान में मेरे मन की आशा भी खिलेगी।

वि०—देवताओं में 'अहं' भावना की यद्यपि प्रधानता थी, पर यज्ञ-कर्म और उसके सुफल में वे विश्वास करते थे।

किन्तु बनेगा कौन—पुरोहित—आचार्य। प्रश्न—समस्या। विधान—पद्धति, विधि, प्रणाली।

अर्थ—पर एक नवीन समस्या अब यह उठ खड़ी हुई कि इस यज्ञ में आचार्य का काम कौन करेगा? किस पद्धति का अनुसरण होगा? किस ढंग से अन्त तक इसका निर्वाह होगा?

वि०—कर्मकांड की प्रथा और प्रणाली को उस प्रकार के कर्म कराने वाले पंडित ही जानते हैं।

श्रद्धा पुण्य प्राप्य—पुण्य प्राप्य—किसी पुण्य कर्म के फल स्वरूप प्राप्त। अनंत अभिलाषा—सभी इच्छाएँ जिसमें केन्द्रीभूत हैं। निर्जन—जन हीन।

अर्थ—श्रद्धा को अपने किसी पुण्य फल के बल पर ही मैंने प्राप्त किया है। वह मेरी अगणित अभिलाषाओं की सजीव प्रतिमा है। अतः उसे तो आचार्य के आसन पर मैं बिठा नहीं सकता। और यह

भूमि प्राणी-हीन है। ऐसी दशा में क्या आशा लेकर मैं किसी अन्य को खोजने निकलूँ।

पृष्ठ ११४

कहा असुर मित्रों ने—असुर मित्र—आकुलि और किलात। गम्भीर बनाये—गम्भीरता का भाव धारण करते हुए। जिनके लिए—जिनकी प्रसन्नता के लिए।

अर्थ—इसी समय मुख पर गम्भीरता का भाव लाते हुए आकुलि और किलात ने कहा : तुम जिन्हें प्रसन्न करने के लिये यज्ञ करना चाहते हो, हमें उन्हीं ने भेजा है।

यजन करोगे क्या—यजन—यज्ञ। आशा—प्रतीक्षा।

अर्थ—क्या तुम यज्ञ करोगे? जब हम उपस्थित हैं तब अब और किसे खोजते हो? 'आचार्य की प्रतीक्षा में तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ है, यह हमें विदित है।

इस जगती के—प्रतिनिधि—लोक में भगवान के स्थानापन्न। निशीथ—रात। सवेरा—प्रभात, यहाँ दिन से तात्पर्य है। मित्र—सूर्य। वरुण—चन्द्रमा।

अर्थ—इस लोक में सूर्य और चन्द्रमा भगवान के प्रतिनिध हैं। सूर्य के कारण दिन होता है। प्रकाश इसी सूर्य का प्रतिबिंब है। चन्द्रमा के कारण रात होती है और अंधकार इसी चन्द्रमा को छाया है।

वे ही पथ दर्शक—विधि—पद्धति, विधान, यज्ञ की क्रिया। वेदी—यज्ञ कर्म के लिए तैयार की हुई मिट्टी या नदी की बालू की वह भूमि जिस पर अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है। ज्वाला—अग्नि। फेरी—चक्कर।

अर्थ—वे ही सूर्य चन्द्र हमारे पथ-प्रदर्शक बनें। मुझे आशा है कि जिस विधि (पद्धति) से हम यज्ञ करावेंगे, वह सफल होगी। उठो, आज फिर एक बार यज्ञ-स्थल में अग्नि की लपटें उठें।

पृष्ठ ११५

परंपरागत कर्मों की—परंपरागत—पुरुखाओं से होकर वंशजों तक आने वाली कोई बात। कर्मों—यज्ञों। लड़ियाँ—लड़ी, तार, शृंखला। जीवन साधन—जीवन व्यतीत होना।

अर्थ—मनु सोचने लगे: हमारे पुरुखाओं, उनके वंशजों और फिर इसी प्रकार उनकी संतानों द्वारा होने वाले यज्ञों की एक सुन्दर लड़ी सी बन गई है। इन यज्ञों को दृष्टि में रखते हुए अनेक सुख के पलों से युक्त देवताओं का जीवन व्यतीत हुआ।

जिनमें है प्रेरणामयी—प्रेरणा—स्फूर्ति। (Inspiration)। संचित—एकत्र। कृतियाँ—मर्म। पुलकभरी—रोमांचित करने वाली। मादक—मस्तीभरी, नशीली।

अर्थ—इन्हीं यज्ञों से अनेक कर्मों की प्रेरणा देवताओं ने पाई। उन बातों की नशीली स्मृति जगते ही आज भी शरीर रोमांचित हो उठता है और एक प्रकार का सुख सा मिलता है।

साधारण से कुछ—साधारण—विशेषता-विहीन। अतिरंजित—चमत्कारपूर्ण। गति—जीवन की मन्द गति में, कठिनाई से कटने वाले जीवन में। त्वरा—तीव्रता।

अर्थ—यज्ञ करने से जीवन की मन्थर गति में एक तीव्रता और उत्पन्न होगी। इस प्रकार विशेषताविहीन पलों में चमत्कार भर जायगा। एक उत्सव होगा और इस निर्जन प्रदेश में जो चारों ओर उदासी छाई है वह दूर हो जायगी।

एक विशेष प्रकार—विशेष प्रकार—विलक्षण। कुतूहल—आश्चर्य। नाच उठा—थिरक उठा। नूतनता—नवीन घटनाओं का। लोभी—प्रेमी।

अर्थ—श्रद्धा के लिए तो यज्ञ एक विलक्षण आश्चर्य की वस्तु

होगा। यह सोचकर मनु का मन जो जीवन में नित्य नवीन घटनाओं का प्रेमी था, प्रसन्नता से थिरक उठा।

पृष्ठ ११६

यज्ञ समाप्त हो चुका—समाप्त—पूर्ण। दारुण—भयंकर। रुधिर—रक्त, खून। अस्थि—हड्डी। माला—समूह, ढेर।

अर्थ—*यज्ञ तो पूर्ण हो गया, पर वेदी पर अग्नि अब भी धक् धक्* शब्द करती जल रही थी। यज्ञ-भूमि का दृश्य बड़ा भयंकर था। कहीं रक्त के छींटे पड़े थे, कहीं हड्डियों के टुकड़ों का ढेर!

वेदी की निर्मम प्रसन्नता—वेदी—वेदी के आसपास अधिष्ठित व्यक्तियों। निर्मम—बलि कर्म से उत्पन्न। कातर—दीन, कराह से भरी। कुत्सित—घिनौना।

अर्थ—वेदी के आसपास बैठे मनु और असुर पुरोहित बलि का निर्दय कर्म करके प्रसन्न थे। जिस पशु का गला काटा गया था वह थोड़ी देर दीन वाणी में कराहा था। सब मिलकर वहाँ के वातावरण से हृदय में वैसी ही बीभत्स-भावना भर जाती थी जैसे किसी घिनौने व्यक्ति को देखकर जी घबरा उठता है।

सोमपात्र भी भरा—पुरोडाश—पिसे चावलों का बना यज्ञ का प्रसाद। सुप्त—दबे हुए। भाव—अहं और अधिकार की भावना।

अर्थ—पानपात्र में सोमरस भरा था और यज्ञ का प्रसाद भी मनु के आगे रखा था। परन्तु श्रद्धा वहाँ पर उपस्थित न थी। यह देखकर मनु के हृदय में अहंकार और अधिकार के वे भाव जो दबे पड़े थे, फिर उभर आये।

वि०—पुरोडाश—प्राचीन काल में चावलों को पीस कर एक टिकिया बनाई जाती थी जिसकी आहुतियाँ यज्ञ में दी जाती थीं। जो अंश बच रहता था उसे प्रसाद स्वरूप उपस्थित प्राणियों में थोड़ा-थोड़ा बाँट देते थे। पुरोडाश के संबंध में कहीं-कहीं ऐसा भी

उल्लेख है कि जौ के आटे को पीस कर टिकिया तैयार की जाती थी और उसे कपाल में पकाते थे !

जिसका था उल्लास—जिसका—श्रद्धा का। उल्लास—प्रसन्नता। अलग जा बैठना—भाग न लेना। दृप्त वासना—अहं भावना। लगी गरजने—तीव्रता पकड़ गई। ऐंठना—अप्रसन्न होना।

अर्थ—इस यज्ञ से जिसे मैं प्रसन्न देखना चाहता था उसने तो इसमें भाग लिया नहीं। फिर इस सारे बखेड़े से लाभ क्या ? ऐसा सोचते ही मनु अप्रसन्न हो उठे और उनकी अहं-भावना तीव्रता पकड़ गई।

पृष्ठ ११७

जिसमें जीवन का—संचित—केन्द्रीभूत, समस्त। मूर्त्त—साकार होना, प्रतिमा।

अर्थ—जो श्रद्धा मेरे जीवन के सारे सुखों की सुन्दर प्रतिमा है, उसी के ऐसे रूखे व्यवहार पर मैं जी भर कर कैसे कहूँ कि वह मेरी है।

वही प्रसन्न नहीं—वही श्रद्धा। रहस्य—भेद। सुनिहित—गहराई में छिपा। बाधक—विघ्न स्वरूप।

अर्थ—जिसे मैं इस यज्ञ से प्रसन्न करना चाहता था वही अप्रसन्न है। तब अवश्य इसमें कोई गहरा भेद छिपा है। जिस पशु ने अपने जीते जी श्रद्धा के समस्त प्रेम को मुझे न भोगने दिया, क्या वह आज मर कर भी मेरे सुख में विघ्न डालेगा ?

श्रद्धा रूठ गई—अर्थ—श्रद्धा रूठ गई है। क्या उसे मनाना पड़ेगा ? या वह स्वयं मान जायगा ? इन दोनों बातों में से मैं किसे पकड़े रहूँ ?—उसे मनाने जाऊँ अथवा जब तक वह स्वयं अपनी अप्रसन्नता का परित्याग न करदे तब तक उसकी प्रतीक्षा करता रहूँ ?

पुरोडाश के साथ—प्रसाद के लिए अंश—हृदय की अभाव भावना।

अर्थ—मनु यज्ञ के प्रसाद के साथ सोम रस पीने लगे। इस प्रकार

वे श्रद्धा की अप्रसन्नता से उत्पन्न हृदय के अभाव को नशे से पूरा करने लगे।

संध्या की धूसर—धूसर—धुँधली, मलिन। छाया—अंधकार। शैल शृंग—पर्वत की चोटी। रेख—कोना। शशिलेखा—चंद्रमा की कला।

अर्थ—संध्या के मलिन अंधकार में पर्वत की चोटी की नोक कांति-हीन चंद्रमा की कला को अपने ऊपर धारण किए दूर आकाश में स्थित (उठी हुई) थी।

पृष्ठ ११८

श्रद्धा अपनी शयन—शयन गुहा—विश्राम करने की गुफ़ा। बोझ सी—असहनीय।

अर्थ—श्रद्धा अपनी विश्राम-गुहा में दुःखी होकर लौट आयी। यज्ञस्थल में उसने बलि-पशु की कातर ध्वनि सुनि थी, इससे उसे यज्ञ और मनु के प्रति बड़ी भारी विरक्ति उत्पन्न हुई। उस विरक्ति का असहनीय भार-सा ढोती हुई वह मन ही मन रो उठी।

सूखी काष्ठ संधि—काष्ठ संधि—लकड़ियों के बीच में। शिखा—लौ। आभा—हल्का प्रकाश। तामस—अंधकार। छलती—कम करती।

अर्थ—सूखी लकड़ियों के बीच में आग की एक पतली लौ उठ खड़ी हुई थी जो अपने हल्के प्रकाश के उस धुँधली गुहा के अंधकार को कम कर रही थी।

किंतु कभी बुझ जाती—शीत—ठंढे। कौन रोके—जलने बुझने में स्वतंत्र थी।

अर्थ—किंतु कभी शीत पवन का झोंका आता तो वह बुझ जाती थी और कभी हवा के चलने से फिर जल भी उठती थी। इस प्रकार जलने बुझने में वह परम स्वतंत्र थी।

कामायनी पड़ी थी—कामायनी—श्रद्धा का दूसरा नाम। चर्म—पशु का चमड़ा। विश्राम करना—लेटकर थकावट दूर करना।

अर्थ—श्रद्धा किसी पशु का कोमल चर्म बिछा कर लेटी हुई थी। ऐसा लगता था मानो आज श्रम ही हल्के आलस्य में आ लेटकर थकावट दूर कर रहा है।

धीरे धीरे जगत—जगत-प्रकृति। ऋजु—सरल। विधु—चंद्रमा।

अर्थ—प्रकृति धीरे धीरे सरल गति से अपने विकास-पथ पर अग्रसर थी। एक-एक करके तारे खिलने लगे और चंद्रमा के रथ में हरिण जुत गए।

वि०—प्रकृति का नित्य का काम निश्चित सा है। ठीक समय पर सूर्य, नक्षत्र, चंद्रमा उगते हैं। ठीक समय पर ऋतुओं का आगमन होता है। यह सब देखकर यही कहा जा सकता है कि उसका पथ ऋजु है।

पृष्ठ ११९

अंचल लटकाती—निशीथनी—रात, रजनी। ज्योत्स्नाशाली—चाँदनी का। छाया—आश्रय। सृष्टि—संसार। वेदना वाली—पीड़ित, व्यथित, दुखी।

अर्थ—रजनी ने चाँदनी के उस लम्बे अंचल को लटका दिया जिसके आश्रय में दुःखी जगत को सुख मिलता है।

उच्च शैल शिखरों—उच्च—ऊँची। शैल शिखर—पर्वत की चोटियों।

अर्थ—पर्वत की ऊँची चोटियों पर चंचल प्रकृति-किशोरी हँस रही थी। उसका उज्ज्वल हास्य ही तो बिखर कर मधुर चाँदनी के रूप में फैल गया था।

वि०—चाँदनी को सर्वत्र छिटकते देख कवि कल्पना करता है कि प्रकृति-बाला अदृश्य रूप से आकाश में कहीं बैठी मुस्करा रही है। कैसी रम्य कल्पना है!

जीवन की उद्दाम—जीवन—यौवन काल की। उद्दाम—दुर्दमनीय। लालसा—वासना। उलझी—लिपटी। तीव्र—विकट, उत्कट उन्माद—आवेश।

अर्थ—श्रद्धा के हृदय में यौवन काल की दुर्दमनीय वासना उमड़ रही थी, जो लज्जा के कारण खुल न पाती थी। इस समय वह उत्कट आवेशमयी हो रही थी और उसके मन को ऐसी पीड़ा पहुँच रही थी जिससे उसे लगता था जैसे उसके हृदय को कोई मथे डालता है।

मधुर विरक्तिभरी—विरक्ति—उदासीनता, अनुराग का अभाव। आकुलता—पीड़ा। अंतर्दाह—अंतर्जलन, आग, आंतरिक व्यथा।

अर्थ—उसके हृदयाकाश में ऐसी पीड़ा छाई जिसमें एक प्रकार की मधुर उदासीनता की भावना मिश्रित थी। इतना होने पर भी उसके मन में मनु के लिये प्रेम की अंतर्जलन (आग) भी शेष थी।

वि०—'मेघ' शब्द का प्रयोग न होने से इस छंद का सौंदर्य प्रच्छन्न ही रह गया है, पर चित्र एकदम स्पष्ट है। आकुलता का मन में घिरना, बादल का आकाश में घिरना समझिये। नहीं तो हृदय-गगन की कोई सार्थकता नहीं। बादलों में जल की शीतलता और विद्युत की जलन होती है। तीसरी पंक्ति में प्रेम की अन्तर्जलन और स्नेह का जल दोनों विद्यमान हैं।

वे असहाय नयन—असहाय—विवश, जो कुछ कर न सकें। भीषणता में—भीषण दृश्य की कल्पना करके। पात्र—अधिकारी। कुटिल—दुष्ट, यहाँ दुष्टता। कटुता—खिन्नता।

अर्थ—एक प्रकार की विवशता की भावना लिये हुए श्रद्धा कभी अपनी आँखें खोल देती और पशु की हत्या के भीषण दृश्य की जैसे ही मन में कल्पना उठती तो फिर उन्हें बन्द कर लेती थी। मनु जो उसके स्नेह का अधिकारी था, स्पष्ट ही आज ऐसी दुष्टता कर बैठा जिससे श्रद्धा के हृदय में उसके प्रति खिन्नता उत्पन्न होगई।

वि०—स्मरण रखना चाहिये यह वही पशु था जिसे श्रद्धा बहुत प्यार करती थी।

× × × ×

पृष्ठ १२०

कितना दुःख जिसे—चाहूँ—प्रेम करूँ। कुछ और—धारणाओं के प्रतिकूल। मानस—मन में। चित्र—कल्पना। सपना—झूठ।

अर्थ—कितने दुःख की बात है कि जिसे मैं प्रेम करती हूँ वह मेरी धारणाओं के प्रतिकूल सिद्ध हुआ। इस व्यक्ति के संबन्ध में मैंने अपने मन में जो सुन्दर कल्पना की थी वह झूठ निकली।

जाग उठी है—जगना—लगना। दारुण—भयंकर। अनन्त—अक्षय, स्थायी। मधुवन—वसंत ऋतु का हरा भरा कानन यहाँ सुख से तात्पर्य है। नीरव—शांत, सूने। निर्जन—जनहीन।

अर्थ—मैं अपने जीवन के सुख को अक्षय वसंत-वन के समान समझती थी। इस व्यक्ति के कुटिल व्यवहार से उसमें आज आग प्रज्ज्वलित हो गई है। जैसे सूने जनहीन प्रदेश में चिल्लाने से भी कोई आग बुझाने नहीं आ सकता, उसी प्रकार यहाँ कोई भी तो ऐसा नहीं जो यह उपाय सुझावे कि मेरा मन जो उसकी ओर से क्षुब्ध हो उठा है अब कैसे शांत होगा?

यह अनंत अवकाश—अनन्त—सीमाहीन! अवकाश—पृथ्वी और आकाश के बीच का सूना स्थान, अंतरिक्ष, यहाँ संसार से तात्पर्य है। नीड़—घोंसला। व्यथित बसेरा—किसी के रहने का वह स्थान जिसमें शान्ति न हो। अलस—आलस्य, थकावट। सवेरा—लालिमा।

अर्थ—जो वेदना इस सीमाहीन अंतरिक्ष (सृष्टि) के घोंसलों में सभी कहीं समाकर उसकी शान्ति नष्ट कर रही है वही आज मेरी पलकों में थकावट और लाली भर कर सजग (तीव्र) हो उठी है। भाव यह

कि बड़ी गहरी व्यथा का अनुभव आज मैं कर रही हूँ और मेरी आँखें जगते-जगते लाल हो उठी हैं, साथ ही दुख रही हैं।]

काँप रहे हैं—काँपना—थर्राना, किसी आतंक से सिहर उठना। चरण—हिलोरें। विस्तृत—चारों ओर, विराट्। नीरवता—सन्नाटा। घुलना—छाना।

अर्थ—पवन की हिलोरें थर्रा उठी हैं। चारों ओर सन्नाटा है। सभी दिशाओं से एक प्रकार का म्लान उदास वातावरण घिर कर आकाश को छा रहा है।

पृष्ठ १२१

अंतरतम की प्यास—अंतरतम—मन। विकलता—छटपटाहट। अवलंबन—सहारा। चढ़ना—तीव्र होना।

अर्थ—मन प्यार पाने को प्यासा है। उसके न मिलने से उसमें छटपटाहट समा गई है। अतः वह पिपासा और बढ़ गई है। ऐसा लगता है जैसे मैं तो युग-युग से प्रेम में असफल होती आई हूँ और इस विचार का सहारा पाकर यह प्यास और भी तीव्र हो उठी है।

विश्व विपुल आतंक—विपुल—अत्यधिक। आतंकत्रस्त—भय से काँपना। ताप—पीड़ा। विषम—भयंकर। घनी नीलिमा—नभ का नीलापन। अंतर्दाह—अंतर्जलन। परम—भारी।

अर्थ—संसार में जिस भयंकर पीड़ा का अनुभव करना पड़ रहा है, उससे यह अत्यधिक भयभीत हो उठा है, काँप उठा है। यह नीला आकाश नहीं है, जगत की भारी अन्तर्जलन का धुंआ फैलकर घनीभूत हो गया है।

वि०—'घनी नीलिमा' का अर्थ जीवन के पक्ष में घोर निराशा का भी है। भाव यह है कि आंतरिक जलन से निराशा का घना अंधकार भी आँखों के आगे फैल रहा है।

उद्वेलित है उदधि—उद्वेलित—अशांत। लोटना—करवट बद-

लना। चक्रवाल—कभी-कभी चन्द्रमा के चारों ओर धुँधले प्रकाश का एक घेरा छा जाता है जिसे चक्रवाल या परिवेश कहते हैं ; गाँवों में इसी को 'पारस' बैठना कहते हैं।

अर्थ—समुद्र अशांत है और लहरें व्याकुलता से करवट बदल रही हैं। ऊपर देखती हूँ तो आकाश में चन्द्रमा के चारों ओर जो प्रकाश का धुँधला गोलक है वह अपनी ही आग से जैसे झुलसा जा रहा है।

सघन धूम कुंडल—सघन—घना। धूम-कुँडल—धुँए का चक्र। तिमिर—अंधकार। फणी—सर्प।

अर्थ—नीले आकाश में ताराओं का समूह ऐसा लगता है जैसे धुँए के घने चक्र में अग्नि-कण उड़ रहे हों या फिर अंधकार के सर्प ने अपनी मणियों की माला धारण की हो।

वि०—यहाँ आकाश की समता (१) धूम्रकुंडली तथा (२) अंधकार के सर्प से की गई है, साथ ही ताराओं के लिये भी दो उपमान लाए हैं (१) अग्नि-कण (२) मणियाँ। सर्प से तात्पर्य यहाँ शेष-नाग का लेना चाहिये क्योंकि इतनी अधिक मणियाँ केवल उन्हीं के सहस्र शीशों में संभव हैं।

जगतीतल का—क्रंदन—रोना। विषमयी—दुःखदायी। विषमता—असमानता, कभी कुछ कभी कुछ। अन्तरंग—छिपा हुआ। दारुण—भयंकर। निर्ममता—निर्दयता।

अर्थ—इस दुःखमयी असमानता के कारण कि सुख सदैव नहीं मिलता और किसी भी व्यक्ति का व्यवहार सदा एक सा नहीं रहता, संसार में सब कहीं रोना ही रोना है। मनुष्य ऊपर से भला प्रतीत होता है, पर भीतर उसके छल भरा है; अतः जिस दिन उसकी अतिशय भयंकर निर्दयता से परिचय होता है, उस दिन वह व्यवहार कलेजे में चुभ जाता है।

पृष्ठ १२२

जीवन के वे निष्ठुर—निष्ठुर दंशन—निर्दय व्यवहारों की चोट।

आतुर—घबरा देने वाली। कलुप-चक्र—पाप कर्म। आँखों की क्रीड़ा—आँखों के सामने निरन्तर बने रहने की क्रिया।

अर्थ—जीवन में उन निर्दय व्यवहारों की चोट से जो घबरा देने वाली पीड़ा मिलती है, वह आँखों के सामने पाप-कर्म के समान निरंतर घूमती रहती है।

वि०—सुनते हैं पापी की आँखों के सामने उसका पाप-कर्म निरंतर चक्कर काटता रहता है और इसी से उसे सोते जागते कभी चैन नहीं मिलता। निष्ठुर व्यवहार की चोट भी ऐसी ही बेचैन करने वाली होती है।

स्खलन चेतना के—स्खलन—असावधानी। चेतना—बुद्धि। कौशल—चतुरा। बिंदु—छोटी सी घटना। विषाद—शोक। नद—नदी।

अर्थ—चतुरा बुद्धि से जब किसी प्रकार की असावधानी हो जाती है तब उसी का नाम भूल पड़ जाता है। और भूल की किसी भी छोटी सी घटना से शोक की सरितायें उमड़ने लगती हैं।

आह वही अपराध—अपराध—दोप। माया—चिह्न। वर्जित—वंचित रहना। मादकता—सुख से। संचित—एकत्र। तम—निराशा।

अर्थ—संसार में भूल दुर्बलता का चिह्न है। उसकी गणना अपराधों में होती है। भूल करते ही संसार के सुख से हम वंचित रहते हैं और जीवन में निराशा की छाया एकत्र हो जाती है।

नील गरल से भरा—गरल—विष, हलाहल। कपाल—खप्पर। निमीलित—टिमटिमाती।

अर्थ—हे प्रभु, यह चन्द्रमा तुम्हारे हाथ का खप्पर है और इसके अन्तर की श्यामता इसके भीतर भरा नील हलाहल। आकाश की टिमटिमाती ये तारिकायें जो शान्ति की वर्षा सी कर रही हैं, तुम्हारी पुतलियों में समाई हुई शान्ति का परिचय दे रही हैं।

वि०—यद्यपि यहाँ स्पष्ट नाम नहीं लिखा, पर वर्णन से ही स्पष्ट है कि भगवान शिव को सम्बोधन करके कहा जा रहा है।

अखिल विश्व का—अखिल—समस्त। विप—पाप और ताप का हलाहल। अमर—शाश्वत, चिरंतन, सदा रहने वाली।

अर्थ—तुम्हारे सम्बन्ध में जो यह प्रसिद्ध है कि तुम विपपान करते हो, वह वास्तव में संसार भर की पीड़ा का विप है। सृष्टि इस पीड़ा और पाप के कारण जीवित नहीं रह सकती थी पर उन्हें तुमने अंगीकार कर लिया है, इसी से वह नवीन रूप से जी उठी है। पर मैं यह पूछना चाहती हूँ कि यह शाश्वत शान्ति तुम किस दिशा से प्राप्त करते हो?

वि०—विप पीने वाला तो अशान्त रहना चाहिये, पर शिव हलाहल पान करके भी शान्त हैं, यही आश्चर्य है

पृष्ठ १२३

अचल अनंत नील—अचल—अडिग। श्रमकण—पसीने की बूँदें।

अर्थ—यह नीला आकाश समुद्र की अनन्त नीली लहरों के समूह सा प्रतीत होता है। इस पर अडिग आसन जमाए तुम बैठे हो। हे प्रभु, तारे जिसके शरीर से भारी पसीने की बूंदों से प्रतीत होते हैं, ऐसे तुम कौन हो?

वि०—आकाश में शिव की मूर्ति सामान्य दृष्टि को कहीं दिखाई नहीं देती, पर तारों को शरीर के श्रमकण मान उनके वहीं कहीं ध्यानस्थ बैठे रहने का अनुमान कर लिया है।

इन चरणों में—इन—तुम्हारे। छायापथ—आकाश गंगा।

अर्थ—आकाश-गंगा में पथिकों के समान भ्रमण करने वाले अनंत तारे जो अनेक लोक हैं, क्या तुम्हारे चरणों में अपने कर्म-सुमन की अंजलि चढ़ाने आरहे हैं और निरन्तर चलते-चलते थक गए हैं?

किंतु कहाँ वह—दुर्लभ—कठिनाई से प्राप्त होने वाली। नित्य-प्रति दिन आने वाला।

अर्थ—परन्तु कठिनाई से प्राप्त होने वाली तुम्हारी इतनी स्वीकृति उन्हें कहाँ मिलती है कि वे चरण-वंदन कर सकें! वे निराश करके उसी प्रकार लौटा दिए जाते हैं जैसे प्रतिदिन माँगने वाला भिखारी द्वार से लौटा दिया जाता है।

वि०—विज्ञान ने सिद्ध किया है कि आकाश गंगा में पड़ने वाले सटे-से अनंत तारे अनंत लोक हैं, यहाँ तक कि उनके सूर्य चंद्र भी भिन्न हैं। वे निरंतर चक्कर काटते हैं और आकर्षण से खिंचे अधर में स्थित हैं। इसी सत्य का उपयोग कवि ने कैसे विलक्षण रस के साथ किया है!

प्रखर विनाशशील—प्रखर—तीव्र। विनाशशील—टूटना-फूटना। नर्तन—चक्कर। विपुल—विराट्। माया—रहस्य। उसकी—सृष्टि की।

अर्थ—सृष्टि का रहस्य यह है कि चक्कर काटता हुआ यह विराट् ब्रह्मांड यद्यपि तीव्रता से यहाँ वहाँ से टूट-फूट रहा है, पर इससे उसका शरीर पल पल में नवीन रूप धारण करके प्रकट हो रहा है।

वि०—विज्ञान के अनुसार अनंत लोक बनते बिगड़ते हैं, पर सृष्टि विकास की ओर ही जा रही है।

सदा पूर्णता पाने—पूर्णता—सुधार, त्रुटिहीनता (Perfection)।

अर्थ—भूल सभी से क्या इसलिए होती है कि उसका सुधार कर वे भविष्य में पूर्ण बनें? अपना जीवन पूरा करके जो मृत्यु को प्राप्त होते हैं वह क्या इसलिये कि फिर नवीन जन्म लेकर नवीन यौवन मिले?

पृष्ठ १२४

यह व्यापार महा—व्यापार—सृष्टि। महा गतिशाली—निरंतर चक्कर काटता हुआ। अचलता—स्थित। क्षणिक विनाशों—पल पल पर नाशवान्। स्थिर—स्थायी। मंगल—कल्याण। चुपके—छिपा हुआ है। हँसता—झिलमिलाता।

अर्थ—यह ब्रह्मांड जो निरंतर चक्कर काट रहा है, क्या कहीं स्थित

नहीं है ? क्या पल-पल पर नाशवान् इस सृष्टि में छिपा हुआ मंगल स्थायी रूप से झलमलाता (व्याप्त) रहता है ?

वि०—हिन्दू दार्शनिकों के दो निर्णय हैं (१) संसार परिवर्तनशील है (२) क्योंकि कण कण में प्रभु व्याप्त हैं, अतः नश्वर होने पर भी सृष्टि आनंदमय है।

यह विराग संबंध—विराग—अप्रेम। मानवता—मानव धर्म। निर्ममता—निर्दयता।

अर्थ—मनुष्य अपने हृदय में दूसरों के प्रति अप्रेम पोषित कर रहा है। क्या यही मानव-धर्म है ? शोक की बात है कि प्राणी के मन में प्राणी के लिए केवल निर्दयता शेष रह गई है।

वि०—इस बात को विस्मरण न कर देना चाहिए कि श्रद्धा अपने प्रिय पशु के प्रति मनु की निर्ममता का ध्यान करके निर्णय दे रही है।

जीवन का संतोष—संतोष—तृप्ति की भावना। रोदन—रोने की क्रिया। हँसना—पूर्ण रूप से। विश्राम—रुकावट। प्रगति—उन्नति। परिकर—कटिवस्त्र।

अर्थ—ऐसा क्यों है कि एक व्यक्ति तब तक पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं होता, जब तक दूसरे को रुला न ले ? और क्यों हमारे जीवन की प्रत्येक रुकावट उन्नति को वैसे ही बाँधे रखती है जैसे कटिवस्त्र कमर को कसे रहता है ?

दुर्व्यवहार एक का—दुर्व्यवहार—कटु व्यवहार। गरल—कटुता। अमृत—मधुरता।

अर्थ—और एक व्यक्ति के कटु व्यवहार को दूसरा व्यक्ति कैसे भुला देगा ? जो विष को अमृत कर दे अर्थात् तीखी कटुता को मधुरता में परिणत कर दे, ऐसा कोई उपाय नहीं है।

पृष्ठ १२५

जाग उठी थी—तरल—चंचल। मादकता—नशा।

मनु के हृदय में चंचल वासना फिर जाग्रत हुई। यज्ञ की समाप्ति पर उन्होंने जो सोमरस का पान किया था उसके नशे का प्रभाव भी सम्मिलित था। आवेश की ऐसी दशा में उन्हें श्रद्धा के पास आने से कौन रोक सकता था ?

खुले मसृण भुज—मसृण—चिकने। भुजमूल—कंधे। आमंत्रण—अपने पास बुलाना। उन्नत—उठे हुए। वक्ष—उरोज। सुख लहरों—आनंद के भाव।

अर्थ—श्रद्धा के चिकने खुले कंधों में इतना भारी आकर्षण था मानों वे सामने खड़े व्यक्ति को अपने निकट आने के लिए बुलाते हों और उसके उठे सरोज सुख की लहरियाँ हृदय में जगाते आलिंगन करने को विवश करते थे।

नीचा हो उठता—निश्वास—साँस का बाहर फेंकना। जीवन—जल और जीवित रहने की क्रिया दोनों। ज्वार—समुद्र की लहरों का चढ़ाव। हिमकर—चन्द्रमा और मुख। हास—चाँदनी और उज्ज्वलता।

अर्थ—कामायनी के उरोज थोड़े नीचे होकर साँस फेंकने से साथ ऊपर को उठ जाते थे। जैसे चंद्रमा की चाँदनी को छूकर समुद्र के जल में बाढ़ आती है, उसी प्रकार उसके चंद्र-मुख के प्रकाश में वक्ष के ऊँचे-नीचे होने से ऐसा लगता था मानो उसके जीवन में भी (यौवन की) बाढ़ आई है।

जागृत था सौंदर्य—जाग्रत—खिला हुआ। चंद्रिका—चाँदनी। निशा—रात, यामिनी।

अर्थ—यद्यपि वह सुकुमारी सो रही थी पर उसका सौंदर्य खिल उठा था। जैसे यामिनी चाँदनी से युक्त होकर उजली लगती है, वैसे ही श्रद्धा नूर की चाँदनी में जगमगा रही थी।

वि०—सुन्दरी स्त्रियाँ सोती हुई और भी सुन्दर लगती हैं।

वे मांसल परमाणु—मांसल—मांस से युक्त, स्वस्थ भरी हुई। परमाणु—अंग, शरीर, देह। अलकों—केशों।

अर्थ—श्रद्धा का स्वस्थ शरीर जो किरण सा उजला था अपने प्रकाश की बिजली बिखेर रहा था। तात्पर्य यह कि उसकी उजली भरी देह को देखकर उत्तेजना उत्पन्न होती थी। उसके केशों की डोर में मनु के जीवन का कण-कण उलझ गया।

पृष्ठ १२६

विगत विचारों के—विगत थोड़ी देर पहले के। श्रमसीकर—पसीने की बूंदें। मंडल—गोल आकार का।

अर्थ—मुख पर पसीने की बूंदें थीं, मानो थोड़ी देर पहले जिन विचारों में वह मग्न थी उन्होंने ही वह रूप धारण कर लिया हो। जैसे मोतियों की माला कोई रमणी पिरोती है, उसी प्रकार उसके मुख की उन बूंदों को एक करुण-भावना गूँथ रही थी। भाव यह कि अपने प्यारे पशु की हत्या पर विचार करते-करते श्रद्धा सो गयी थी; अतः आनन पर उन विचारों की छाप-सी बनकर एक करुण-भावना झलक उठी थी।

छूते थे मनु—कंटकित—जैसे लता का कांटों से युक्त होना वैसे ही शरीर का रोमांचित होना। वेली—लता। स्वस्य—गहरी।

अर्थ—मनु जैसे जैसे उसे छूते थे वैसे वैसे लता के समान श्रद्धा रोमांचित हो रही थी। उसकी देह लता के समान फैली थी और उसके शरीर में गहरी व्यथा की लहरें उठ रही थीं।

वह पागल सुख—पागल—मस्त करने वाला। जगती का सुख—वासना या शरीर-भोग का सुख। विराट्—बड़े रूप में। मिश्रित—मिला हुआ।

अर्थ—वासना के नाम से प्रसिद्ध वह सांसारिक सुख जो व्यक्ति को पागल बना देता है, आज मनु के सामने बहुत बड़े रूप में आया। इस समय जहाँ ये दोनों प्राणी थे वहाँ हल्के प्रकाश और हल्के अन्धकार

का एक चँदोवा-सा छाया हुआ था अर्थात् वातावरण अत्यंत उत्तेजक और उपयुक्त था।

कामायनी जगी थी—चेतनता—सुध बुध। मनोभाव—मन के भाव। आकार—चिह्न। स्वयं—बिना प्रयत्न के।

अर्थ—कामायनी की नींद इस समय तक कुछ खुल गई थी और मनु के स्पर्श से वह स्वयं अपनी सुध-बुध खो बैठी। उसके मुख पर बिना प्रयास उसके मन के भावों का एक चिह्न अंकित होता, फिर मिट जाता, दूसरा चिह्न झलक उठता।

जिसके हृदय सदा—नाता—अधिकार, संबंध।

अर्थ—कुछ ऐसा होता है कि जिसे हम हृदय से निरंतर चाहते हैं, वही हमसे दूर भागता है और हम अप्रसन्न भी उसी से होते हैं, जिस पर हम अपना अधिकार समझते हैं।

वि०—यहाँ भर्तृहरि के वैराग्य-शतक की वह प्रसिद्ध पंक्ति स्वतः स्मरण हो आती है—

यां चिंतयामि सततं मयि सा विरक्ता।

पृष्ठ १२७

प्रिय को ठुकरा—प्रिय—जिसे हम प्यार करते हैं। माया—मोह। उलझा लेती—नहीं छोड़ती, बाँधे रखती है। प्रत्यावर्तन—लौटाना।

अर्थ—और यह भी सत्य है कि जिसे हम प्यार करते हैं उसे ठुकराने के उपरांत भी उसके प्रति मन में जो मोह होता है वह उसे छोड़ने नहीं देता। जैसे शिला से दूर फेंका हुआ जल फिर उसके चारों ओर घूमकर पहली दिशा में आ जाता है, उसी प्रकार प्रेम में दूर फेंका हुआ व्यक्ति कुछ क्षणों के उपरांत फिर अपनी पूर्व स्थिति प्राप्त करता है।

वि०—यह एक सहज परिचित प्राकृतिक व्यापार है कि जल की धारा किसी शिला-खण्ड से टकरा कर उसके चारों ओर चक्कर काटती रहती है।

जलदागम मारुत से—जलदागम—जब बादलों का आगमन हो अर्थात् वर्षा ऋतु। मारुत—वायु।

अर्थ—वर्षा ऋतु की वायु से काँपती हुई नवीन पत्ती के समान श्रद्धा की हथेली को मनु ने धीरे से अपने हाथ में ले लिया।

वि०—अत्यंत कोमल दृश्य-विधान को अंकित करने वाली ये पंक्तियाँ हैं। सभी जानते हैं कि वर्षा ऋतु की वायु गीली होती है, अतः पल्लव को छूते ही वह किंचित् भीग उठेगा। श्रद्धा की हथेली भी पसीज उठी थी और काँप रही थी। प्रेम में शरीर के अंग सिहर उठते हैं और पसीज भी। इन्हें रस की भाषा में 'कम्प' और 'प्रस्वेद' सात्विक कहते हैं। पर कवि ने अपनी बात किस सहज भाव से कही है, यही कला है।

अनुनय वाणी में—अनुनय—विनय, प्रार्थना, याचना। उपालंभ—शिकायत। मानवती—मानिनी। माया—मान।

अर्थ—उनकी वाणी यद्यपि याचना भरी थी, पर उनकी आँखों में उपालंभ के संकेत थे। मनु बोलेः हे मानिनी, तुम्हारा यह कैसा मान है?

स्वर्ग बनाया है—स्वर्ग—स्वर्गीय सुख। विफल—नष्ट। अप्सरा—सुन्दरी। नूतन—नवीन रूप में।

अर्थ—पृथ्वी पर जिस स्वर्गीय सुख की कल्पना मैंने की है, उसे न नष्ट करो। हे अप्सरा सी सुन्दरी रमणी, पिछले दिनों प्रेम की जो बातें तुमने कही थीं, उन्हें नवीन रूप देकर आज थोड़ा फिर गुनगुनाओ।

वि०—पृथ्वी को स्वर्ग मानने पर श्रद्धा को अप्सरा कहना उचित ही हुआ है।

इस निर्जन में—निर्जन—जनहीन प्रदेश। ज्योत्स्ना—चाँदनी। पुलकित—प्रसन्न, खिला हुआ।

अर्थ—चंद्रमा से युक्त आकाश के नीचे चाँदनी से खिले हुए इस जनहीन प्रदेश में मुझे और तुम्हें छोड़कर यहाँ और कौन है? ऐसे में

तुम सो रही हो, यह तो ठीक नहीं है। भाव यह है कि यह एकांत रम्य वातावरण प्रणय-चर्चा के लिए उपयुक्त है, सोकर समय नष्ट करने के लिए नहीं।

पृष्ठ १२८

आकर्षण से भरा—भोग्य—भोगने के लिए, सुख प्राप्त करने के लिए। जीवन—मनु श्रद्धा के जीवन। कूल—तट।

अर्थ—आकर्षण से सराबोर यह संसार हमारे भोग के लिए भगवान ने बनाया है। मैं चाहता हूँ कि मेरे और तुम्हारे दो जीवनों के तटों के बीच वासना की एक धार बहती रहे।

श्रम की इस अभाव—श्रम की—परिश्रम करने को बाध्य करने वाली। अभाव—इच्छाओं की अपूर्ति। आकुलता—दुःख। भीषण चेतनता—वह चेतना जो पीड़ा दे।

अर्थ—श्रम और अभावों से परिपूर्ण इस संसार, इसमें मिलने वाले सभी प्रकार के दुःखों को, साथ ही पीड़ा देने वाली अपनी चेतना को, जिस क्षण हम भुला सकें—

वि०—'प्रसाद' दुःखों से छुटकारा पाने का सबसे सरल उपाय यह समझते हैं कि किसी प्रकार हृदय से चेतना-शक्ति लुप्त हो जाय। यह बात उन्होंने मनु के मुख से 'चिंता' सर्ग में भी कहलाई है—

चेतनता चल जा, जड़ता से आज शून्य मेरा भर दे।

नोट :—भाव आगे के छंद में पूर्ण होगा।

वही स्वर्ग की—स्वर्ग—विलक्षण सुख। अनंत अक्षय। मुसक्यान—प्रसन्नता भरना। दो बूंद—प्रेम की थोड़ी सी बूंदें

अर्थ—वही क्षण अक्षय स्वर्ग-सुख का सृजन कर जीवन में प्रसन्नता भरता है। देखो, मेरी बात मानो, जीवन का आनन्द प्रेम की दो बूंदों से ही भरा हुआ है।

देवों को अर्पित—अर्पित—समर्पित। मधु—शहद। मिश्रित—

मिला हुआ, घुला हुआ। सोम—प्राचीन काल का एक मादक रस। मादकता—मस्ती। दोला—झूला। प्रेयसि—प्रेमिका।

अर्थ—मधु (शहद) की बूंदें जिसमें घुली हुई हैं और जो देवताओं को समर्पित हो चुका है, वह सोमरस पीलो (उसके पीने में कोई दोष नहीं है)—इस पात्र को अपने अधरों से लगाओ। हे प्रिये, आज मस्ती के झूले पर हम तुम दोनों ही मिल कर झूलें।

पृष्ठ १८९

श्रद्धा जाग रही—मादकता—नशा। मधुर भाव—प्रेम भाव—पति पत्नी भाव। छकता—तृप्त करने को।

अर्थ—यद्यपि श्रद्धा जाग पड़ी थी, फिर भी एक प्रकार का नशा-सा उस पर छाया हुआ था, उससे शरीर और मन दोनों में माधुर्य-भाव का रस उसे तृप्त करने को भरा हुआ था।

बोली एक सहज—सहज—सरल। मुद्रा—भाव। किसी भाव—मुझे प्रसन्न करने की इच्छा। धारा—आवेश। बहना—कहना।

अर्थ—श्रद्धा सरल भाव से बोली : तुम्हारी बातों पर विश्वास नहीं होता। आज इस समय तो मुझे प्रसन्न करने की इच्छा से, आवेश में आकर तुम यह सब कह रहे हो।

कल ही यदि—परिवर्तन—प्रलय। साथी—पुरोहित।

अर्थ—कल तुम्हारी हिंसा-वृत्ति और वासना की अति से सृष्टि के शासक के अप्रसन्न होने पर पूर्ववत् फिर प्रलय मच सकती है। उसमें संभव है मैं न बचूं। और बहुत सम्भव है फिर तुम्हें कोई नवीन पुरोहित मिले और नवीन यज्ञ का आरम्भ करावे!

और किसी की फिर—किसी की—किसी पशु की। नाते—बहाने। धोखा—प्रवंचना।

अर्थ—और किसी देवता के बहाने तुम फिर किसी पशु की हत्या करोगे। अपनी जिह्वा के रस के लिए देवताओं के नाम की आड़ लेना

एक बहुत बड़ी प्रवंचना है। इसमें तो हम केवल अपना ही सुख देखते हैं; अपनी जिह्वा के रस को पाते हैं।

ये प्राणी जो—प्राणी—प्राणधारी, यहाँ विशेष रूप से पशुओं से तात्पर्य है। अचला—स्थिर। फीके—सत्ताहीन।

अर्थ—इस अचला पृथ्वी पर जो जीव इस प्रलय में बच गए हैं, क्या जीवित रहने के उनके अपने कोई अधिकार नहीं हैं? क्या उनके अधिकार अपनी कोई सत्ता नहीं रखते?

वि०—कुछ हिंदू विचारकों का ऐसा विश्वास था कि पृथ्वी घूमती नहीं। अतः पृथ्वी को अचला कहा जाता था।

पृष्ठ १३०

मनु क्या यही—मानवता—मानव धर्म। हंत—खेद सूचक शब्द। शवता—प्राणहीनता।

अर्थ—हे मनु, जिस नवीन उज्ज्वल मानव-धर्म की तुम प्रतिष्ठा करने जा रहे हो, क्या उसका यही स्वरूप होगा? जिसमें दूसरों के अस्तित्व का प्रयोजन अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए हो, मुझे अत्यंत शोक के साथ कहना पड़ता है कि वह संस्कृति प्राणहीन है, केवल शव समान है।

वि०—इस छंद में 'उज्ज्वल' शब्द का प्रयोग व्यंग्य में हुआ है, अतः प्रथम दो पंक्तियों से यह ध्वनि निकलती है कि तुम्हारी मानवता यदि स्वार्थ और हिंसा पर आधारित रही तो वह एक कलंक का प्रतीक होगी।

× × ×

तुच्छ नहीं है—चरम—सबसे महान्। सब कुछ—एकमात्र लक्ष्य।

अर्थ—मनु बोले : श्रद्धा अपना सुख भी तुच्छ नहीं है, उसकी भी कुछ सत्ता है। यदि तुम उसे तुच्छ समझती हो, तो यह तुम्हारी भूल है। इस छोटे से दो दिन के जीवन का तो सबसे महान् (एकमात्र) लक्ष्य नहीं है।

इंद्रिय की अभिलाषा—इंद्रिय की अभिलाषा—आँख से देखने,

जिह्वा से रस लेने, त्वचा से छूने आदि की कामनायें। सतत—निरंतर। विलासिनी—रमणी।

अर्थ—जहाँ हमारी इंद्रियों की सारी कामनायें निरंतर पूरी होती चलें; हे रमणी, जहाँ हृदय सन्तुष्ट होकर मधुर स्वर में गुनगुनाने लगे—

नोट :—भाव तीसरे छंद पर जाकर पूरा होगा।

रोम हर्ष हो—रोमहर्ष—आनंद के कारण रोमांचित होना। ज्योत्स्ना—चाँदनी, यहाँ चाँदनी सी उजली।

अर्थ—जहाँ मृदु मुसकान की चाँदनी खिले और उसके आनंद से शरीर रोमांचित हो जाये; जहाँ मन की आशाओं को पूरा करने के लिए प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे के और निकट आजायँ और उनकी साँसें आपस में टकरा जायँ—

पृष्ठ १३१

विश्व माधुरी जिसके—माधुरी—मधुरता। मुकुर—दर्पण।

अर्थ—(जैसे दर्पण का प्रयोजन इतना ही है कि वह हमारे मुख को प्रतिबिंबित करे, इसी प्रकार संसार भर के माधुर्य की सार्थकता इसी में है हम उसमें अपना मुख देखें) और जहाँ विश्व भर की मधुरता हमारे सुख का विधान करे, यदि उस अपने आनन्द का नाम स्वर्ग नहीं है तो फिर किस वस्तु का नाम स्वर्ग है? फिर तुमने व्यक्तिगत सुख का विरोध किस आधार पर किया?

जिसे खोजता फिरता—जिसे—अभाव की पूर्ति। अंचल—तलहटी। स्वर्ग—स्वर्गीय सुख। हँसता—लालसा जगाता। चंचल—परिवर्तनशील।

अर्थ—हिमालय की इस तलहटी में जिस अभाव की प्रेरणा से मैं चक्कर काटता फिरता हूँ, वही अभाव इस परिवर्तनशील जीवन में अपनी पूर्ति के लिए स्वर्गीय सुख की कल्पना जगा रहा है।

वर्तमान जीवन के—छली—वंचक, ठगने वाला। अदृष्ट—भाग्य।

अर्थ—अपने वर्तमान जीवन में जहाँ सुख का योग हुआ नहीं—सुख मिले देर नहीं होती—कि वंचक भाग्य किसी अभाव का रूप धारण कर प्रकट हो जाता है।

किन्तु सकल कृतियों—कृतियों—कर्मों। सीमा—लक्ष्य, ध्येय। विफल—व्यर्थ। प्रयास—कार्य।

अर्थ—क्योंकि हम जो कुछ करते हैं उसका लक्ष्य हम ही हैं; अतः हमारी इच्छाएं पूरी होनी चाहिए, नहीं तो हमारे कार्यों की कोई सार्थकता नहीं।

पृष्ठ १३२

एक अचेतना लाती—अचेतनता—निद्रावस्था में आना। सविनय—विनम्रता से। यह भाव—विवेकशक्ति।

अर्थ—आँखों में फिर नींद सी भरते हुए श्रद्धा ने विनम्र शब्दों में कहा : यह सोच कर ही कि तुममें विवेक कुछ शेष रह गया है, प्रलय के उपरांत फिर सृष्टि पूर्ववत् चलने लगी है।

वि०—देव सृष्टि के विनाश का कारण ही यह था कि उन्होंने अंधे होकर वासना की उपासना की थी। विवेक को एकदम परे फेंक दिया था। श्रद्धा व्यंग्य के द्वारा यह व्यंजित करना चाहती है कि प्रकृति अभी इस भ्रम में है कि तुममें कुछ विवेक शेष है और उसके आधार पर तुम नवीन संस्कृति की रचना करोगे। यदि तुम इतना न कर सके तो फिर प्रलय होगी, यह समझ लो। आगे के छंद में हिंसा और स्वार्थ का विरोध वह एक बार फिर करती है।

भेद बुद्धि निर्मम—भेद बुद्धि—भले बुरे का अन्तर बताने वाली वृत्ति, विवेक। निर्मम ममता—घोर मोह, निर्ममता और ममता। पयोनिधि—समुद्र।

अर्थ—सिंधु की लहरें तुम्हें भी निगलने को आकर यही समझ कर लौट गई होंगी कि इन से कम तुममें अपने प्रति सुख के ऐसे मोह के

बचने का विवेक अभी शेष है जो दूसरों के प्रति निर्दयता का व्यवहार करावे।

वि०—श्रद्धा यह व्यंग्य कर रही है कि प्रकृति ने जिस शुभ गुण को तुममें बचा समझ तुम्हारे प्राण नहीं लिए, ठीक उसी का विरोध तुम अपने आचरण द्वारा प्रदर्शित कर रहे हो।

अपने में सब—सब कुछ—सारे सुख। भरना—समेटना। एकांत स्वार्थ—घोर या केवल अपना स्वार्थ। भीषण—भयङ्कर।

अर्थ—सारे सुखों को अपने में ही समेट कर व्यक्ति अपना विकास किस प्रकार कर सकता है? केवल अपने स्वार्थ की चिन्ता तो बड़ी भयकंर भावना है। इससे व्यक्ति की बहुत बड़ी हानि होने की संभावना है।

औरों को हँसते—हँसते—प्रसन्न। विस्तृत करना—बढ़ाना, विस्तार देना, सीमित न रहने देना।

अर्थ—हे मनु, ऐसा स्वभाव बना लो कि दूसरों को प्रसन्न देखकर तुम प्रसन्न और सुखी हो सको। तुम सब को सुखी बनाने का प्रयत्न करो और इस प्रकार अपने सुख का विस्तार करो।

रचनामूलक सृष्टि—रचनामूलक सृष्टि—निर्माणमयी, बिगड़ बिगड़ कर बनना ही जिसका स्वभाव है। यज्ञपुरुष—भगवान विष्णु, ईश्वर। संसृति—संसार।

अर्थ—निर्माणरूपी यह सृष्टि ही यज्ञ-पुरुष (भगवान) का एक यज्ञ है और हमारे द्वारा की गई संसार की सेवा से उसका उसी प्रकार विकास होता है जिस प्रकार आहुतियों से यज्ञ का।

पृष्ठ १३३

सुख को सीमित—सीमित—समेटना। इतर—अन्य। मुँह मोड़ना—विमुख होना, पीठ दिखाना।

अर्थ—यदि सारे सुखों को अपने लिए समेटोगे, तो दूसरों को

भोगने के लिए केवल दुःख रह जायगा। ऐसी दशा में अन्य प्राणियों की व्यथा देख कर उस ओर से क्या तुम अपना मुँह मोड़ लोगे।

ये मुद्रित कलियाँ—मुद्रित—बंद। दल—पँखुड़ियाँ। सौरभ—गंध। मकरंद—पुष्प रस।

अर्थ—ये बंद कलियाँ अपनी पंखुड़ियों के भीतर ही यदि सारी गंध बंद रखें और मकरंद की बूँदों का रस खुल कर न दें तो यह इनकी ही मृत्यु है—इनका विकास रुक जायगा।

सूखें झड़ें और—कुचले—रुँधे। सौरभ—गंध। आमोद—गंध। मधुमय—रसमय। वसुधा—पृथ्वी।

अर्थ—ऐसी दशा में ये सूख कर झर जायँगी और एक प्रकार की रुँधी हुई गंध तुम्हें मिलेगी। फिर पृथ्वी पर रसमयी गंध तुम्हें कहाँ से प्राप्त होगी।

वि०—यहाँ 'आमोद' और 'मधुमय' दुहरे अर्थों में प्रयुक्त हैं। जीवन के पक्ष में यह अर्थ है कि यदि अपने गुणों और प्राणों के रस को हमने अपने तक ही सीमित रखा तो पृथ्वी पर न आमोद (आनंद) रहेगा और न रस (मधु)।

सुख अपने संतोष—संग्रहमूल—इकट्ठा करना, जुटाना। प्रदर्शन—दर्शन करना। देखना—पाना। वही—वास्तविक।

अर्थ—सुख को इसलिए नहीं जुटाया जाता कि उनसे केवल अपना ही जी भरे। वास्तविक सुख तो तब है जब उसके दर्शन दूसरे को भी कराये जायँ और वे उसे पा भी सकें।

निर्जन में क्या—प्रमोद—आनंद और गंध।

अर्थ—इस निर्जन में सुख की गंध क्या तुम एकाकी ही लोगे? क्या इसमें किसी दूसरे का मन-सुमन विकसित न होगा?

पृष्ठ १३४

सुख समीर पाकर—समीर—पवन की लहर। एकांत—एक

व्यक्ति का, व्यक्तिगत। सीमा—विकास। संसृति—संसार। मानवता—उदारता आदि सद्गुण।

अर्थ—सुख की लहर यदि तुम्हें मिली है तो वह व्यक्तिगत प्रसन्नता तो दे सकती है इसमें संदेह नहीं, पर संसार का विकास तो उदारता के निरंतर आदान-प्रदान से ही संभव है।

\+ \+ \+

हृदय हो रहा था—उत्तेजित—वासना से उभरना। अधर—ओंठ। मन की ज्वाला—मन में लगी वासना की आग।

अर्थ—यद्यपि श्रद्धा उदारता अहिंसा आदि की चर्चा कर रही थी, पर उसका हृदय इस समय स्वयं वासना से उत्तेजित था। मन की इस आग से उसके ओंठ शुष्क हो चले।

वि०—तीव्र कामोद्दीपन की अवस्था में ओंठ सूख जाते हैं।

उधर सोम का पात्र—समय—उपयुक्त अवसर। बुद्धि के बंधन—बुद्धि की मंदता।

अर्थ—उधर मनु के हाथ में सोमरस से भरा पात्र था। उन्होंने समझ लिया कि श्रद्धा की दुर्बलता से इस समय लाभ उठाया जा सकता है। वे कहने लगे: श्रद्धा इस रस का पान करो। इससे बुद्धि तीव्र होती है।

वही करूँगा जो—मनुहार—विनय। प्याला—सोमरस से भरा पात्र।

अर्थ—तुम जैसा कहती हो भविष्य में वैसा ही करूँगा। यह तो तुम सच ही कहती हो कि सुख का अकेले भोगना ठीक नहीं। जब इतनी विनय की गई, तब क्या कोई ऐसा भी कुछ हो सकता था जो प्याला पीने से रुक जाता?

पृष्ठ १३५

आंखें प्रिय आंखों में—प्रिय—मनु। रस—सोमरस। काल्पनिक—अवास्तविक, झूठी। चेतना—उत्तेजना।

अर्थ—श्रद्धा ने अपनी आँखें मनु की आँखों से मिलाईं। उनके

अरुण ओंठ सोमरस से भीग गए। उसका हृदय इस विजय पर सुखी था कि मनु ने उसकी बात मान ली, पर वह विजय वास्तविक न थी क्योंकि मनु ने ऊपरी मन से वह सब कुछ कहा था। ठीक इसी समय उसकी नस-नस में उत्तेजना भर गई।

वि०—श्रद्धा वास्तव में बहुत सरल स्वभाव की थी।

छल वाणी की—प्रवंचना—धोखा। शिशुता—बालकों का सा भोलापन। विभुता—सद्भावों का ऐश्वर्य।

अर्थ—जैसे बालकों को मीठी वाणी से बहला कर खेल में लगा दिया जाता है और अपना काम करते रहते हैं, उसी प्रकार भोले हृदयों को भी छल भरी वाणी से ठगकर बहुत से व्यक्ति उन्हे उँगली पर नचाते हैं और सद्भावों (सद्गुणों) के ऐश्वर्य को उनके भीतर से दूर कर देते हैं।

जीवन का उद्देश्य—उद्देश्य—लक्ष्य। प्रगति—आगे बढ़ना, विकास। इंगित—संकेत, इशारे। छल में—छलभरी।

अर्थ—छलभरी वाणी अपने एक मधुर संकेत के द्वारा क्षणमात्र में जीवन के उद्देश्य से, लक्ष्य की ओर आगे लेजाने वाली दिशा से, हमें दूसरी ओर मोड़ सकती है।

वह शक्ति अवलंब—वही—छल की। अवलंब—सहारा। अभिनय—दिखावटी हाव भाव।

अर्थ—छल की उसी आकर्षण शक्ति का सहारा इस समय मनु को मिला जो अपने दिखावटी हाव-भाव से किसी दूसरे प्राणी के मन में सुख की संभावना जगा कर उसे उलझाये रखती है।

पृष्ठ १३६

अरे ढोंगी चंद्रशालिनी—चन्द्रशालिनी—चन्द्रमावाली, चाँदनी से युक्त, आकर्षक। भव रजनी—संसार जो एक रात्रि के समान है। भीमा—भयंकर।

अर्थ—हे श्रद्धा, यह संसार एक भयंकर रात्रि के समान है। तुम्हारे प्रेम के चन्द्रमा के उगते ही वही जगमगा उठेगी—मेरे सारे अभाव दूर हो जायँगे। मैं चाहता हूँ कि मेरे सारे सुखों की सीमा तुम बनो अर्थात् तुम्हें पाकर मैं जीवन के समस्त सुख प्राप्त कर लूँ।

वि०—तुलसी ने भी इस संसार को एक रात माना है, पर ज्ञान की दृष्टि से—

एहि निशि-जामिनि जागहिं जोगी।

लज्जा का आवरण—आवरण—आच्छादन, पर्दा। प्राण—हृदय की बातों को। ढँकना—छिपाना। तम—अंधकार। अकिंचन—दरिद्र, कुंठित, शक्तिहीन, दुर्बल। अलगाता—अलग करता।

अर्थ—लज्जा का आच्छादन (पर्दा) ऐसा है जो प्राणों की बात को अंधकार में छिपा देता है। वह उसकी शक्ति को कुंठित बनाता है और एक प्राणी को (मुझे) दूसरे (तुम से) से पृथक कर देता है।

वि०—स्मरण रखना चाहिए कि मनु के लिए हृदय में प्रेम की बाढ़ लिए रहने पर भी श्रद्धा लज्जा के कारण ही खुल कर नहीं मिल पाती। मनु उसी लज्जा को अपने तर्क से छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

कुचल उठा आनन्द—कुचलना—रौंदा जाना। अनुकूल—समान भाव की अनुभूति।

अर्थ—तुम्हारी लज्जा के कारण मेरे हृदय का आनन्द कुचला जा रहा है। हमारे तुम्हारे मिलन में यह लज्जा ही बाधा डाल रही है। अतः इसे दूर कर दो। हमारे तुम्हारे दोनों के हृदय इस संबंध में समान भाव का अनुभव कर रहे हैं कि मैं तुम्हारे शरीर से सुख प्राप्त करना चाहता हूँ और तुम मेरे शरीर से। अतः आओ, हम दोनों मिलकर सुखी हों।

वि०—यह उत्तेजना की ऐसी स्थिति है जहाँ किसी प्रकार का वि[illegible]

कर तुम सारे दिन तकली से चिपटी रहती हो ? जब मैं कोमल चर्म ला सकता हूँ तब तुम ऊन क्यों कातती हो ? जब मैं पशु मार कर ला सकता हूँ तब तुम अन्न की चिन्ता क्यों करती हो ? श्रद्धा ने तुरंत उत्तर दिया : प्राणों की रक्षा के लिए आक्रमण करने वाले पशु पर प्रहार करना तो दूसरी बात है, पर स्वाद या स्वार्थ के लिए तो हिंसा का समर्थन मैं कभी नहीं कर सकती। यदि ऐसा है तो फिर हम में और पशुओं में अंतर ही क्या रहा।

मनु बोले : जब सुख अस्थिर है, जब विनाश और मृत्यु ही सत्य हैं, तब जो पल हमें मिले हैं, उनका उपभोग हम क्यों न करें ? संसार के कल्याण की कामना में क्या अपना सुख भी खो दें ! रानी, तुम अपना प्यार मुझे दो। इस बात का कोई उत्तर श्रद्धा ने न दिया। मनु का हाथ पकड़ कर वह उन्हें उस कुटिया के भीतर ले गई जहाँ उसने अपनी भावी संतान के निमित्त बेंत का एक झूला बनाया था और पृथ्वी पर पराग का बिछौना बिछा दिया था। मनु यह सब कुछ देखकर भी कुछ न बोले। तब श्रद्धा ने ही उन्हें समझाया : देखो घोंसला तो बन गया, पर आनंद-ध्वनि इसमें अभी नहीं मची। मैं तकली पर ऊन इसलिए कातती रहती हूँ कि भविष्य में हमारी संतान पशुओं के समान नग्न न रहे। वह दिन शीघ्र आने वाला है जब मैं माता बनूँगी। उस समय यदि तुम बाहर चले भी जाया करोगे तो मुझे घर सूना न लगेगा। मैं अपने हृदय के टुकड़े को झूला झुलाऊँगी, प्यार करूँगी, चूमूँगी, उसे लेकर घाटी में घूमा करूँगी। तुम्हारे वियोग में निकले आँसू तब सुख के आँसुओं में परिवर्तित हो जाया करेंगे।

इस बात पर मनु भड़क उठे। कहने लगे : यह नहीं हो सकता। तुम्हारे अनुराग का उपभोग मैं एकाकी ही करना चाहता हूँ। यह तो प्रेम बाँटने का एक दूसरा ढंग निकल आया। मुझे यह सह्य नहीं कि जब तुम्हारे मन में आवे तब तुम प्रेम दो और जब न आवे तब उदासीन

रहो। यदि ऐसा है तो इस सुख को लेकर तुम अकेली ही रहो ! आज से मैं तुमसे सदैव को पृथक होता हूँ। इससे चाहे मुझे सदैव दुःख ही क्यों न मिले। ऐसा कहकर वे सचमुच ही श्रद्धा का परित्याग करके चले गए। श्रद्धा चिल्लाती ही रह गई : अरे निष्ठुर, रुक, मेरी पूरी बात तो सुन जा ! पर स्वार्थ ने कभी स्नेह की बात सुनी है ?

पृष्ठ १३९

पल भर की उस—चंचलता—संयम-हीनता। स्वाधिकार—स्वतंत्रता। मधुर निशा—शरीर का माधुर्य। निष्फल—असफल। अंधकार—निराशा।

अर्थ—क्षण भर की संयम-हीनता के कारण श्रद्धा का अपने हृदय पर कोई अधिकार न रहा। अब वह सदैव को परतंत्र हो गया। जैसे मधुर चाँदनी रातों के उपरांत अँधेरी रातें आती हैं, उसी प्रकार जब वह अपने शरीर का माधुर्य समर्पित कर बैठी तब उसके जीवन में असफलता और निराशा का अंधकार शेष रह गया।

वि०—पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण प्रायः उसी समय तक शेष रहता है जब तक वह उसके शरीर को प्राप्त नहीं कर लेता। शरीर के प्रति आवेश समाप्त होते ही आकर्षण भी क्षीण हो जाता है।

मनु को अब—मृगया—आखेट, शिकार। रक्त लगना—किसी काम में रुचि उत्पन्न होना, यहाँ मांस खाने में आनंद आना। हिंसा—वध। लाली—रक्त की लाली या हिंसा। ललाम—सुन्दर, भला।

अर्थ—आखेट को छोड़ मनु को अधिक काम नहीं रह गया था। अर्थात् वे अधिकतर अहेर में रत रहते थे। उनके मुँह को खून लग गया था—उन्हें पशुओं के वध करने में सुख मिलता था, और हिंसा-कर्म उन्हें भला लगता था।

हिंसा ही नहीं—प्रभुत्व—अधिकार। अवसाद—विषाद, उदासी।

अर्थ—हिंसामात्र से ही उन्हें संतोष न था। उनका मन अत्यन्त

व्याकुलता से और एक बात की खोज में था। अतिरिक्त विषाद को चीर सुख की मात्रा जिसके कारण बढ़ती ही जाती है, ऐसी अधिकार-भावना को वह पोषित कर रहा था।

जो कुछ मनु के—करतल गत—हाथ में, अधिकार में। विनोद—मनोरंजन। दीन—फीका।

अर्थ—श्रद्धा के जिस शरीर पर उनका अधिकार हो चुका था उसमें कोई नवीनता उन्हें दिखाई नहीं देती थी जिससे आकर्षण बना रहता। श्रद्धा के मनोरंजन में केवल सरलता थी, किसी प्रकार की चंचलता न थी; अतः मनु को वह अच्छी नहीं लगती थी, फीकी प्रतीत होती थी।

वि०—आकर्षण को बनाये रखने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि स्त्रियों में थोड़ा नटखटपन भी हो।

उठती अंतस्तल से—अंतस्तल—हृदय। दुर्ललित—दुर्दमनीय, वेगवती।

अर्थ—उसके हृदय में सदा ही ऐसी मनोहर कामनायें जगतीं जो कठिनाई से दबाई जा सकें, पर उनकी ओर ध्यान देने वाला कोई न था; अतः इन्द्रधनुष सी झिलमिलाकर वे स्वतः ही दब जाती थीं, शांत हो जाती थीं।

पृष्ठ १४०

निज उद्गम का—उद्गम—विकास। सोना—जड़ बना रहना। अलस—आलस्य से पूर्ण। चंचल—आंदोलित या क्षुब्ध करने वाली। पुकार—इच्छा। त्राण—लक्ष्यसिद्धि।

अर्थ—मनु सोचने लगे : अपने विकास का मार्ग मूँदकर मेरे प्राण आलस्य में पड़े-पड़े कब तक जड़ बने रहेंगे? जीवन का उपभोग मैं पूर्णरूप से कर सकूं, हृदय को आंदोलित करने वाली यह इच्छा कब

तक निराश (अपूर्ण) रहेगी ? किस पथ का अनुसरण करने से लक्ष्य-सिद्धि होगी ?

श्रद्धा का प्रणय—प्रणय—प्रेम। अभिव्यक्ति—प्रकट करने की रीति। व्याकुल—तड़पन, छटपटाहट, विह्वलता। अस्तित्व—आभास। कुशल सूक्ति—बातों में चमत्कार।

अर्थ—श्रद्धा ने अपने प्रणय को मेरे प्रति अत्यन्त सामान्य रीति से प्रकट किया। उसके आलिंगन में किसी प्रकार की छटपटाहट और उसकी बातों में किसी चमत्कार का आभास नहीं मिलता।

भावनामयी वह स्फूर्ति—भावनामयी—भावों से परिपूर्ण। स्फूर्ति—उत्साह। स्मित रेखा—मुसिकान। विलीन—अंत। अनुरोध—आग्रह। उल्लास—भारी प्रसन्नता। कुसुमोद्गम—वसंत।

अर्थ—भावों से भरे उत्साह का अनुभव वह मेरे प्रति नहीं करती जिसका अंत नये नये ढंग की मुस्कराहट में होता है। वह अपनी ओर से किसी बात का आग्रह नहीं करती। कभी मुझे देखकर भारी प्रसन्नता का प्रदर्शन नहीं करती। जैसे वसंत के दिनों में पृथ्वी नवीन पुष्प धारण करती है उसी प्रकार उसके प्रेम में किन्हीं नवीन भावों का चिह्न नहीं—वही पुराने ढंग की बातें दुहराये चली जाती है।

आती है वाणी में—चाव—ललक। लीला हिलोर—विनोद, मनोरंजन। नूतनता—मौलिकता, बात कहने का विलक्षण ढंग। नूतनता नृत्यमयी—नवीन हाव भाव। चंचल मरोर—शरारत, नटखटपन।

अर्थ—उसकी बातों में किसी ऐसी विनोदवृत्ति का आभास तक नहीं जिसमें नटखटपन और हाव भाव के साथ इठला कर व्यवहार करने से किसी नवीनता (Freshness) का अनुभव हो।

पृष्ठ १४१

जब देखो बैठी—शालियाँ—धान। श्रांत—आलस्य। अन्न—अनाज के दाने। क्लांत—थकावट।

अर्थ—जब देखो तभी खेतों में धान चुनती दिखाई देती है और अलसाती नहीं। या फिर अनाज के दाने इकट्ठे करती रहती है और थकावट का अनुभव नहीं करती।

बीजों का संग्रह—संग्रह—संचय, बचा कर रखना। सब कुछ लेना—संतुष्ट होना। अस्तित्व—जीवन। अतीत हुआ—महत्ताहीन हुआ।

अर्थ—बोने के लिए बीज बचा कर रखती है और जब इन कामों से छुटकारा मिलता है तब गीत गाती हुई तकली पर कुछ कातती है। इस प्रकार काम-धंधे में वह पूर्ण रूप से तुष्ट है और उसकी दृष्टि में आज मेरे व्यक्तित्व की कोई महत्ता नहीं।

लौटे-थे मृगया से—मृगया—आखेट।

अर्थ—मनु आखेट से थक कर लौटे थे। उन्हें गुफा का द्वार दिखाई दिया। पर अधिक आगे बढ़ने को इच्छा उन्हें न हुई। वे अपने विचारों में लीन रहे।

मृग डाल दिया—मृग—पशु। शिथिलित—थके। उपकरण—सामग्री। आयुध—अस्त्र, यहाँ धनुष। प्रत्यंचा—डोरी। शृंग—सींग का बना बाजा।

अर्थ—जिस पशु का उन्होंने शिकार किया था, उसे पृथ्वी पर डाल दिया! धनुष भी वहीं पटक दिया। अपना थका शरीर लेकर वे बैठ गए। पास में आखेट का सारा सामान बिखरा पड़ा था—कहीं धनुष था, कहीं डोरी, कहीं सींग का बाजा और कहीं तीर।

नोट—'शिथिलता' शब्द शिथिल से खींच कर बना लिया है।

पृष्ठ १४२

पश्चिम की रागमयी—रागमयी—अरुण। चपल—चंचल या तीव्र गति वाला। जंतु—पशु।

अर्थ—पश्चिम दिशा में संध्या की अरुणिमा कालिमा में परिवर्तित

हो गयी, किन्तु वे अहेरी (मनु) अब तक नहीं लौटे। क्या कोई तीव्र गति वाला पशु उन्हें कहीं बहुत दूर ले गया ?

यों सोच रही—अनमनी—उदास। अलकें—केश। गुल्फ—एड़ी के उपर की गाँठें।

अर्थ—श्रद्धा इस प्रकार अपने मन में सोच रही थी। उसके हाथों में तकली चक्कर काट रही थी। इसी बीच वह कुछ उदास हो गयी। उसके बाल इतने लम्बे थे कि वे एड़ी के ऊपर की गाँठ को छू रहे थे

केतकी गर्भ सा—गर्भ—मध्य भाग यहाँ केतकी के कोश से तात्पर्य है जिसमें मंजरी के रूप में सुगंधित पुष्प रहते हैं। कृशता—दुबलापन। देह—शरीर।

अर्थ—उसका मुँह केतकी के कोश में स्थित मंजरी सा पीला था। आँखों में आलस्य और स्नेह-भाव भरा था। चेहरा उसका दुबला पड़ गया था और एक नवीन प्रकार की लज्जा उस पर अंकित थी। उसका शरीर लता के समान काँप उठता था।

मातृत्व बोझ से—मातृत्व—गर्भ काल में माता के स्तनों में आया दूध। पयोधर—स्तन। पीन—भारी। पट्टिका—पट्टी। रुचिर साज—सुन्दर आवरण।

अर्थ—वह माता बनने जा रही थी, अतः दुग्ध के बोझ से उसके भारी स्तन कुछ झुक चले थे। कोमल काली ऊन की एक नवीन पट्टी जिनमें वे बँधे थे सुन्दर आवरण का काम दे रही थी।

सोने की सिकता—सिकता—बालू। कालिंदी—यमुना जिसका वर्ण श्याम है। उसास भरना—लहरें लेना। स्वर्गंगा—आकाश गंगा। इन्दीवर—नील कमल। हास—खिलना।

अर्थ—पयोधरों पर बँधी ऊन की काली पट्टी ऐसी लगती थी मानो सोने की बालुका पर यमुना लहराती बह रही हो, या आकाश गंगा में नीले कमलों की एक पंक्ति खिली हो।

वि०—यहाँ पयोधरों की तुलना सोने की बालुका और आकाश-गंगा से की है तथा काली पट्टिका की श्याम यमुना और नीले कमलों की पंक्ति से। यद्यपि स्पष्ट शब्दों में कवि ने नहीं लिखा, पर उपमान पक्ष में यमुना के साथ 'भर उसास' से यह दृश्य उपमेय पक्ष में जग उठता है कि साँसों के लेने में श्रद्धा के पयोधर उठते और नीचे हो-हो जाते थे।

पृष्ठ १४२

कटि में लिपटा—कटि—कमर। नवल—नवीन। वसन—वस्त्र। दुर्भर—असह्य। जननी—मा की स्थिति में आने वाली श्रद्धा। सलील—प्रसन्नता से।

अर्थ—उसकी कमर में पयोधरों पर कसी पट्टी ही जैसा हल्का और नीले रंग का बुना हुआ वस्त्र लिपटा था। गर्भ की मीठी पीड़ा वैसे असह्य थी, पर वह एक शिशु की मा बनने जा रही थी; अतः प्रसन्नता से उसे झेल रही थी।

श्रम बिंदु बना सा—श्रम बिंदु—पसीने की बूँदें। गर्व—अभिमान। पर्व उत्सव।

अर्थ—उसके ललाट पर पसीने की बूँदें थीं मानो श्रद्धा के हृदय का यह सरस अभिमान कि वह एक शिशु की मा होने जा रही है उस रूप में झलक उठा। या यह समझिये कि सन्तानोत्पत्ति का महान् उत्सव निकट आ गया था; अतः वे मस्तक से चूने वाली पसीने की बूँदें न थीं, पुष्प थे जो पृथ्वी पर झड़ रहे थे।

मनु ने देखा जब—खेद—शिथिलता, खिन्नता। इच्छा—वासना कामेच्छा। भाव—हाव भाव।

अर्थ—मनु ने सहज शिथिलता से परिपूर्ण श्रद्धा की वह आकृति देखी जो उनकी वासना-वृति का प्रबल विरोध करती थी। उन्हें ऐसा भी

प्रतीत हुआ कि उसमें अब पहले के से अनुपम हाव भाव शेष नहीं।

वे कुछ भी—साधिकार—अधिकार भावना से।

अर्थ—उन्होंने कहा कुछ भी नहीं। केवल एक प्रकार की अधिकार-भावना से चुपचाप उसे देखते रहे। पर श्रद्धा ने उनकी आँखों से उनके हृदय के भाव को ताड़ लिया और उस पर वह थोड़ी मुस्करा उठी।

पृष्ठ १४४

दिन भर थे कहाँ—भटकना—भूले व्यक्ति के समान घूमना।

हिंसा—शिकार। आखेट—वृत्ति।

अर्थ—अपनी वाणी में मधुर स्नेह भर कर श्रद्धा बोली: तुम दिन भर कहाँ भूले से घूमते रहे? आखेट-वृत्ति इतनी प्यारी हो गयी है कि शरीर और घर की सुधि भी अब तो तुम्हें नहीं रहती!

मैं यहाँ अकेली—अकेली—एकाकिनी। नितांत—एक दम। कानन—वन। मृग—पशु। अशांत—व्यग्र।

अर्थ—मैं यहाँ अकेली बैठी तुम्हारा मार्ग ताकती रहती हूँ। जब वन में व्यग्र होकर तुम पशु के पीछे दौड़ते हो, तब तुम्हारे चरणों की ध्वनि जैसे मेरे कानों में पड़ती रहती है।

ढल गया दिवस—ढल गया—समाप्त हुआ। रागारुण—सूर्य के समान लाल। नीड़ों—घोंसलों। विहग युगल—पक्षियों के जोड़े। शिशुओं—बच्चों।

अर्थ—पीले रंग वाला दिन ढल गया है पर तुम अस्तंगत होते हुए शाम का लाल सूर्य बन कर अभी तक घूम रहे हो। देखो, अपने घोंसलों में पक्षियों के जोड़े अपने अपने बच्चों को चूम रहे हैं।

उनके घर में—कोलाहल—पक्षियों की चहचहाहट। सूना—सन्नाटे से भरा। कमी—अभाव। अन्य द्वार—बाहर।

अर्थ—पक्षियों के घोंसलों में चहचहाहट मची है, पर मेरी गुफा

के द्वार पर कितना सन्नाटा है। मैं पूछती हूँ तुम्हें ऐसा किस बात का अभाव है जिसके लिए तुम बाहर घूमते रहते हो।

पृष्ठ १४५

श्रद्धे तुमको कुछ—विकल घाव—तीखी चोट।

अर्थ—मनु बोले: श्रद्धा चाहे तुम्हें किसी बात की कमी न हो, पर मेरा अभाव तो अभी बना हुआ है। कोई ऐसी वस्तु मैं खो बैठा हूँ जिसके न मिलने से हृदय में एक तीखा घाव हो गया है।

चिर मुक्त पुरुष—चिर मुक्त—सदा से स्वतंत्र। अवरुद्ध—परतंत्रता का। श्वास—जीवन। निरीह—विवशता का। गतिहीन—जड़। पङ्गु—जो चल न सके, जो अपनी उन्नति न कर सके। ढहना—गिरना। डीह—टीला।

अर्थ—पुरुष सदा से स्वतंत्र प्रकृति का रहा है। वह विवशता और परतंत्रता का जीवन नहीं बिता सकता। गाँव के उजड़े हुए टीले के समान वह जड़ बना पड़ा रहे, बढ़े न (अपनी उन्नति न करे) ऐसा नहीं हो सकता।

जब जड़ बंधन—मृदु—कोमल। ग्रन्थि—शृंखला। अधीर—छटपटाहट।

अर्थ—प्राणों के कोमल गात को जब मोह के जड़ बंधन से कस दिया जाता है, तब एक सीमा तक तो सहनीय है, पर उसके आगे जब उसे और अधिक जकड़ रखने का आकुल प्रयत्न होता है तब प्राण छटपटा कर उस शृंखला की सारी कड़ियों को ही तोड़ कर मुक्त हो जाते हैं।

वि०—यह बात नहीं है कि श्रद्धा का प्रेम न चाहते हों। इसके विपरीत वे चाहते थे कि श्रद्धा उन्हें प्यार करने के अतिरिक्त और कुछ करे ही नहीं। पर उनकी दृष्टि से श्रद्धा का प्रेम मोह-मात्र था जिससे उन्हें अपने विकास का पथ अवरुद्ध दिखाई दिया।

हँस कर बोले—निर्झर झरना। ललित—सुन्दर। उल्लास—प्रसन्नता, आनंद—आह्लाद।

अर्थ—इतना उन्होंने हँसते हुए कहा जिससे श्रद्धा को कुछ बुरा न लगे। उस वाणी में ऐसी मिठास थी जैसी मधुरता झरने के मनोहर गान में रहती है। और जैसे झरने की कलकल ध्वनि में एक आनन्द का स्वर रहता है और सुनने वालों के प्राणों को वह मस्त बनाने की शक्ति रखती है उसी प्रकार उनके शब्दों में एक आह्लाद-भावना भरी थी और प्राणों में मधुरता भर उन्हें प्रभावित करने की शक्ति उनमें विद्यमान थी।

वह आकुलता अब—आकुलता—व्याकुलता। तंतु—धागा, तार। सदृश—समान।

अर्थ—तुम्हारे अनुराग में मेरे लिए वह व्याकुलता अब कहाँ बची है जिसमें मैं सब कुछ भूल जाता। अब तो तुम इस तकली के काम में ऐसी लगी हुई हो जैसे कोई आशा के कोमल तार (भाव) से बँधा रहता है।

पृष्ठ १४६

यह क्यों क्या—यह—तकली चलाना। शावक—पशुओं के बच्चे। मृदुल—कोमल, मुलायम। चर्म—चमड़ा। मृगया—आखेट।

अर्थ—तकली पर ऊन तुम क्यों तैयार करती हो? क्या तुम्हारे लिए पशुओं के बच्चों के सुन्दर मुलायम चमड़े मैं नहीं लाता जिनसे तुम अपना शरीर ढक सको? तुम बीज क्यों बीनती हो? क्या मेरे आखेट कर्म में शिथिलता आ गई है जिससे तुम्हारे भोजन की सामग्री मैं न जुटा सकूँ?

तिस पर यह—सखेद—थकावट लाने वाला। भेद—रहस्य।

अर्थ—और इस सबसे ऊपर तुम पीली क्यों पड़ती जा रही हो? चुनने में तुम इतना श्रम ही क्यों करती हो जिससे थक जाओ? मैं जानना

चाहता हूँ यह सब तुम किसके लिए कर रही हो ? तुम्हारे इस परिश्रम का रहस्य क्या है ?

अपनी रक्षा करने में—रक्षा—बचाव। अस्त्र—वह हथियार जो फेंक कर चलाया जाय जैसे बाण। शस्त्र-मुख्यतः वह हथियार जो हाथ में लेकर चलाया जाय जैसे तलवार। हिंसक—फाड़ खाने वाले पशु जैसे सिंह, भेड़िया, शूकर, आदि।

अर्थ—जंगल में कोई तुम पर आक्रमण करदे और अपने बचाव के लिए तुम उस पर अस्त्र चला दो इस प्रकार हिंसक-जंतुओं से शरीर रक्षा के लिए शस्त्र-प्रयोग की बात तो मेरी भी समझ में आती है।

पर जो निरीह—निरीह—भोला, यहाँ सीधे साधे पशु। समर्थ—शक्ति।

अर्थ—पर जो भोले पशु जीवन धारण कर कुछ उपकार करने की शक्ति रखते हैं, वे जीवित रहकर हमारे काम क्यों न आवें, इस बात को मैं समझ न सकी।

पृष्ठ १४७

चमड़े उनके आवरण—आवरण—ढकने वाली कोई वस्तु। मांसल—हृष्ट पुष्ट। दुग्ध धाम—दूध से भरे।

अर्थ—उनका चर्म उनके शरीर को ही ढके। शरीर ढकने की जो हमारी आवश्यकता है उसकी पूर्ति ऊन से हो। वे जीवें और हृष्ट-पुष्ट हों। वे दूध से भरे रहें और हम उन्हें दुह कर उनका दूध पीवें।

वे द्रोह न करने—द्रोह—शत्रुता। स्थल—वस्तु। सहेतु—उद्देश्य से। भव—संसार। जलनिधि—समुद्र। सेतु—पुल, रक्षक, उद्धारकर्त्ता।

अर्थ—जो पशु किसी उद्देश्य या प्रयोजन के लिए पाले जा सकते हैं, वे शत्रुता की वस्तु नहीं। हमारा विकास यदि पशुओं से कुछ भी अधिक है, तो हमें चाहिये कि इस संसार रूपी समुद्र में हम उनके उद्धार और रक्षा का कारण बनें।

मैं यह तो—सहज लब्ध—सरलता से प्राप्त। संघर्ष—युद्ध। विफल—असफल। छले जायँ—ऐश्वर्यों से वंचित रहें।

अर्थ—मनु बोले : जो सुख सरलता से प्राप्त किये जा सकते हैं उन्हें हम यों ही छोड़ दें, इस बात को मैं नहीं मानता। जीवन एक युद्ध है। उसमें हम असफल रहें और संसार के ऐश्वर्यों से हमें वंचित होना पड़े यह भी मुझे स्वीकार नहीं।

काली आँखों की—तारा—पुतली। मानस—मन। मुकुर—दर्पण। प्रतिबिंबित—बिंब पड़ना, छवि का बसना। अनन्य—एक व्यक्ति के प्रति दृढ़ निष्ठा।

अर्थ—तुम्हारी आँखों की काली पुतलियों में अपनी ही मूर्ति देख कर मैं धन्य हो जाऊँ और मेरे मन के दर्पण में केवल तुम्हारी छवि ही झलकती रहे।

पृष्ठ १४८

श्रद्धे यह नव—नव-नवीन, विचित्र, विलक्षण। संकल्प—इच्छा। चल दल—पीपल का पत्ता। डोल—अस्थिर, चंचल।

अर्थ—हे श्रद्धा, तुम्हारी इस विचित्र इच्छा की पूर्ति मैं नहीं कर सकता। यह जीवन क्षणिक है; अतः अमूल्य है। जीवन का सुख उसी प्रकार अस्थिर है जैसे पीपल का पत्ता प्रतिपल चंचल रहता है। पर मैंने निश्चय किया है कि मैं उसका भोग करूँगा।

देखा क्या तुमने—स्वर्गीय सुख—बहुत बड़ा सुख। प्रलय नृत्य—विनाश। चिरनिद्रा—मृत्यु। विश्वास—निष्ठा। सत्य—अडिग।

अर्थ—क्या संसार के बड़े से बड़े सुख को तुमने छिन्न-भिन्न होते नहीं देखा? जब सभी वस्तुओं का अंत विनाश में होता है और मृत्यु हमें सदा को सुलाने के लिए आती है, तब परोपकार, विकास, अहिंसा आदि के प्रति तुम्हारी इतनी अडिग निष्ठा क्यों है?

यह चिर प्रशांत—चिर—स्थायी। प्रशांत—शांत। मंगल—कल्याण। अभिलाषा—कामना। संचित—एकत्र, इकट्ठी।

अर्थ—जब सब कहीं अशान्ति और विनाश है, तब एक स्थायी शान्ति और कल्याण की कामना तुम्हारे हृदय में क्यों उमड़ रही है? तुम हृदय में स्नेह संजोकर क्यों रख रही हो? किस अन्य प्राणी के प्रति अब तुम अनुरागमयी हो रही हो?

यह जीवन का—वरदान—सफलता। दुलार—प्यार। वहन—सहन। भार—बोझ।

अर्थ—हे रानी, अपना वह प्यार जो मेरे जीवन की सबसे बड़ी सफलता है मुझे दे दो। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा हृदय केवल मेरी ही चिंता का भार लिए रहे।

मेरा सुन्दर विश्राम—विश्राम—शान्ति देने वाला। सृजता हो—निर्माण करता हो। मधुमय—मधुर। लहरें—भावनाओं की तरंगें।

अर्थ—तुम्हारा हृदय मुझे विश्राम देने वाला सिद्ध हो। वह अपने भीतर मेरे प्रेम का एक मधुर संसार निर्मित करे। उस संसार में मेरे अनुराग की ही मधुर धारा बहे और उस धारा में मेरे प्रति भावनाओं की लहरें एक एक करके उठें।

× × +

पृष्ठ १४९

मैं ने तो एक—कुटीर—कुटिया। अधीर—जल्दी जल्दी।

अर्थ—मनु की बातों का कोई उत्तर न देती हुई श्रद्धा बोली: चलो, मैंने जो अपनी एक कुटिया बनाई है, उसे देख लो। इतना कह, मनु का हाथ पकड़ वह उन्हें जल्दी-जल्दी ले चली।

उस गुफा समीप—पुआल—दाने झड़े धान के डंठल। छाजन—पटाव, छप्पर। शान्ति पुंज—शान्ति प्रद।

अर्थ—गुफा के ही समीप धानों के डंठलों का शान्तिप्रद एक पटाव या जहाँ कोमल लताओं की घनी डालों से एक कुंज बन गया था।

थे वातायन भी—वातायन—झरोखे, खिड़की। प्राचीर—दीवाल। पर्ण—पत्ते। शुभ्र—स्वच्छ। समीर—पवन। अभ्र—बादल।

अर्थ—पत्तों की बनी स्वच्छ दीवाल थी। उसी में काट कर खिड़कियाँ बनाई गई थी जिनमें होकर यदि पवन और बादल के टुकड़े आवें तो रुके न रहें, भीतर प्रवेश करके स्वच्छंदता से शीघ्र ही बाहर जा सकें।

उसमें था झूला—वेतसी लता—बेंत। सुरुचिपूर्ण—सुन्दर। धरातल—पृथ्वी। सुरभि चूर्ण—सुगंधित पराग।

अर्थ—कुटिया के भीतर बेतों का बना सुन्दर झूला पड़ा था। पृथ्वी पर फूलों का चिकना कोमल सुगंधित पराग बिछा था।

पृष्ठ १५०

कितनी मीठी अभिलाषाएँ—अभिलाषाएँ—कामनाएँ। घूमना—विचरण करना। मंगल—शुभ, मांगलिक।

अर्थ—उस कुटिया में श्रद्धा के हृदय की बहुत सी मधुर कामनायें चुप-चाप विचरण कर रही थीं। उसके कोनों पर श्रद्धा के कितने ही मीठे मांगलिक गाने मँडरा रहे थे।

भाव यह कि जब श्रद्धा उस कुटिया में बैठती तभी सोचती थी: मेरा नन्हा सा बच्चा इस झूले पर झूलेगा, मैं उसे गोद में लूँगी, फूलों की शय्या पर वह घुटनों के बल चलेगा, हँसे रूठेगा आदि। इसी प्रकार वह उन शुभ गीतों को भी गुनगुनाती रहती थी जिन्हें वह अपने शिशु को लोरी रूप में या वैसे ही प्रसन्न करने को सुनावेगी।

मनु देख रहे—चकित—आश्चर्य में आकर। गृहलक्ष्मी—पत्नी जो घर की लक्ष्मी कहलाती है। गृह-विधान—गृह निर्माण कला। साभिमान—सगर्व।

अर्थ—मनु ने चकित होकर गृहलक्ष्मी श्रद्धा के गृह-निर्माण की इस

नवीन कला को देखा। पर उन्हें इससे किसी प्रकार की प्रसन्नता न हुई। वे सोचने लगे : यह सब कुछ क्यों? इस सुख का गर्व के साथ उपभोग कौन करेगा?

चुप थे पर—नीड़—घोसला। कलरव—चहचहाहट, मधुर ध्वनि। आकुल—चंचल। भीड़—बच्चे।

अर्थ—वे चुप हो रहे। इतने में श्रद्धा ने समझाया : देखो यह घोसला तो बन गया, पर इसमें चहचहाहट करने वाली शिशुओं की चंचल भाड़ अभी नहीं आई।

तुम दूर चले—निर्जनता—सूनापन। पैठ—डूबना।

अर्थ—जब तुम दूर चले जाते हो उस समय मै यहाँ बैठी हुई तकली घुमाती रहती हूँ और अपने चारों ओर के सूनेपन में डूब जाती हूँ।

मैं बैठी गाती—प्रतिवर्त्तन—चक्कर, घुमाव। विभोर—मग्न। अहेर—आखेट, शिकार।

अर्थ—जैसे जैसे तकली चक्कर काटती है वैसे ही वैसे मैं लय में मग्न होकर बैठी हुई गाती रहती हूँ : हे मेरी तकली तू धीरे धीरे घूम। मेरे प्रियतम आखेट करने गए हैं।

पृष्ठ १५१

जीवन का कोमल—तंतु—धागे और भावनायें। मंजुलता—रम्यता।

अर्थ—जैसे तुम्हारे धागे कोमल हैं और बढ़ते जा रहे हैं, जीवन की कोमल भावनायें भी वैसे ही रम्यता धारण करें तथा विकसित हों। जैसे तुम्हारे धागों से बुने वस्त्र से नग्न शरीर जब ढक जाता है तब बाह्य सुन्दरता को निखार देता है, वैसे ही सभ्य भावों को अंगीकार कर मन के सौंदर्य का मूल्य बढ़ जाय।

किरनों सी तू—प्रभात—प्रातःकाल और नवजात शिशु। निर्वसना—वस्त्र-हीन, नग्न। नवलगात—नवीन देह।

अर्थ—जैसे प्रभात-काल में उज्ज्वल किरनों का वस्त्र ओढ़ भोली-भाली प्रकृति प्रकाश से अपने नग्न शरीर को ढक लेती है, वैसे ही मेरे जीवन के मधुर प्रभात अर्थात् मेरे बच्चे को तू अपने किरन जैसे उजले धागों से बुने वस्त्र से ढक देना, जिससे वह नंगा सरल शिशु अपने नवीन गात को तेरी शुभ्रता में छिपा ले।

वासना भरा उन—आवरण—पर्दा। कांतिमान—रम्य। फुल्ल—खिले।

अर्थ—हे तकली, तेरे द्वारा बुना वस्त्र नग्न शरीर को वासना की दृष्टि से देखने वाली आँखों के लिए एक रम्य आवरण का काम देगा। खुले शरीर का सौंदर्य वस्त्रों में कुछ कुछ वैसे ही निखर आवेगा जैसे खिला पुष्प लता की आड़ में और भी रम्य प्रतीत होता है।

अब वह आगंतुक—आगंतुक—जो आवे, यहाँ श्रद्धा की आगामी संतति से तात्पर्य है। निर्वसना—वस्त्रहीन। जड़ता—अनुभूति शून्यता, अनुभवहीनता। मग्न—प्रसन्न, संतुष्ट।

अर्थ—भविष्य में जो शिशु मेरे गर्भ से जन्म लेगा, वह गुफ़ाओं में पशुओं के समान वस्त्रहीन और नंगा न रहेगा। वह ऐसे जीवन से कभी संतुष्ट न होगा जिसमें अभाव की अनुभूति ही नहीं होती।

सूना न रहेगा—लघु—छोटा। विश्व—संसार, गृहस्थी। मृदुल—कोमल। फेन—पराग।

अर्थ—जब तुम कहीं चले भी जाया करोगे तब भी मेरा यह छोटा सा संसार सूना न रहेगा। उस बीच में अपने शिशु के लिए मकरंद से सना फूलों के पराग का बिछौना बिछाऊँगी।

पृष्ठ १५२

झूले पर उसे—दुलरा कर—प्यार से। लिपटा—चिपटा।

अर्थ—मैं उसे झूले पर झुलाया करूँगी। प्यार से उसका मुख

चूमा करूँगी। वह मेरी छाती से चिपट कर इस घाटी में सरलता ः घूम आया करेगा।

वह आवेगा मृदु—मृदु—कोमल। मलयज—मलय पर्वत से, जिस पर चंदन के वृक्षों की अधिकता है, चलने वाला पवन। मसृण—चिकने। मधुमय—सरसता। स्मिति—हास्य। प्रवाल—किशलय, नवीन कोमल अरुणवर्णी पत्ती।

अर्थ—अपने चिकने बालों को हिलाता हुआ वह मृदु मलय पवन के समान मस्त गति से आवेगा। उसके अधरों से नवीन मधुर मुसिकान ऐसे फूट उठेगी जैसे लता से फूटने वाले अरुण किशलय (पत्ते) पर नवीन सरसता।

अपनी मीठी रसना—रसना,—जिह्वा, वाणी। कुसुम धूलि—पराग। मकरंद—पुष्प रस।

अर्थ—अपनी मधुर वाणी से वह ऐसी मीठी बातें मुझसे किया करेगा मानों मेरी पीड़ा को दूर करने के लिए वह पराग को मकरंद में घोल कर छिड़क रहा हो।

वि०—मकरंद में पराग को घोलने की क्रिया से एक लेप सा तैयार हो जायगा और प्रसिद्ध है कि शीतल लेप ताप का शमन करता है।

मेरी आँखों का—पानी—अश्रुबिंदु। अमृत—सुख की बूंदें। स्निग्ध—कोमल यहाँ सुन्दर। निर्विकार—सरल। अपना चित्र—अपने प्रति ममता।

अर्थ—तुम्हारे वियोग में जब मैं आँसू बहाऊँगी और इधर उसकी सरल आँखों में अपने प्रति ममता देख कर मुग्ध होऊँगी, उस समय वे अश्रुबिंदु सुन्दर अमृत बिंदुओं (सुख के आँसुओं) में बदल जाया करेंगे।

× × × ×

पृष्ठ १५३

तुम फूल उठोगी—फूल उठना—लता पर फूल आना और मनुष्य

का प्रसन्न होना। कंपित—बखेरना और सिहरना। सौरभ—गंध। कस्तूरी मृग—एक प्रकार का हरिण जिसकी नाभि में सुगन्धित कस्तूरी रहती है।

अर्थ—श्रद्धा की बातें सुन कर मनु कहने लगे: सुगन्ध की लहरें बखेरती हुई जैसे लता फूल उठती है, उसी प्रकार तुम तो सुख की भावनाओं से सिहर कर अपने में न समा सकोगी; पर मैं फिर भी कस्तूरी मृग की तरह सुगंध (सुख) की खोज में जंगल-जंगल सूने में भटकता फिरूंगा।

यह जलन नहीं—जलन—आंतरिक दाह या पीड़ा। ममत्व—प्यार। पंचभूत—पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश जो महाभूत कहलाते हैं। रमण—रमाना, भोगना। एक तत्त्व—अकेला, ईश्वरीय तत्त्व।

अर्थ—इस आंतरिक दाह को मैं और अधिक नहीं सह सकता। मुझे प्यार चाहिए। इस जगत में जैसे सब कहीं ईश्वरीय तत्त्व समाया हुआ है, उसी प्रकार मैं इस सम्पूर्ण संसार के सुखों का भोग अकेला ही करना चाहता हूँ।

यह द्वैत अरे—द्वैत-एक दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें आत्मा और परमात्मा दोनों की सत्ता मानी जाती है, पर यहाँ केवल दो व्यक्तियों से तात्पर्य है। द्विविधा—दो टुकड़े। विचार—इच्छा।

अर्थ—मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा तुम्हारे अनुराग का अधिकारी हो यह तो प्रेम के दो टुकड़े करने हुए, प्रेम बाँटने का एक ढंग निकल आया। मैं कोई भिखारी हूँ? नहीं। यह संभव नहीं। यदि ऐसा होगा तो मैं इस इच्छा को ही खींच लूंगा कि मुझे तुमसे प्रेम प्राप्त करना है।

तुम दानशीलता—दानशीलता—दानियों का स्वभाव। सजल—जल भरे। जलद—बादल। सकल कलाधर—सोलह कलाओं से परिपूर्ण। शरद इंदु—शरत् ऋतु का चंद्रमा जो सभी ऋतुओं से स्वच्छ और मधुवर्षी होता है।

अर्थ—जलभरे बादलों के समान तुम अपनी दानशीलता प्रदर्शित

करती प्रेम की बूँदें सभी कहीं बाँटती घूमो, यह मुझे सहन नहीं। आनंद के आकाश में पूर्ण कला वाले शरद् ऋतु के चंद्रमा के समान मैं एकाकी ही विचरण करना चाहता हूँ अर्थात् सुख का उपभोग अकेला ही करूँगा, अन्य को न करने दूँगा।

भूले से कभी—आकर्षणमय—आकर्षक। हास—मुसिकान। मायाविनि—जादू का सा प्रभाव रखने वाली। जानु टेक—घुटने टेक, विनम्रता से।

अर्थ—आकर्षक मुसिकान अधरों पर लाती हुई अब तो तुम भूले से कभी-कभी मेरी ओर देखा करोगी। हे जादू का सा प्रभाव रखने वाली ! मैं उन व्यक्तियों में से नहीं हूँ जो इस प्रकार के दयाजनित प्रेम को घुटने टेक कर (विनम्रता से) उसे वरदान समझ स्वीकार करें।

पृष्ठ १५४

इस दीन अनुग्रह—दीन—प्रेम के लिए लालायित व्यक्ति के प्रति। अनुग्रह—दया। बोझ—कृतज्ञता का भार। प्रयास—प्रयत्न। व्यर्थ—विफल, बेकार।

अर्थ—हे श्रद्धा, तुम जो मुझे दीन समझ कर मेरे ऊपर कृपा कर रही हो, इसके भार से तुम मुझे दबा सकोगी, इस विचार को अपने मस्तिष्क से निकाल दो। तुम्हारा यह प्रयत्न अब व्यर्थ सिद्ध होगा।

तुम अपने सुख—स्वतन्त्र—पृथक् होकर। परवशता—परतंत्रता, विवशता। मन्त्र—सिद्धान्त।

अर्थ—अपने सुख को लेकर तुम सुखी रहो। मैं तुमसे पृथक् होकर रहना चाहता हूँ, चाहे इससे मुझे दुःख ही मिले। अब मैं इसी सिद्धान्त को बार बार दुहराऊँगा कि संसार में सबसे बड़ा दुःख है यह कि किसी का मन किसी के प्रति विवश हो जाय।

लो चला आज—संचित—एकत्र, सँजोया हुआ। । संवेदन—प्रेम

की अनुभूतियाँ। भार—बोझ, गठरी । पुँज—समूह । काँटे—कष्ट । कुसुम कुंज—सुख ।

अर्थ—प्रेम की जिन अनुभूतियों को मैंने अब तक सँजोया था, उनकी गठरी को आज मैं यहीं पटके जाता हूँ। इन्हें सँभालो। मुझे कष्ट मिले, मैं उसी में सुखी रहूँगा। तुम्हारा कुसुम-कुंज (सुख) तुम्हें ही फूले-फले।

कह ज्वलनशील—ज्वलनशील—ईर्ष्या की अग्नि में जलता। अंतर—हृदय। प्रांत—स्थान। निर्मोही—निष्ठुर, कठोर। श्रांत—थकना।

अर्थ—इतना कहकर और अपने उस हृदय को लेकर, जो ईर्ष्या की अग्नि के जल रहा था, मनु चले गए। वह स्थान तब सूना हो गया। कामायनी अत्यन्त अधीरता से इस प्रकार चिल्लाते चिल्लाते थक कर शांत हो गई कि अरे कठोर, रुक, मेरी बात तो सुनता जा।

इड़ा

कथा—श्रद्धा का परित्याग कर के मनु अनेक स्थानों में घूमते फिरे। पर शांति उन्हें कहीं नहीं मिली। एक दिन वे सारस्वत प्रदेश में जा निकले। सरस्वती नदी के किनारे बसा यह राज्य भूचाल से नष्ट-भ्रष्ट हो गया था। मनु थके हुए थे और एक स्थान पर लेटे लेटे सोच रहे थे: जीवन क्या है ? जगत् क्या है ? मनुष्य क्या है ? हमारे अस्तित्व का तात्पर्य और उद्देश्य क्या है ? कुछ हो, मैं जीवन का आदर्श जड़ हिमालय को नहीं बनाना चाहता, पवन और सूर्य को बनाना चाहता हूँ। मैं अकर्मण्यता को प्रश्रय नहीं देना चाहता, कर्मशील बनना चाहता हूँ। अच्छा, जीवन में इतनी भारी निराशा और असफलताओं के बीच हृदय में इतना भारी मोह कैसे बचा रहता है ? प्राणों की यह पुकार क्या चाहती है ?

उजड़े सारस्वत प्रदेश की ओर देखकर उन्हें बड़ी पीड़ा हुई। विजयी इंद्र के नगर की ऐसी दुर्दशा ! असुरों और देवों के द्वन्द्व के वे दिन याद आये जब अपने अपने विशिष्ट सिद्धान्तों को लेकर वे एक दूसरे का व्यर्थ विरोध करते थे। फिर उन्हें श्रद्धा की याद आई। इसी समय आकाश में काम की वाणी उन्हें सुनाई दी: तुम्हारे दुःख का कारण यह है कि संसार को नश्वर समझ कर तुमने उसे भोगना चाहा और भोग से बाहर सुख की कल्पना की ही नहीं। तुम स्वार्थी ही नहीं, अहंकारी भी हो। अपने दुःख के लिए अपना दोष नहीं देखते, दूसरों को दोषी ठहराते हो; श्रद्धा के केवल शरीर के प्रेमी रहे तुम, उसकी निर्मल आत्मा

के भीतर तुमने नहीं झाँका, अब तुम जिस नवीन मानव-राज्य की स्थापना करने जा रहे हो उसमें सदा द्वेष, कलह, संकीर्णता, भेद, निराशा पीड़ा का साम्राज्य रहेगा। भविष्य में प्राणियों की भक्ति में भेद, प्रेम में स्वार्थ रहेगा। रातदिन युद्ध होंगे। मनुष्य भाग्यवादी, अज्ञानी, अहंकारी होंगे। ललित-कलाओं में कभी किसी स्थायी वस्तु की सृष्टि न कर सकेंगे। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उनके जीवन में घोर अशान्ति छायी रहेगी।

काम की यह वाणी सुन मनु उदास हो गये। इतने में प्रभातकाल हुआ और उस रम्य वातावरण के पट पर उन्होंने एक अनिंद्य सुन्दरी बालिका को देखा। उसका नाम इड़ा था और वह उस प्रदेश की महा-रानी थी। जब वह मनु के पास आई तो दोनों ने एक दूसरे को अपना परिचय दिया। इड़ा ने जब अपनी उजड़ी राजधानी में मनु का स्वागत करना चाहा तब उन्होंने अपने दुःख की चर्चा उससे की। इड़ा ने कहाः मैं तो यह समझती हूँ कि सुख-प्राप्ति के लिए मनुष्य को अपनी बुद्धि से काम लेना चाहिए। ईश्वर पर निर्भर रहना सबसे बड़ी मूर्खता है। यह पृथ्वी अनंत ऐश्वर्यों से परिपूर्ण है और मनुष्य इसका एकमात्र स्वामी है। ऐसी दशा में, उसे क्या आवश्यकता पड़ी है कि वह किसी अलक्ष्य शक्ति के सामने सिर झुकावे।

यह बात मनु की समझ में आ गई और वे उस दिन से ध्वस्त सारस्वत साम्राज्य के पुनर्निर्माण में लगे।

पृष्ठ १५७

किस गहन गुहा—गहन—गहरी। अधीर—आकुल। झंझा—आँधी। विक्षुब्ध—क्रुद्ध। समीर—पवन। विकल—चंचल। परमाणु—अणु। अनिल—वायु। अनल—अग्नि। क्षिति—पृथ्वी। नीर—जल। विलीन—नष्ट। कटुता—पीड़ा। दीन—दुःखी। निर्माण—रचना। प्रतिपद—पद पद पर,। विनाश—नाश कर्म। क्षमता—योग्यता। संघर्ष—युद्ध, प्रतियोगिता। विराग—उदासीनता। ममता—अनुराग।

अस्तित्व—जीवन। चिरंतन—सनातन (Eternal) विषम—तीखा, नुकीला। लक्ष्य—उद्देश्य। शून्य—सृष्टि। चीर—पूर्ति।

किसी एकान्त स्थान में अधिष्ठित मनु जीवन और उसकी समस्याओं पर विचार कर रहे हैं :—

अर्थ—जैसे पवन क्षुब्ध होकर आकाश के खोखले से आँधी का रूप धारण करके निकल पड़ता है, वैसे ही जीवन भी किसी आकुल क्षुब्ध आँधी के प्रवाह के समान है, पर यह किस अगम्य गुहा (उद्गम) से प्रकट होता है इस बात का पता नहीं। जैसे आँधी धूलि के चंचल कणों को साथ लिये घूमती है, वैसे ही यह भी आकाश, वायु अग्नि, पृथ्वी और जल के चंचल अणु-समूहों से निर्मित है।

जीवधारी इधर स्वयं सभी से डरता है, पर साथ ही दूसरों को आतंकित भी करता जाता है। इस प्रकार भय की उपासना सी करता एक दिन वह मृत्यु के मुख में चला जाता है। संसार वैसे ही दीन है, पर मनुष्य अपने आचरण से जो पीड़ा पहुँचा रहा है, उससे जगत और भी अधिक दुःखी है।

पद पद पर वह अपनी योग्यता इस बात में प्रकट करता है कि अभी एक वस्तु का निर्माण करेगा, फिर दूसरे ही पल उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगा। जब से वह इस संसार में आया है, उसी समय से प्रकृति के अन्य जीवधारियों तथा सहजातियों से संघर्ष (प्रतियोगिता) में लग्न है। अभी सब से विरक्त हो जायगा, फिर एक ही क्षण के उपरांत सब पर अपना अनुराग बखेर देगा।

प्राणी एक तीखे तीर के समान है। इस संबंध में एक तो इस बात का पता नहीं कि सनातन जीवन (भगवान) रूपी धनुष से वह कब पृथक हुआ और दूसरे इस शून्यवन (शून्य में स्थित सृष्टि) में किस लक्ष्य को विद्ध करेगा—किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बढ़ रहा है ?

देखे मैंने वे—शृंग—चोटियाँ। हिमानी—हिम, बर्फ। रंजित—

युक्त, मंडित, सुशोभित। उन्मुक्त—स्वतन्त्र । उपेक्षा—तिरस्कार । तुंग—ऊंचे। प्रतीक—प्रतिमा । अबोध—सरला । स्तिमित—स्थिर, शांत। गत—रहित। स्थिर—जड़। प्रतिष्ठा—लक्ष्य, साधना। अबाध—स्वतंत्र। मरुत—पवन। अग—जड़। जग—चेतन। कंपन—हलचल। ज्वलनशील—जलता हुआ। पतंग—सूर्य।

अर्थ—मैंने पर्वत की वे चोटियाँ देखी हैं जो अचल हिम से मंडित हैं, स्वतंत्रता का अनुभव कर रही हैं, ऊँची हैं और नीचे की सभी वस्तुओं को इसी से मानो तिरस्कार की दृष्टि से देखती हैं। पृथ्वी भी जड़ है, पर इस विषय में इन्होंने उसके अभिमान को भी मिटा दिया है, क्योंकि प्राणियों के रूप में उस पर कुछ तो कोलाहल पाया जाता है, पर ये तो मानो जड़ता की पूरी प्रतिमा हैं। और इन्हें अपनी इस शुद्ध जड़ता का गर्व है।

पर्वत अपनी मौन साधना में मग्न हैं। बहने वाली सरला सरितायें मानो उसी के शरीर की पसीने की कुछ बूंदें हैं। उस स्थिर नेत्र वाले (भाव शून्य) को न शोक होता है और न क्रोध आता है।

इस प्रकार की मुक्ति में एक प्रकार की जड़ता है। अतः अपने जीवन का लक्ष्य मैं कम से कम इस प्रकार का नहीं रखना चाहता। मैं तो अपने मन की गति उस स्वतंत्र स्वभाव वाले पवन के समान चाहता हूँ जो पग पग पर हलचल की लहरें उठाता चलता है और जड़ तथा चेतन सभी को चूमता हुआ आगे बढ़ जाता है।

या फिर अपने जीवन का आदर्श उस सूर्य को बनाना चाहता हूँ जो जलता तो है, पर गति भरा भी है!

पृष्ठ १५८

अपनी ज्वाला से—ज्वाला—हृदय की आग। प्रकाश—आलोक, यहाँ आग लगाना। प्रारंभिक—श्रद्धा का घर। मरु अंचल—मरुभूमि। विकास—उन्नति का पथ। होड़—संघर्ष।

विजन—जनहीन। प्रान्त—स्थान। बिलखना—दुःखी होना। पुकार—पीड़ा। उत्तर—उलझन का समाधान। झुलसाना—कष्ट देना। फूल—कोमल हृदय व्यक्ति। कुसुम हास—फूलों के समान इच्छाओं का खिलना या पूरा होना।

अर्थ—जिस दिन जीवन के प्रथम सुन्दर निवास-स्थल में अपने हृदय की अग्नि (ईर्ष्या) से आग लगा कर उसे छोड़ आया, उसी दिन से वन, गुफा, कुंज, मरुभूमि आदि सभी स्थानों में इस उद्देश्य से घूम रहा हूँ कि कहीं अपनी उन्नति का मार्ग पा सकूं।

मै पागल हूँ। मैंने किसी पर दया नहीं की। क्या श्रद्धा से मैंने ही ममता का संबंध नहीं तोड़ा? किसी पर आकर्षित होकर मैंने उदारता से काम नहीं लिया—सदा अपना स्वार्थ ही देखा। सब किसी से कड़े संघर्ष के लिए मै तैयार रहा।

इस निर्जन भूमि में अपनी पीड़ा को लेकर में दुःखी घूम रहा हूँ। मेरी उलझन का समाधान आज तक कहीं न हुआ। लू के चलने से जैसे फूल मुरझा जाता है वैसे ही मैं जहाँ पहुँच जाता हूँ, वहीं सभी किसी को कष्ट देता हूँ। आज तक किसी कोमल हृदय को मैं प्रसन्न न कर पाया।

मेरे सारे सपने उजड़ चुके हैं। कल्पना-जगत में मैं लीन रहता हूँ अर्थात् ऐसी ऐसी कल्पनाएं करता हूँ जो कभी पूरी नहीं हो सकतीं। मैंने अपनी इच्छाओं को पूरा होते कभी देखा ही नहीं।

इस दुखमय जीवन—हताश—निराश, हीन। कलियाँ—सुख देने वाली वस्तुएं। कांटे—दुःख देने वाली वस्तुएं। बीहड़—सूना, ऊबड़ खाबड़। नितांत—एकदम। उन्मुक्त—स्वतंत्र, खुले हुए। निर्वासित—बहिष्कृत, घर से निकाला हुआ। नियति—भाग्य। खोखली शून्यता—अंतरिक्ष में बसा संसार। कुलाँच—उछलना, वेग धारण करना। पावन रजनी—वर्षा की रात, घोर निराशा। जुगनूगण—

सुखप्रद वस्तुएं। ज्योतिकणों—जुगनुओं, सुखों। विनाश—नष्ट छिन्न-भिन्न।

अर्थ—नीला आकाश उस नीली लता के समान है जिसमें अनेक टहनियाँ हों और जैसे टहनियों पर उजले फूल उलझे रहते हैं उसी प्रकार आकाश में सूर्य, चंद्र और नक्षत्रों के रूप में प्रकाश उलझा हुआ है। इस सुख से हीन दुःखी जीवन में जो आशा का प्रकाश शेष है वह भी नीले आकाश में उलझे आलोक के समान है। बाह्य जगत में अपने चारों ओर जिन वस्तुओं से मैं सुख प्राप्त करने की कामना करता हूँ, अंत में वे दुःख देने वाली सिद्धि होती हैं।

जीवन का सूना पथ मैं बहुत कुछ काट चुका हूँ और जब चलते चलते एक दम थक जाता हूँ तब रुक जाता हूँ। आज मैं अपने कर्मों के कारण ही अपने घर से बहिष्कृत (निकाल दिया गया) सा हो गया हूँ। कभी-कभी अशांत होने के कारण मैं रोने लगता हूँ। इधर प्रकृति में पर्वत की ये खुली चोटियाँ कोलाहल करती नदियों के रूप में मानो मेरी उस दशा पर हँसती सी रहती हैं।

इस जगत में भाग्य-नटी का बड़ा भयंकर छाया-नृत्य हो रहा है अर्थात् भाग्य ने सभी को आकुल कर रखा है। इस सूने खोखले में अर्थात् अंतरिक्ष में बसे संसार में पद-पद पर असफलता ही अधिक वेग धारण करती दिखाई पड़ती है।

वर्षा की रातों में जुगनुओं को दौड़कर जो इस आशा से पकड़ता है कि वह इन से प्रकाश पा सकेगा वह प्रकाश तो पाता नहीं, उल्टे उनकी हत्या और कर देता है। इसी प्रकार अपनी घोर निराशा में जिस वस्तु को भी मैं अपनी मुट्ठी में इसलिए भरता हूँ कि इससे सुख मिल जाय, इससे सुख तो प्राप्त होता नहीं, उल्टे उस सुख की सत्ता ही मिट जाती है। तात्पर्य यह कि जुगनुओं के समान प्रत्येक वस्तु

स्वतंत्र रहकर ही प्रकाश (सहारा) दे सकती है। परतंत्र होते ही उसकी शक्ति छिन्न भिन्न हो जाती है।

पृष्ठ १५९

जीवन निशीथ—निशीथ—रात। अंधकार—तम, निराशा। तुहिन—कुहरा। जलनिधि—समुद्र। वार पार—एक छोर से दूसरे छोर तक। निर्विकार—पवित्र, सात्विक। मादक—मस्त बना देने वाला। निखिल—समस्त। भुवन—सृष्टि। भूमिका—गोद। अभंग—पूरी। मूर्तिमान—साकार। अनंग—छिपे छिपे। अरुण—सूर्य, लाल रंग की, अनुरागमयी। ज्योति कला—प्रकाश। सुहागिनी—सौभाग्यवती स्त्री। उर्मिल—लहराती। कुँकुम चूर्ण—रोली या सिंदूर। चिर—सदैव। निवास विश्राम—रहने का स्थान। जलद—बादल। उदार—विस्तृत। केश भार—केश कलाप, केश समूह।

अर्थ—जीवन एक रात के समान है। जैसे अँधेरी रातों में संध्या होते ही आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक अंधकार नीले कुहरे के समुद्र के समान फैल जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवन में निराशा का घना समुद्र भर गया है। संध्याकालीन सूर्य की अनन्त पवित्र किरणें जैसे उस अँधेरे में समा जाती हैं, वैसे ही निराशा के छाते ही चेतना की बहुत सी उज्ज्वल किरणें (सात्विक भावनाएँ) लुप्त हो जाती हैं।

रजनी का तम जो समस्त सृष्टि को अपनी पूरी गोद में भर लेता है स्वभाव से इतना मादक होता है कि उसमें प्राण मस्त होकर शयन करते हैं। इसी प्रकार निराशा जो अपने में मनुष्य के सारे जीवन को समेट लेती है स्वभाव से ऐसी तामसी वृत्ति वाली है कि वह जिस पर छाती है उसे निष्क्रिय बना देती है—कुछ भी करने योग्य नहीं रहने देती। पर छिपे-छिपे प्रतिक्षण उसके स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है। अतः कुछ काल के लिए तो अंधकार के समान निराशा साकार होकर हमारी

आँखों के सामने खड़ी हो जाती है, पर एक समय आता है जब वह दूर हो जाती है।

प्रभातकाल होते ही रजनी के अंधकार में जैसे सूर्य-किरण की एक ज्योति-रेखा फूट उठती है उसी प्रकार निराशा में ममता की एक क्षीण उजली अरुणवर्णा (अनुरागमयी) रेखा विकसित होती है। यह ममत्व-भावना निराशप्राणी को वैसी ही प्रिय लगती है जैसी सौभाग्यवती महिलाओं के लहराते बालों के बीच माँग का सिंदूर भला लगता है। हे निराशा, प्राण तो एक प्रकार से सदैव तुम्हीं को अपना विश्राम-गृह बनाए रहते हैं अर्थात् प्राण तो सदैव तुम्हीं (निराशा) से घिरे रहते हैं। हे निराशा, तुम मोहरूपी बादलों की विस्तृत छाया हो—भाव यह कि मन में जितना भारी मोह होगा, उतनी बड़ी निराशा जीवन में उत्पन्न होगी। और अरी निराशा, तुम्हें तो माया-सम्राज्ञी का केश-कलाप कहना चाहिए—तात्पर्य यह है कि जैसे रमणी की शोभा उसके केशों से है उसी प्रकार माया के शासन की शोभा निराशा से है—यह जगत माया के अधिकार में है और वह निराशा फैलाकर ही अपना प्रभुत्व प्रकट करती है।

वि०—इस छंद में संध्या से लेकर प्रभातकाल होने तक का एक पूरा दृश्य निराशा के रूप में चित्रित किया गया है।

नोट—इस गीत में एक स्थान पर 'तुहिन' का विशेषण 'नील' आया है। कुहरा श्वेत होता है, पर अलंकार-विधान में दृश्य की अनुरूपता के लिए कवि को यह अधिकार प्राप्त है कि वह संभव के साथ ही हेरफेर के साथ असंभव उपनाम भी जुटा सकता है।

जीवन निशीथ के—ज्वलन धूम सा—आग से उठे धुयें के समान। दुर्निवार—जिनका निवारण न हो सके, अनिवार्य रूप से। लालसा—इच्छा। कसक—टीस, पीड़ा। मधुवन—मथुरा के पास यमुना के किनारे का एक वन। कालिंदी—यमुना। दिगन्त—दिशाएं।

क्रीड़ा नौकाएं—कागज की नावें। कुहुकिनि—मायाविनी। अपलक दृग—खुली या बड़ी आँखें। छलना—आकर्षण। धूमिल—धुंधली। नव कलना—नवीन सृष्टि। प्रवास—घर से दूर होना, सुख से दूर होना। श्यामल पथ—हरे भरे आम्रवनों में, अँधेरे पथ में। पिक—कोकिल।

अर्थ—जीवन एक रात है और उसकी निराशा उस रात में व्याप्त अंधकार—जिस में कुछ सूझता नहीं, जिसमें सुख का प्रकाश लुप्त हो जाता है।

हे निराशा, जैसे आग से धुएँ को पृथक नहीं किया जा सकता वैसे ही कामनाओं की आग से, तुरन्त उठे हुए उस धुएँ के समान तुम हृदय में अनिवार्य रूप से घुमड़ती हो जिससे छुटकारा नहीं। जैसे आग से चिनगारियाँ फूटती हैं; उसी प्रकार तुम्हारे कारण जो इच्छाएँ पूरी नहीं हो पातीं वे अपनी पूर्ति के लिए और जो टीस उठती है वह अपनी शान्ति के लिए पुकार मचाती रहती हैं।

यौवन मधुवन में बहने वाली यमुना के समान है। जैसे यमुना अपने जल से चारों दिशाओं (दो दिशाएँ लम्बाई की और दो चौड़ाई की) को छूकर बहती है उसी प्रकार यौवन अपनी सरसता से सभी को प्रभावित करता हुआ आगे बढ़ता है। शिशुओं की कागज की नावें जैसे कालिंदी में अनेक बार घूमकर भी किनारा नहीं पा सकतीं, उसी प्रकार यौवन-काल में भोले मन में अनंत भावनायें उठती हैं जो कभी पूरी नहीं होती।

जिस प्रकार मायाविनी रमणी की आँखों में अंजन-रेखा काली होने पर भी आकर्षक लगती है, उसी प्रकार हे निराशा, तुम अंधकारमयी होने पर भी यह आकर्षण छिपाये हुए हो कि किसी दिन तुम्हीं से आशा का जन्म होगा।

जिस प्रकार चित्रकार धुँधली रेखाओं ही से सुन्दर सजीव चित्रों को

सृष्टि कर देता है उसी प्रकार हे निराशा, तुम्हारे धुँधले आवरण में आशाओं की सजीव मूर्तियाँ चंचलता से घूमती रहती हैं।

जिस प्रकार हरे-भरे कुंजों में कोकिल कूकने लगती है और उसकी वह पुकार असीम आकाश में प्रतिध्वनित हो उठती है, उसी प्रकार हे निराशा, जब तुम सभी प्रकार के सुखों से हमें दूर करती हो तब अपने सामने अँधेरा पक्ष पाकर प्राण पीड़ा से भर कर कराह उठते हैं और तब अनन्त नीले नभ में अर्थात् सभी कहीं वह करुण-ध्वनि व्याप्त हो जाती है। भाव यह कि दुःखी मनुष्य को सभी स्थान पीड़ादायक प्रतीत होते हैं।

पृष्ठ १६०

यह उजड़ा सूना—विध्वस्त—नष्ट। शिल्प—कला कृतियाँ; भवन, मंदिर, मूर्ति आदि। नितांत—एकदम। विकृत—अशोभन, असुन्दर। वक्र—टेढ़ी-मेढ़ी। रुचि—इच्छा। विकीर्ण—यहाँ-वहाँ छितरी हुई। कुरुचि—वीभत्स दृश्य। पत्र—पत्ते। जीर्ण—सूखे। हिचकी—संकोच, हिचकचाहट। कसक—पीड़ा। आकाशवेलि—अमरवेल नाम की एक पीली लता जिसकी न तो जड़ होती है और न जिस पर पत्ते आते हैं, पर जिस वृक्ष पर यह छाती है उसे सुखा देती है, यद्यपि स्वयं हरी-भरी रहती है। अशांत—त्रिकंपित होकर।

सारस्वत प्रदेश में पहुँच कर और भूकंप से ध्वस्त नगर देखकर मनु कहते हैं—

अर्थ—यह नगर भी उजड़ गया, सूना हो गया। इसके सुख दुःख की व्याख्या इसमें खड़ी शिल्प की वस्तुओं और फिर उनके एकदम नष्ट-भ्रष्ट होने की क्रिया से की जा सकती है। अर्थात् सुन्दर भवन, मन्दिर, मूर्तियाँ जैसे कभी यहाँ खड़ी थी वैसे ही सुख कुछ दिन को आता है और जैसे वे फिर ढह गई हों वैसे ही वह एक दिन समाप्त हो जाता है और फिर दुःख छा जाता है।

खसे हुए महल टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ बना रहे हैं। यह दृश्य इस बात की सूचना देता है कि मनुष्य का भाग्य भी इसी प्रकार वक्र और अशांतिप्रद है।

अपूर्ण इच्छाओं की बहुत सी सुखद स्मृतियाँ यहाँ वहाँ अभी तक मडरा रही हैं अर्थात् मैं कल्पना कर सकता हूँ कि इसके बहुत से हत प्राणियों की बहुत सी कामनायें पूरी न हो सकी होंगी और मरते समय करुण श्वासों के रूप में ही वे उन सुखमयी स्मृतियों को यहाँ छोड़ गए होंगे।

जिस प्रकार पत्ता सूख कर डाल से गिर पड़ता है और फिर उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं रहता, इसी प्रकार मकानों के ढेर के नीचे आहत प्राणी और पशु आदि दबे पड़े हैं। यह दृश्य कितना वीभत्स (घिनौना) है।

इस नगर का स्वरूप बिगड़ गया है; अतः करुणा उत्पन्न होने पर भी इसे प्यार करने में हिचक लगती है। इसका कोना-कोना सूना हो गया है, जहाँ अब पीड़ा बरसती है।

जैसे अमरबेल जिस वृक्ष पर छाती है उसे तो सुखा देती है, पर स्वयं हरी-भरी रहती है, इसी प्रकार यह नगर उजड़ गया, पर इसकी कामनायें जीवित हैं।

समाधि के खँडहर पर यदि कोई दीपक जलादे तो थोड़ी देर तो वे विकंपित होकर जलते रहते हैं, फिर स्वयं ही बुझ जाते हैं, शांत हो जाते हैं। इसी प्रकार इस नगर का जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो गया है, इसे देखने वाले व्यक्ति के हृदय में थोड़ी देर को इसके संबंध में व्यथित करने वाली कुछ वृत्तियाँ उगती हैं, फिर थोड़ी देर में वे स्वतः मिट जाती हैं, शांत हो जाती हैं।

यों सोच रहे—श्रांत—थकित। सुखसाधन—सुखदायी। प्रशांत—घनी शांति वाला। अटकते—रुकते। विकल—व्याकुल। वाम गति—

दुर्दशा। वृत्रघ्नी—वृत्रासुर को मारने वाले इन्द्र। जनाकीर्ण—प्राणियों से भरे। उपकूल—नदी तट पर बसा नगर। दुःस्वप्न—अशुभ दृश्य। क्लांत—थका हुआ। ध्वांत—अंधकार।

अर्थ—मनु थक कर किसी स्थान पर पड़ रहे थे और इस प्रकार सोच विचार में लीन थे। जिस दिन से उन्होंने श्रद्धा का सुखदायी शांतिप्रद निवास-स्थान छोड़ा था, उसी दिन से वे कभी किसी मार्ग पर निकल जाते और कभी किसी मार्ग पर। इस प्रकार भूलते-भटकते-रुकते वे इस ऊजड़ नगर के निकट आये।

सरस्वती नदी तीव्र गति से बह रही थी। सन्नाटे से भरी काली रात थी। ऊपर आकाश में तारे टकटकी लगा कर पृथ्वी की वह व्यथा और दुर्दशा देख रहे थे।

वृत्रासुर को मारने वाले इंद्र का नदी तट पर बसा नगर जो कभी प्राणियों से भरा-पुरा था आज कैसा सूना पड़ा था! इसी स्थान पर देवताओं के अधिपति इंद्र ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी, यह स्मृति और भी दुःख देती थी।

जैसे कोई मनुष्य दुःस्वप्न देखकर आकुल हो उठे, उसी प्रकार वह पवित्र सारस्वत देश नष्ट-भ्रष्ट नगर के रूप में एक अशुभ दृश्य देख रहा था और किसी थके हुए प्राणी के समान गिरा पड़ा था। उस समय चारों ओर अंधकार छा गया था।

पृष्ट १६१

जीवन का लेकर—नव विचार—नवीन दृष्टिकोण। द्वन्द्व—संघर्ष। प्राणों की पूजा—शारीरिक सुख की प्राप्ति। आत्म विश्वास—अपनी शक्ति पर विश्वास। निरत—लीन। वर्ग—समूह। आराध्य—पूज्य। आत्म मंगल—आत्म कल्याण। विभोर—लीन। उल्लासशील—आनन्द का भोक्ता। शक्ति केन्द्र—शक्ति का उद्गम। उच्छलित—उछलना, फूटना। स्रोत—झरना, उद्गम। वैचित्र्यभरा—विचित्रताओं

से पूर्ण, अद्भुत घटनाओं से पूर्ण। संलग्न—लीन। दुर्निवार—कठिन।

अर्थ—जीवन के एक नवीन दृष्टिकोण के कारण असुरों का सुरों से संघर्ष प्रारम्भ हुआ। असुरों ने समझा शरीर का सुख ही सब कुछ है अतः उसकी पूजा (प्राप्ति) का प्रचार उनमें बढ़ा।

दूसरी ओर देवताओं को अपनी शक्ति पर इतना भारी विश्वास था कि वे पुकार पुकार कर कहते थे कि हमसे परे कोई शक्ति नहीं है। सदैव हम ही पूजनीय हैं। अपनी कल्याण कामना में लीन रहना ही उपासना है। हम ही आनंदमय और शक्ति के केन्द्र हैं। फिर हम किसे अपने से बड़ा स्वीकार कर उसकी शरण ग्रहण करें ?

जैसे झरने से जल की धारा फूटती है, उसी प्रकार हमारे भीतर वह शक्ति भरी हुई है जिसके उद्गम से आनन्द ही आनन्द उमड़ कर बहता है। जीवन का जैसे-जैसे विकास होता है, वैसे ही वैसे अद्भुत घटनाओं के दर्शन इसमें होते हैं। इस प्रकार यह संसार नवीन-नवीन वस्तुओं को जन्म देता हुआ सदैव बना रहता है।

इधर असुर शारीरिक सुख-प्राप्ति के प्रयत्न में लीन अपने जीवन में नवीन सुधार कर रहे थे और कड़े से कड़े नियमों में बँधते जा रहे थे।

वि०—इस द्वंद्व से यह नहीं स्पष्ट होता कि जब असुर शारीरिक सुख चाहते थे तब सुर क्या यही नहीं चाहते थे। यदि वे भी शरीर-सुख के अभिलाषी थे तब उनकी मनोवृत्तियों में कहाँ अंतर था ? और असुरों के वे कौन से नियम थे जिनमें वे बँधते जा रहे थे ? वास्तविक बात यह है कि शक्ति और सुख की प्राप्ति के लिए असुर घोर तपस्या करते थे और वरदान प्राप्त कर सबल होते थे, पर देवता अपने से परे किसी को मानते ही नहीं थे।

था एक पूजता—एक—असुर वर्ग। दीन—तुच्छ। अहंता—अहंकार। प्रवीण—पूर्ण। हठ—आग्रह। दुर्निवार—कठोर। विश्वास—

आस्था। तर्क—प्रमाण। विरुद्ध—विरोधी। ममत्वमय—ममता से भरा। आत्ममोह—अपने स्वार्थ की चिंता। उच्छृङ्खलता—वंधनविहीनता। भीत—डर कर। व्याकुलता—उत्सुकता। द्वन्द्व—संघर्ष। परिवर्तित—दूसरे रूप में। दीन—दुःखी।

अर्थ—इधर असुर लोग तुच्छ शरीर के सुख में लीन थे और उधर देवता अनेक अपूर्णताओं के विद्यमान रहने पर भी अहंकार के कारण अपने को पूर्ण समझते थे। अपने अपने विश्वासों के प्रति दोनों का कठोर आग्रह था और दोनों अपने विरोधियों के सिद्धान्तों में आस्था न रखते थे। असुर तर्क देकर देवताओं को अपनी बात समझाने का प्रयत्न करते और देवता प्रमाण देकर अपनी बात; पर जब वे एक दूसरे को न समझा सके तब उन्होंने एक दिन शस्त्र उठा लिये। ऐसी दशा में युद्ध होना अनिवार्य था। उनमें जो युद्ध प्रारम्भ हुआ उसने अशांति फैला दी। वे विरोधी भाव अब तक नहीं मिटे।

मैं एक ओर अपने स्वार्थ के प्रति घोर ममतावान हूँ और वंधनविहीन स्वतंत्रता चाहता हूँ, दूसरी ओर प्रलय के दृश्य को देखकर भयभीत हो उठा हूँ और यह मानने लगा हूँ कि देवताओं से भी प्रबल कोई शक्ति है अतः शरीर की रक्षा के लिए उस शक्ति की पूजा करने को मैं उत्सुक हूँ। अहंकार और उपासना के सिद्धान्तों को लेकर जो संघर्ष देवताओं और असुरों में कभी चला था वही आज दूसरे रूप में मेरे हृदय में चल रहा है और मुझे दुःखी बना रहा है।

मैंने वाह्य जगत में ही श्रद्धा को नहीं खोया, हृदय में भी आज किसी सिद्धान्त के प्रति श्रद्धा नहीं रही।

पृष्ठ १६२

मनु तुम श्रद्धा—आत्म विश्वासमयी—आत्मा की प्रेरणा के अनुकूल आचरण करने वाली। उड़ा दिया—उपेक्षा की। तूल—रुई। असत्—नाशवान्। धाने में झूलना—एक झटके में नष्ट हो जाने

वाली वस्तु। स्वर्ग—प्रमुख सुख। उलटी मति—दुर्बुद्धि। मोह—अहंकार। समरसता—समानता। अधिकार—सेविका। अधिकारी—स्वामी।

अर्थ—हे मनु, तुमने श्रद्धा को विस्मरण कर किया। आत्मा की प्रेरणा के अनुकूल पूर्णरूप से आचरण करने वाली उस नारी को तुमने इतना हल्का समझा जैसे रूई। इसी से उसकी बातों पर ध्यान न दिया।

तुम्हें यह विश्वास हो गया कि संसार नाशवान् है और जीवन एक कच्चे धागे में झूल रहा है अर्थात् किसी समय भी मृत्यु के एक हल्के झटके से वह नष्ट हो सकता है।

तुमने केवल उन पलों को सार्थक समझा जो सुख भोग में कटें। वासना की तृप्ति ही तुम्हारे लिए सबसे प्रमुख सुख की बात हुई। तुम्हारी दुर्बुद्धि ने यह थोथा ज्ञान तुम्हें समझाया।

'मैं पुरुष हूँ' इस अहंकार में तुमने यह भुला दिया कि नारी का भी संसार में अपना एक स्थान है। तुम नहीं जानते कि अधिकारी (पुरुष) और अधिकृत वस्तु (नारी) के बीच वास्तविक सम्बन्ध यह है कि उनमें पारस्परिक समानता का व्यवहार रहे अर्थात् पुरुष की यह बहुत भारी भूल है यदि वह अपने को स्वामी समझे और नारी को सेविका-मात्र।

असीम आकाश को कँपाती हुई जब यह तीखी ध्वनि गूंजी तब मनु के हृदय में काँटे सी कसक उठी।

यह कौन अरे—भ्रम—चक्कर। विराम—शान्ति। वरदान—सुखमय जीवन। अंतरंग—हृदय। अभिशाप ताप—दुःख और पीड़ा। भ्रान्त धारणा—झूठा पथ। सस्नेह—आग्रह के साथ। अमृतधाम—मधुर कल्पनाओं से परिपूर्ण। पूर्ण काम—संतुष्ट।

अर्थ—यह कौन बोल रहा है? यह तो निश्चय पूर्वक फिर वही कामदेव है जिसने मुझे चक्कर में डाल रखा है और सुख तथा शान्ति

का अपहरण किया है। इसकी वाणी को सुनते ही अतीत की जो घटनायें केवल नाममात्र को शेष रह गई थीं वे आँखों के सामने फिर एक एक करके आने लगीं।

उन बीते दिनों का सुखमय जीवन हृदय को आज. हिला जाता है। आज मेरा मन और शरीर दोनों दुःख और पीड़ा की आग में झुलसे जा रहे हैं।

मनु ने पूछा, मेरी बात का उत्तर दो। क्या अब तक जो मैंने किया वह ठीक नहीं था ? क्या तुमने अत्यंत आग्रह के साथ मुझसे यह नहीं कहा था कि मैं श्रद्धा को प्राप्त करूँ ? मैंने तुम्हारी बात मान कर उसे प्राप्त किया भी और उसने मुझे अपना वह हृदय अर्पित किया जो केवल मधुर कल्पनाओं से परिपूर्ण था। मैं जानना चाहता हूँ कि इतना होने पर भी मैं सन्तुष्ट क्यों न हुआ ?

पृष्ठ १६३

मनु उसने तो—प्रणय—प्रेम। मान—कसौटी (Standard)। चेतनता—अनुभूतियाँ। शान्त—सात्विक। प्रभा—कान्ति। ज्योतिमान—आलोकित। पात्र-जीवन या मन का प्याला। अपूर्णता—कमियाँ। परिणय—वैवाहिक बंधन। रुकना—विकास बंद करना। राग—स्वार्थ। संकुचित—सीमित। मानस—मन। जलनिधि—समुद्र। यान—नौका।

अर्थ—हे मनु, श्रद्धा ने तो अपना वह हृदय तुम्हें दे डाला जो छलविहीन प्रेम से परिपूर्ण और जीवन की वास्तविक कसौटी था। वह हृदय सात्विक अनुभूतियों की कान्ति से आलोकित था। पर तुमने श्रद्धा के चेतन हृदय को न देखा। उसके सुन्दर जड़ शरीर के प्रेमी बने रहे तुम। शोक की बात है कि सुन्दरता के समुद्र में से तुमने केवल हलाहल का प्याला भरा।

तुम अपने को बुद्धिमान समझते हो। मैं कहता हूँ तुम बहुत बड़े

मूर्ख हो। अपनी कमियों को तुम स्वयं ही नहीं समझ सके। श्रद्धा से विवाह करके उसके सहयोग से उन कमियों की पूर्ति तुम कर सकते थे। पर तुमने अपने विकास का पथ स्वयं बन्द कर दिया।

यह स्वार्थ-भावना कि 'जो कुछ हो मेरा हो' मनुष्य की पूर्णता को सीमित करती है और एक प्रकार का अज्ञान है।

जैसे छोटी सी नौका से समुद्र को नहीं पार किया जा सकता, उसी प्रकार मन के समुद्र को तुच्छ स्वार्थ की नैया से नहीं तरा जा सकता अर्थात् जिस मन में स्वार्थ समा गया उसका विकास बन्द हो जाता है।

वि०—समुद्र से अमृत और विष दोनों निकलते हैं। यदि उनमें से कोई सुधा को न लेकर हलाहल स्वीकार करता है तब उसे बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता। सुन्दरता बाह्य शरीर की भी होती है—यह विष है और आंतरिक (हृदय के सात्विक भावों की) भी—यह पीयूष है। जो व्यक्ति नारी के हृदय की अवहेलना कर केवल उसके शरीर पर दृष्टि रखता है वह मानो विषपान करने जा रहा है।

हाँ अब तुम—कलुष—दोष। तंत्र—विचार, मत। द्वन्द्व—विरोधी भाव। उद्‌गम—विकास। शाश्वत—सदा रहने वाला, चिरंतन। (Eternal)। एक मंत्र—निश्चित बात। खिंचे—प्रेरित, आकर्षित। तम—धुंआ। प्रवर्त्तन—चक्कर। नियति—भाग्य। यंत्र—पुर्जा, मशीन, दास। प्रजातंत्र—राज्य।

अर्थ—यह दूसरी बात है कि तुम स्वतंत्र होने के लिए, अपने दोष को दूसरों के सर मंढ़ना चाहते हो और एक भिन्न मत का प्रतिपादन कर रहे हो।

यह निश्चित सी बात है कि मन में विरोधी भावों का जन्म सदा होता रहा है, सदा होता रहेगा। डालियों पर काँटों के साथ ही मिले जुले नवीन फूल खिलते हैं। यह तुम्हारी रुचि के आकर्षण पर निर्भर है कि चाहे तुम काँटे चुन लो या फूल बीन लो। यही दशा मनोभावों की है।

मन की डाली में असत् वृत्तियों के साथ सत् भावनाओं के पुष्प खिलते हैं। इस संबन्ध में मनुष्य स्वतंत्र है कि वह भली बुरी कैसी ही भावनायें पोषित कर ले।

आग से प्रकाश भी फैलता है और धुँआ भी। तुम्हारे प्राणों में जो आग जगी उससे प्रेम का प्रकाश फूटा। तुमने उसे स्वीकार न किया। पर भ्रम से, हृदय में जलन छोड़ने वाली वासना के धुएँ को जीवन में प्रमुखता दी।

भविष्य में अपनी एक प्रजा बना कर जिस राज्य की स्थापना करने तुम जारहे हो वह राज्य एक शाप सिद्ध होगा। जैसे पहिए में लगे पुर्जे पहिए के साथ घूमते हैं वैसे ही वह प्रजा भाग्य से शासित होगी। अतः निरन्तर अशान्ति वहाँ चक्कर काटेगी।

पृष्ठ १६४

यह अभिनव मानव—अभिनव—नवीन। सृष्टि—समाज। द्वयता—भेद भाव। निरंतर—नित्य, सदैव। वर्णों—जातियों, यह ब्राह्मण है यह क्षत्री यह वैश्य ऐसा वर्गीकरण। वृष्टि—वृद्धि। अनजान—व्यर्थ की। विनिष्टि—विनाश। कोलाहल—अशांति। कलह—झगड़ा। अनंत—जिसका अन्त न हो। अभिलषित—इच्छित वस्तु। अनिच्छित—वह वस्तु जिसकी वांछा या कामना न हो। दुःखद—दुःख देने वाला। खेद—क्लेश। आवरण—पर्दा। जड़ता—अभावुकता, स्थूलता। गिरता पड़ता—डॉवाडोल। तुष्ट—संतुष्ट। यह—भेद भाव की। संकुचित दृष्टि—क्षुद्रभावना।

अर्थ—हे मनु, तुम्हारी वह प्रजा जो मानव-समाज के नाम से पुकारी जायगी भेदभाव में डूबी रहने के कारण नित्य नवीन जातियों की वृद्धि करती रहे। व्यर्थ की समस्याएँ खड़ी करके अपना विनाश अपने हाथों करे। उसमें अशांति और झगड़ों का कभी अन्त न हो। एकता उस जाति के लोगों में न रहे। एक दूसरे से वे दूर होते चले जायँ।

जिस वस्तु को पाने की कामना हो, वह तो उन्हें प्राप्त न हो, उल्टे ऐसा दुःखदाई क्लेश मिले जिसकी वांछा न हो। अपने हृदयों की अभावुकता के कारण मनुष्य दूसरों के हृदयों के भावों में न तो झाँक पायेगा और न उन्हें ठीक से पहचान पावेगा। इसी से संसार की स्थिति सदा डाँवाडोल रहेगी।

सब कुछ प्राप्त होने पर भी प्राणी असंतुष्ट ही रहेंगे। भेदभाव की क्षुद्र भावना उन्हें दुःख पहुँचायेगी।

अनवरत उठें कितनी—अनवरत—लगातार। उमंग—लालसा। चुम्बित हों—छुयें, बदल जायँ। जलधर—बादल। शृंग—चोटी। संतप्त—दुःखी। सभीत—भयभीत। स्वजन—अपने। तम—अंधकार। अमा—अमावस्या। दारिद्रय—दरिद्रता। दलित—कुचला जाना। बिलखना—दुःखी होना। शस्य श्यामला—धान्य से हरी भरी। प्रकृति-रमा—प्रकृति लक्ष्मी, पृथ्वी। नीरद—बादल। रंग बदलना—मक्कारी करना। तृष्णा—लोभ। ज्वाला—दीपक की लौ। पतंग—पतंगा।

अर्थ—हृदय में अनेक प्रकार की लालसायें बराबर उठती रहें, पर जैसे पहाड़ की चोटियों से बादल टकराते हैं वैसे ही इच्छाओं से आँसुओं का सम्पर्क रहे अर्थात् मन की कामनायें आँखों में आँसू लाने का कारण बनें। बादलों के बरसने से नदी बनती है और पहाड़ी भूमि में हाहाकार मचाती तथा तरंगायित होती वह आगे बढ़ती है। ठीक इसी प्रकार आँसुओं के बरसने से जीवन हाहाकार से परिपूर्ण हो जाय और उसमें व्यथा देने वाली वृत्तियाँ जगती रहें।

यौवन के वे दिन जो इच्छाओं से भरे रहते हैं पतझड़ के समान सूख जायँ और यौवन यों ही ढल जाय।

नये-नये संदेहों से दुःखी तथा भयभीत होने के कारण जो अपने हैं उन्हीं का विरोध ऐसे फैल जाय जैसे अंधकार से परिपूर्ण अमावस्या जिसमें कुछ सूझता नहीं।

अन्न से हरी-भरी यह प्रकृति-लक्ष्मी दरिद्रता से कुचली जाकर दुःखी रहे। जैसे बादलों में इन्द्रधनुष अनेक रंग झलकाता है उसी प्रकार दुःख पड़ने पर मनुष्य अपने आचरण को स्थिर न रख सकेगा, कभी कोई मक्कारी करेगा, कभी कोई। लोभ से वह वैसे ही भस्मीभूत रहेगा जैसे पतंग दीपक की लौ पर झुलस जाता है।

पृष्ठ १६५

वह प्रेम न—पुनीत—पवित्र। आवृत—ढकना, घिरा रहना। मंगल—शुभ। सकुचे—संकीर्णता का परिचायक। सभीत—कंपन की क्रिया, अस्थिरता का द्योतक। संसृति—संसार। करुण गीत—पीड़ा के गाने। आकांक्षा—कामना। रक्त—लालिमा से संयुक्त, रोते-रोते आँखों का लाल होना। राग विराग—प्रेम और द्वेष। शतशः—सैकड़ों टुकड़ों में। सद्भाव—मेल, सामञ्जस्य। विकल—आवेश में। पैंग—झूलना।

अर्थ—पवित्र भाव से कोई प्रेम न करेगा। स्नेह का रहस्य स्वार्थ हीनता में है, इसी से जीवन में मंगल छाता है। पर भविष्य में प्रेम स्वार्थ से ढका रहेगा और इसीलिए संकीर्णता और अस्थिरता का द्योतक होगा। ऐसी दशा में विरह संसार-व्यापी होगा और मनुष्यों का जीवन पीड़ा के गीत गाते गाते व्यतीत होगा।

कामनाओं के समुद्र का अन्त सदैव निराशा के रक्तवर्णी क्षितिज पर जाकर होगा अर्थात् हृदय की बड़ी से बड़ी अभिलाषायें ऐसी निराशा में जाकर परिणत होंगी जो रुलाते रुलाते आँखों को लाल कर दें। मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकार के सैकड़ों सम्बन्ध स्थापित कर किसी के प्रति अनुराग प्रदर्शित करेगा, किसी के प्रति द्वेष।

बुद्धि और हृदय एक दूसरे के विरोधी होंगे। दोनों में सामंजस्य न रहेगा। बुद्धि किसी मार्ग पर हृदय से चलने को कहेगी, पर हृदय अपने आवेश के कारण दूसरे ही पथ का अनुसरण करेगा।

वर्तमान के समस्त पल रोते-रोते कटेंगे और अतीत का सुख एक सुन्दर स्वप्न के समान फिर न लौटेगा। जय-पराजय के झूले पर तुम बड़े वेग से झूलते रहोगे अर्थात् मनुष्यों का सारा जीवन झगड़ते ही बीतेगा।

संकुचित असीम अमोघ—संकुचित—सीमित। अमोघ—अचूक, जो विफल न हो। अहंता—अहंभाव, अभिमान। रागमयी—मोहमयी। महासक्ति—गहरी आसक्ति। व्यापकता—आत्मा की महान् शक्ति। नित्य प्रेरणा—भाग्यवाद में विश्वास की वृत्ति के कारण। सर्वज्ञ—मैं सब कुछ जानता हूँ यह भाव। क्षुद्र—थोड़ी। छंद रचना—तुकबन्दी करना। कर्तृत्व—कर्म। नश्वर छाया—अस्थायी वस्तु। ललित कला—वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला और काव्य कला। नित्यता—अखंडता, अमरता। शुभ इच्छा—कल्याण करने की भावना।

अर्थ—मनुष्य के भीतर वह शक्ति छिपी है जिसकी कोई सीमा नहीं और जो विफल नहीं होती, पर अब वह सीमित हो जायगी।

ईश्वर की भक्ति भी भेदभाव से पूर्ण होगी अर्थात् कोई उसकी उपासना किसी रूप में करेगा और कोई किसी, उपासकों के गिरोह बन जायँगे और वे अपने को एक ही परम पिता का पुत्र समझ आपस में भाई चारे का भाव न रख एक दूसरे के विरोधी होंगे। परिणाम यह होगा कि उनका जीवन संकटों के पथ पर अग्रसर होगा अर्थात् जीवन संकटमय होगा।

या फिर यह होगा कि मनुष्य जो अपने अहंभाव के कारण अपूर्ण है कभी कभी मोह में पड़कर आवश्यकता से अधिक आसक्ति का परिचय देगा। भाव यह कि या तो विरोध करेगा या मोह करेगा। दोनों दशाओं में संकट का आवाहन करेगा।

मनुष्य भाग्यवादी होगा। फल यह होगा कि उसकी आत्मा की महान् शक्ति सीमित, अविकसित और अवरुद्ध रह जायगी।

भविष्य में मनुष्य बहुत थोड़ी विद्या प्राप्त करते ही ज्ञान में अपने को सर्वज्ञ समझेंगे और काव्य के क्षेत्र में तुकबंदियाँ करेंगे।

ललित कलाओं की रचनाओं में उनका सारा कर्म नश्वर होगा अर्थात् वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत-कला और काव्य-कला में वे कुछ भी ऐसा निर्माण न कर सकेंगे जो स्थायी रहे।

हमारे भीतर यह चेतना रहनी चाहिए कि जैसे जैसे काल व्यतीत हो रहा है, हम विकास की ओर जा रहे हैं, एक नित्य या अमर जीवन प्राप्त करने जा रहे हैं, पर मनुष्य हल्के आमोद-प्रमोद में लीन रहकर प्रत्येक क्षण अपनी इस अमरता से दूर होता जायगा और इस प्रकार समय को लगातार व्यर्थ नष्ट करेगा।

तुम इस बात को कभी भी न समझ सकोगे कि अनिष्ट की भावना से दूसरों का कल्याण करने की भावना कहीं श्रेष्ठ है। जब कभी भी तुम कुछ करना चाहोगे तभी पहले अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करोगे और परिणाम यह होगा कि कुछ भी नहीं कर सकोगे।

पृष्ठ १६६

जीवन सारा बन जाय—रक्त—युद्ध में रक्तपात। अग्नि—अस्त्र शस्त्र से युद्ध में अग्नि बरसना। अपने विरुद्ध—आत्मा की पुकार के प्रतिकूल कर्म। आवृत—ढकना। कृत्रिम—बनावटी। समतल—जहाँ समता का व्यवहार होना चाहिए। उन्नत—उठा हुआ, उद्धत, अकड़ कर चलने वाला। दंभ—अहंकार। स्तूप—टीला। संसृति—संसार। निधि—हृदय। छला जाना—विश्वासघात होना। वंचित—सुख से हीन। रुकना—फँसना, अटके रहना। प्रपंच—संसार। अशुद्ध—उल्टे मार्ग पर।

अर्थ—मनुष्य का सारा जीवन युद्धों में समाप्त हो। ऐसे भयंकर युद्ध हों कि अस्त्रों से अग्नि और प्राणियों के शरीर कटने से रक्त की

वर्षा सी हो जिसमें पवित्र भावों (करुणा, दया, अहिंसा) का ध्यान किसी को न रहे।

तुम स्वयं ही अनेक प्रकार की आशंकायें अपने मन में उत्पन्न करोगे, दुःखी होगे और वह करने को बाध्य होगे जिसे तुम्हारी आत्मा स्वीकार नहीं करेगी।

तुम्हारा जो वास्तविक स्वरूप है वह ढका रहेगा और एक बनावटीपन के साथ सबके सामने आओगे। तुम उस पृथ्वी पर जिस पर समता का व्यवहार वांछनीय है एक उद्धत अहंकार के सजीव टीले के समान होगे—अर्थात् जहाँ जाओगे वहीं केवल अपनी अहंकार-वृत्ति का परिचय दोगे।

श्रद्धा ही इस सृष्टि का रहस्य है अर्थात् जीवन के विकास और शांति के लिए करुणा त्याग आदि के जो आदर्श उसने तुम्हारे सामने रक्खे उनका यथोचित पालन करने से ही संसार में सुख-शान्ति के संचार और उसके विकास की संभावना है। उस श्रद्धा का हृदय अगाध पवित्र विश्वास से परिपूर्ण था अर्थात् वह छल-कपट-रहित थी। पर जहाँ अपने हृदय की समस्त नवीन भावों की निधि को उसने तुम्हें अर्पित किया वहाँ तुमने उससे विश्वासघात किया।

इसका परिणाम यह होगा कि तुम वर्तमान के सुख से वंचित होकर भविष्य की चिंता में अटके रहोगे। यह एक व्यक्ति को खोने से तुम्हारे जीवन की बात हुई, पर यदि मानव जाति भी श्रद्धा-विहीन रही अर्थात् दया, उत्सर्ग, परोपकार आदि के व्यापक गुणों को जीवन में न अपना सकी तो वह भी वर्तमान में अशांत और भविष्य-सुख की कल्पना में अटकी रहेगी।

इस प्रकार सारी सृष्टि ही उलटे मार्ग पर चलेगी।

वि०—इस छंद में एकमात्र श्रद्धा को जो जीवन का रहस्य बतलाया गया है उसे व्यापक दृष्टि से देखने पर यह अर्थ होगा कि प्राणी जब कभी

श्रद्धा-विहीन होगा अर्थात् सद्गुणों में आस्था न रखेगा तभी वह जैसे जीवन और जगत के रहस्य को जानने से वंचित रहेगा।

तुम जरा मरण—जरा—वृद्धावस्था। अनंत—सीमाहीन। अमरत्व—किसी वस्तु का अटूट क्रम। चिंतन—चिंता। प्रतीक—मूर्ति। वंचक—छली, धोखा देने वाला, विश्वासघाती। अधीर—अशांत। ग्रह रश्मि रज्जु—ज्योतिष के निर्णयों पर विश्वास रखना। लकीर पीटना—अंधानुकरण करना। अतिचारी—उच्छृंखल स्वभाव वाला। परलोक वंचना—स्वर्ग में सुख मिलेगा ऐसा झूठा विश्वास। भ्रांत—भटकना। श्रांत—थकना।

अर्थ—तुम वृद्धावस्था और मृत्यु के भय से सदा दुःखी रहोगे। अब तक जीवन में जिसे सब परिवर्तन समझते आये हैं—और इन परिवर्तनों की कोई सीमा नहीं—यदि गहरी दृष्टि से देखा जाय तो वही अमरता है इस रहस्य को एक दिन तुम भूल जाओगे और दुःखों से घबरा कर परिवर्तन को अमरत्व न मानते हुए उसका अर्थ तुम वस्तुओं का अन्त समझोगे। भाव यह है कि यदि सृष्टि में परिवर्तन न हो तो उसका विकास बंद हो जाय। फल टूटता है। उसके बीज से नवीन फल उत्पन्न होते हैं। अतः फल का टूटना, फल का अन्त नहीं अनंत फलों के अटूट क्रम को बनाये रखना है।

तुम सदैव दुःख और चिंता की मूर्ति बने रहोगे। श्रद्धा को तुमने धोखा दिया है अर्थात् सद्गुणों का तिरस्कार किया है, अतः तुम शान्ति न पा सकोगे।

तुम्हारी मानव-प्रजा ग्रहों की किरण-डोर से अपने भाग्य को बाँधेगी अर्थात् ग्रहों के प्रभाव से ही भाग्य बनता है ऐसा विश्वास करती हुई भाग्यवादिनी होगी और लकीर की फकीर हो जायगी अर्थात् प्राचीन प्रथाओं का अन्धानुसरण करेगी।

जो श्रद्धा अर्थात् सद्गुणों में आस्था रखता है वह यह जानता है

कि यह पृथ्वी ही हमारे सच्चे कल्याण का स्थान है; पर तुम्हारी प्रजा तो श्रद्धाहीन होगी अतः इस मर्म को न समझेगी।

उच्छृंखल स्वभाव वाला मनुष्य इस संसार को मिथ्या कहेगा और इस धोखे में रहेगा कि परलोक में सुख मिलेगा।

जो आशा करेगा वह पूरी न होगी और केवल बुद्धि-बल से काम लेने के कारण सदा भटकता ही फिरेगा।

जीवन भर प्रलय करते करते मनुष्य थक जायगा, पर विश्राम उसे कभी न मिलेगा।

पृष्ठ १६७

अभिशाप प्रतिध्वनि—अभिशाप—शाप। प्रतिध्वनि—वाणी। मीन—मछली, मत्स्य। मृदु—कोमल। फेनोपम—फेन के समान। दीन—मंद। निस्तब्ध—शान्त। मौन—चुप। तंद्रालस—खुमारी और आलस्य से परिपूर्ण। पुंजीभूत—घनीभूत। अदृश्य—भाग्य। काली छाया—अशुभ छाप। यातना—कष्ट। अवशिष्ट—शेष।

अर्थ—काम की वह शापभरी वाणी इस प्रकार आकाश में विलीन हो गई जैसे समुद्र के भीतर कोई महामत्स्य एकदम समा जाय। जैसे पानी में डुबकी लेने से बुद्बुदे उठने लगते हैं उसी प्रकार आकाशरूपी समुद्र में कामदेव के प्रवेश करते ही मृदु पवन की लहरों जैसी तरंगों के ऊपर दीन जैसे मन्द तारे झिलमिलाने लगे।

उस समय सारा संसार शांत और चुप सो रहा था तथा उस निर्जन प्रदेश पर खुमारी और उदासी का एक वातावरण घिर आया था। रात के घनीभूत अन्धकार के भीतर से रुक-रुक कर फूटने वाली वायु के समान मनु अधीर होकर उच्छ्वास भर रहे थे।

वे सोच रहे थे—आज फिर वही कामदेव हमारा भाग्य-विधाता बन कर आया जिसने पहले मेरे जीवन पर अपनी अशुभ छाप लगायी थी। अब तो जीवन के अन्त तक उसने आज मेरा भविष्य निश्चित कर दिया।

तक कष्ट भोगना है। पीड़ा से मुक्ति का कोई उपाय अब शेष नहीं रहा।

करती सरस्वती—नाद—ध्वनि। श्यामल—हरी भरी। निर्लिप्त—शांत। अप्रमाद—आवेशरहित। उपल—पत्थर। उपेक्षित—तिरस्कृत। कर्म निरंतरता—विश्रामहीन कर्म। प्रतीक—आदर्श। छाया—कांति। अद्भुत—विलक्षण। निर्विवाद—बे रोक टोक, संदेहहीन होकर। संवाद—संदेश।

अर्थ—हरी-भरी घाटी में सरस्वती नदी आवेशरहित होकर मधुर ध्वनि करती शांत भाव से बह रही थी।

मनुष्य के हृदय में जब निष्काम भावना दृढ़ हो जाती है तब विषाद उसके जीवन से निकल जाता है और प्रसन्नता छा जाती है। ठीक इसी प्रकार उसके किनारे पर पड़ पत्थर के टुकड़े पीड़ा देने वाले और जीवन को जड़ बनाने वाले शोक के समान थे जिनकी ओर दृष्टि न डालती हुई वह आगे बढ़ रही थी। उसकी धारा केवल प्रसन्नता की सूचक थी और उसके हृदय से केवल मधुर गान फूट रहा था। वह आगे बढ़ने के कर्म में निरंतर लीन थी मानो वह विश्रामहीन कर्म का सजीव आदर्श हो। कर्म ही जीवन है यह ज्ञान सदा के लिए उसके भीतर भरा हुआ था।

जैसे विरक्त मनुष्य के हृदय में शांत भावनायें टकराती हैं उसी प्रकार बर्फ जैसी शीतल लहरें रुक-रुक कर किनारों से टकरा रही थीं और जैसे वीतराग प्राणी के अन्तर में ज्ञान की उज्ज्वल किरणें फूटती हैं उसी प्रकार उन लहरों पर सूर्य की अरुणवर्णी किरणें अपनी कांति बिखेर रही थीं। शीतल लहरों पर अरुण किरणों का पड़ना एक विलक्षण दृश्य आँखों के आगे खींच रहा था।

सरस्वती नदी अपना रास्ता आप बनाती बे रोक-टोक चली जा रही थी। कल-कल ध्वनि में वह अपना कोई विशेष संदेश दे रही थी। वह उस पथिक के समान थी जो अपना पथ स्वयं निश्चित करता है, जिसे उस पथ के संबंध में किसी प्रकार का संदेह नहीं रहता और जो उस पथ

पर बढ़ता हुआ अपना संदेश उन व्यक्तियों को देता चलता है जिनसे मार्ग में भेंट हो जाती है।

पृष्ठ १६८

प्राची में फैला—प्राची—पूर्व। राग—लालिमा। मण्डल—घेरा। कमल—यहाँ कमल के समान सूर्य से तात्पर्य है। पराग—पीला प्रकाश, अरुण आभा। परिमल—गंध, यहाँ किरणों से तात्पर्य है। व्याकुल—प्रभावित। श्यामल कलरव—श्यामवर्ण के चहचहाने वाले पक्षी। रश्मि—किरण। आंदोलन—हलचल। अमन्द—भारी, बहुत, अत्यधिक। मरंद—मकरंद, पुष्प रस। रम्य—सुन्दर, मनोहर। फलक—चित्रपट, पटल। नवल—नवीन। महोत्सव—महान् उत्सव। प्रतीक—चिह्न। अम्लान—खिले। नलिन—कमल। सुषमा—सौंदर्य। सुस्मित सा—मुस्कराता सा। संसृति—संसार। सुराग—प्रकाश और अनुराग। खोया—मिट गया। तम विराग—वैराग्य रूपी अन्धकार।

अर्थ—पूर्व दिशा में मधुर लालिमा छा गई जिसके मंडल (घेरे) में अरुण आभा से भरा सूर्य उसी प्रकार उदित हुआ जैसे सुनहले पराग से भर कर कहीं कमल विकसित होता है। इसकी किरणें कमल की गंध की लहरों के समान ऐसी प्रभावशालिनी थीं कि उनके मादक स्पर्श से श्याम वर्ण के सब पक्षी चहचहा उठे।

आलोकित वातावरण में जिसे प्रकाश की किरणों से बुना हुआ उषा का अंचल कहना चाहिए प्रभातकाल का मधुर पवन सभी कहीं पुष्परस छिड़कने के लिए भारी हलचल मचाने लगा।

उस मनोरम वातावरण में एक सुन्दर बालिका सहसा इस प्रकार प्रकट हुई जिस प्रकार किसी सुन्दर चित्रपट पर एक नवीन चित्र अंकित हो उठे। जैसे किसी महान् उत्सव के दर्शन से आँखों में प्रसन्नता छा जाती है, वैसे ही उसे देखकर मनु के नेत्र तृप्त हो गए। वह खिले हुए कमलों की एक नवीन माला सी प्रतीत होती थी। कारण यह था कि

उसके नेत्र, उसका मुख, उसके कर, उसके चरण सभी तो कमल के समान थे।

उसका मुख-मंडल सौंदर्य की निधि था जिसके मुस्कराते ही अनुराग उसी प्रकार बरसने लगा जैसे सूर्य-मंडल से संसार पर रम्य अरुणिमा बरसती है और जैसे प्रकाश के फूटते ही अंधकार विलीन हो जाता है उसी भाँति उसकी मुसिकान-छटा ने मनु के हृदय में संसार के प्रति जो विरक्ति छागई थी उसे मिटा दिया।

बिखरीं अलकें ज्यों—अलकें—लटें, केश। शशिखंड—अर्द्ध-चंद्र। पद्मपलाश—कमल के पत्ते। चषक—कटोरी, मधुपात्र। मुकुल—खिलती हुई कली। आनन—मुख। वक्षस्थल—उरस्थल, सीना, छाती। संसृति—संसार। विज्ञान—भौतिक ज्ञान (Science)। ज्ञान—आध्यात्मिक ज्ञान। कलश—कलसा। वसुधा—पृथ्वी। अवलंब—सहारा। त्रिवली—पेट पर पड़ी तीन रेखाएँ। त्रिगुण—सत्, रज, तम। आलोक—उज्ज्वल। वसन—वस्त्र। अराल—तिरछा। ताल—संगीत में निश्चित्-समय में निश्चित-थाप का पड़ना, लय। गति—एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना—यह संगीत का भी एक पारिभाषिक शब्द है।

अर्थ—उसकी अलकें तर्कजाल के समान बिखरी थीं; भाव यह कि जैसे कोई प्रवीण तर्क करने वाला एक के उपरांत दूसरा, दूसरे के उपरांत तीसरा तर्क देकर अपने विपक्षी को अपने मत में फाँस लेता है, उसी प्रकार उस बालिका के छिटके बालों पर दृष्टि पड़ते ही मन बंधन में पड़ जाता था।

संसार के शीश पर मुकुट के समान दिखलाई पड़ने वाले अर्द्धचंद्र के समान अत्यंत उज्ज्वल उसका स्वच्छ ललाट था। उसकी आँखें कमलपत्र की बनी दो कटोरियों के समान थीं और जैसे मधुपात्र से मदिरा ढाली जाती है उसी प्रकार उनसे प्रेम और विराग दोनों टपकते थे।

खिलती कली जैसा उसका मुख था। यदि वह बोलती तो उसकी वाणी उसी प्रकार गान बन कर फूटती जैसे कलिका पर भौंरा गूँजता है। उसके दोनों उरोजों में संसार भर का ज्ञान विज्ञान भरा था अर्थात् उसके उरोज इतने सुरम्य और सुडौल थे कि भौतिक विज्ञान (Science) और आध्यात्मिक ज्ञान (Spiritual Knowledge) दोनों से जो बड़ी से बड़ी सिद्धि और आनंद की उपलब्धि होती वह उनके सामने तुच्छ थी।

उसके एक हाथ में पृथ्वी पर व्यतीत होने वाले जीवन के रस के सार से भरा हुआ कर्म का कलश था अर्थात् उसके एक कर को देख कर मनुष्य के हृदय में ऐसे कर्म करने की स्फूर्ति जगती थी जिससे वह पृथ्वी पर जीवन धारण करने का गहरे से गहरा रस (आनंद) प्राप्त कर ले। उसका दूसरा हाथ विचारों के आकाश को मधुर निर्भय सहारा दे रहा था भाव यह कि उसके दूसरे हाथ का सहारा जिसने लिया वह ऊँचे से ऊँचे और असंभव प्रतीत होने वाले विचारों को बड़ी मधुरता और सरलता से कार्य रूप में परिणत कर सकता था।

उसके पेट पर नाभि के ऊपर तीन बल पड़ते थे। ऐसा आभासित होता था जैसे प्राणी के अंतर में सत्व, रज और तम के जो तीन गुण निहित रहते हैं वे उन रेखाओं के रूप में बाहर आये हों। उसने अपने शरीर पर उज्ज्वल वर्ण का वस्त्र कुछ तिरछा करके धारण किया था।

उस बालिका के चरणों की गति कुछ इस प्रकार की थी कि प्रत्येक चरणचार एक विशेष ताल में बँध कर पड़ती थी।

वि०—यहाँ 'इड़ा' का रूप वर्णन ही प्रमुख है, पर रूपक के अनुसार वह बुद्धि की प्रतीक भी है; अतः कवि ने वर्णन इस प्रकार किया है कि उस रूप का भी निर्वाह हो गया है। बालों को इसी से मेघ-सा, भौंरे-सा या नाग-सा न कह कर तर्कजाल बतलाया है। तर्क बुद्धि का विशेष अस्त्र है। विज्ञान और ज्ञान भी सब बुद्धि के आधार पर चलते

हैं, उसमें समाहित रहते हैं। वह कर्म की विधात्री और विचारों को उत्तेजित करने वाली है। जीवन को वह गति देती और प्रकाश फैलाती है आदि।

पृष्ठ १६९

नीरव थी—नीरव—शांत। मूर्छित—स्थिर, निष्क्रिय, जड़। सर—तालाब। निस्तरंग—लहरों का न उठना, भावों का न उठना। नीहार—कुहरा, निराशा। निस्तब्ध—जड़वत्। बयार—पवन, आकांक्षाएँ। मुकुलित—अर्द्ध विकसित। कंज—कमल। मधु बूँदें—मकरंद, मधुर इच्छाएँ। निस्वन दिगंत—शब्दहीन वातावरण। रुद्ध—बंद। हेमवती—सुनहली, स्वर्णमयी। छाया—कांति। तंद्रा के स्वप्न—निद्रावस्था के सपने, अस्पष्ट विचारधारा। उजली माया—उषा की छटा, जीवन का आशाभरा उज्ज्वल पथ। वीचियाँ—लहरें, भाव।

अर्थ—मनु के प्राणों की पुकार शांत थी। जैसे सरोवर में जब तरंगें नहीं उठतीं तब वह स्थिर सा प्रतीत होता है वैसे ही मनु का जीवन भावों की चंचलता के अभाव में निष्क्रिय (जड़) सा हो रहा था। तालाब पर जैसे कभी-कभी सीमाहीन कुहरा छा जाता है वैसे ही मनु के जीवन को निस्सीम निराशा ने घेर रखा था। तड़ाग में लहरें जब नहीं उठतीं तब यही भान होता कि चंचल बयार आलस्य में आकर कहीं जड़वत् सो रही है, वैसे ही मनु के जीवन में निष्क्रियता आने से ऐसा लगता था मानो उनके मन की चंचल आकांक्षाएँ अलसाकर (शक्तिहीन होकर)जड़ बनी कहीं सो रही हैं।

जैसे अर्द्ध विकसित कमल की पँखुड़ियों में बंद मकरंद की बूँदें अपनी मधुरता को लेकर भीतर ही रहती हैं और भौंरा उनका पान नहीं कर पाता, उसी प्रकार मनु के मन की मधुर इच्छाओं की सहभोगिनी इस समय कोई न थी, इसी से वे उनके अंतर में ही बंद थीं और उनकी मधुरता का अनुभव केवल उनका मन ही चुपचाप कर रहा था। अब

तक वे एक शब्दहीन वातावरण में बंदी थे अर्थात् इस प्रवासकाल में उनसे बातें करने वाला कोई न था। इस बालिका को देखते ही उनके मुख से अकस्मात् ये शब्द निकल पड़े : अरे, सुनहली जिसके शरीर की कांति है, उज्ज्वल जिस की मुसिकान है, ऐसी प्राणधारिणी यह बालिका कौन है ?

प्रभातकाल में जैसे नींद के टूटने पर सपने विलीन हो जाते हैं और उषा की उजली छटा फैल जाती है, वैसे मनु अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए जिस अस्पष्ट विचारधारा में लीन थे वह दूर हो गई और उन्हें लगा कि अब आशाभरा एक उज्ज्वल पथ उनके सामने है।

इस बालिका की सुन्दरता के मधुर स्पर्श (दर्शन) से मनु गद्‌गद् हो उठे और उन्हें अपने समय अतीत जीवन की सुधि सताने लगी।

जैसे किरणों के छूते ही लहरें सरोवर में नृत्य करने लगती हैं वैसे ही इस बालिका की कांति के प्रभाव से मनु के मन के भाव आन्दोलित हो उठे।

प्रतिभा प्रसन्न मुख—प्रतिभा–असाधारण बुद्धिमत्ता (Genius)। प्रसन्न—दीप्त, आलोकित। सहज—सहज भाव से। फरकना—हिलना। स्मिति—मुसिकान। भौतिक हलचल—भूचाल। दिन आना—अच्छे दिनों का लौटना। मोल—लक्ष्य। द्वार—रहस्य।

अर्थ—प्रतिभा से दीप्त अपने मुख को खोल कर वह बालिका सहज भाव से बोली : मेरा नाम श्रद्धा है। पर यहाँ घूमने वाले तुम कौन हो ! अपना परिचय दो। जिस समय उसने यह प्रश्न किया उस समय उसकी नुकीली नासिका के पतले पुट फरक गए थे और उसके अधरों पर किंचित् मुस्कान थी।

मनु ने उत्तर दिया : हे बाले ! मेरा नाम मनु है। संसार पथ का मैं एक पथिक हूँ और दुखी हूँ। श्रद्धा बोली : अपने देश में तुम्हारा स्वागत करती हूँ। क्या तुमने देखा नहीं है कि मेरा यह सारस्वत प्रदेश

आज उजड़ गया है। यह मेरा राज्य था, पर भूचाल से यह अस्तव्यस्त (नष्ट) हो गया। फिर भी मैं यहाँ इस आशा से रुकी हुई हूँ कि संभव है मेरे दिन फिर बदलें।

मनु बोले : हे देवी मैं तुम्हारे निकट यह जानने के लिए आया हूँ कि हमारे जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है ? संसार का भविष्य क्या है, इस रहस्य का उद्घाटन भी मैं तुमसे चाहता हूँ।

पृष्ठ १७०

इस विश्व कुहर—कुहर—छिद्र, गुफा। इंद्रजाल—जादू। नखतमाल—नक्षत्र समूह। भीषणतम—घोर भयंकर। वह—ईश्वररूपी। महाकाल—महामृत्यु। सृष्टि—ऐसी वस्तु जिसका स्वभाव निर्माण और विकास हो। अधिपति—स्वामी। सुख नीड़—सुख के घोंसले, छोटे से छोटा सुख। अविरत—निरंतर। विषाद—शोक। चक्रवाल—घेरा। यह पट—दुःख का परदा।

अर्थ—जिसने संसार-रूपी इस गुफा में ग्रह, तारा, बिजली और नक्षत्रों के समूह का जादू रच कर फैलाया है, वही महामृत्यु बनकर समुद्र की घोर भयंकर तरंगों के समान (जो अपने कोलाहल से सभी को कँपाती और अपनी चपेट से सब कुछ नष्ट कर देती हैं) प्राणियों के प्राणों के साथ खेल खेल रहा है।

तब क्या उस निष्ठुर की यह कठोर रचना इसलिए है कि पृथ्वी के छोटे से छोटे प्राणी को भयभीत करे ? तब क्या केवल विनाश की ही विजय होती है ?

यदि ऐसा है तो संसार के मूर्ख मनुष्य जिस वस्तु का स्वभाव 'विनाश' है उसे आज तक 'सृष्टि' क्यों समझते आ रहे हैं—सृष्टि का तो अर्थ निर्माण का होता है विनाश का नहीं। रहा इस संसार के स्वामी (रचयिता) के संबंध में। वह कोई होगा ! उसकी चिंता तुम क्यों करते

जिसके भीतर शोक और मृत्यु को प्राप्त कर न जाने कितने जीवन उजड़ गए, न जाने कितने प्रेमी-प्रेमिकाओं का मधुर मिलन हुआ और फिर उनके हृदय विरह में उसी प्रकार क्रंदन करने लगे जिस प्रकार चकवा चकवी बिछुड़ कर तपड़ते हैं।

मनु ने आज अपने सिर पर कर्म का कठोर भार सँभाला। मनुष्य संसार के अपने साम्राज्य को स्वयं सँभालेगा यह जानकर उषा प्राची दिशा के आकाश में प्रसन्न होकर मुस्कराई। मलयपवन की चंचल बाला भी यही कौतुक देखने को मानो चल पड़ी। इधर तारों का दल विलीन हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो उषा के रूप में प्रकृति के कपोलों में लालिमा निरख कर मदिरा-सेवियों के समान तारागणों का दल आकर्षित होकर गिर पड़ा है।

बन में खिले हुए कमलों और भौरों की छेड़छाड़ चल रही थी। आज पृथ्वी सभी प्रकार के शोक से रहित थी।

पृष्ठ १७२

जीवन निशीथ का—निशीथ—रात। अंधकार—अँधेरा और निराशा। आवृत—ढकना, छिपाना। निहार—देखकर। कलरव—मधुर ध्वनि। मनोभाव—भावनायें। विहंग—पक्षी। भावभरी—उत्साहभरी। बुद्धिवाद—बुद्धि के निर्णय पर काम करने की पद्धति। विकल्प—अनिश्चय। संकल्प—दृढ़ता। द्वार खुलना—प्रारम्भ होना।

अर्थ—मनु बोले : हे इड़ा अत्यन्त उदारतापूर्वक आज तुम मेरे जीवन में उषा के समान आई हो। उषा के आगमन पर जैसे रात का अंधकार अपना मुँह ढक कर क्षितिज के अंचल में छिपने के लिए भाग जाता है उसी प्रकार मेरे जीवन की निराशा तुम्हारे दर्शनमात्र से आज अपना मुँह छिपाकर कहीं दूर भाग गई है।

उषा के आगमन पर जैसे सोये हुए पक्षी जगकर मधुर ध्वनि करने लगते हैं, वैसे ही तुम्हारे दर्शन से मेरी समस्त शुभ भावनाएँ जग कर

अपनी अभिव्यक्ति कर रही हैं। उषाकाल में जैसे आकाश से फूट कर किरणों की लहरें पृथ्वी पर आकर नृत्य करती हैं, उसी प्रकार मेरे मन में उत्साह से भरी प्रसन्नता खिलखिला कर घुमड़ रही है।

आज जब मैंने सभी का सहारा छोड़ कर बुद्धिवाद का आश्रय लिया तब मानों तुम्हारे रूप में मूर्तिमती बुद्धि को प्राप्त कर लिया और अपने विकास की ओर सरलता से बढ़ चला। अब तक जिन बातों को लेकर मैं संदेह की स्थिति में ही था, कि इन कर्मों को करूँ अथवा न करूँ, आज उन्हें दृढ़तापूर्वक सम्पन्न करने का निश्चय कर चुका हूँ। मेरा जीवन आज से केवल कर्मों की पूर्ति के लिए रहे और इस से मेरे लिए सुख का द्वार खुल जाय।

स्वप्न

कथा—मनु के चले जाने से श्रद्धा का जीवन सूना हो गया। उस का मधुर सौंदर्य फीका पड़ गया। आज वह मकरंदहीन सुमन, रंगहीन रेखाचित्र, प्रभा-विहीन चंद्र और प्रकाश-विहीन संध्या के समान थी। मनु ने उसकी अकारण उपेक्षा की थी। अपने कलेजे के दर्द को केवल वही जान सकती थी। एक उदास संध्या में बैठी वह सोचने लगी: जीवन में सुख की मात्रा अधिक है अथवा दुःख की, मैं जान न पाई। संसार का कोई रंग स्थिर नहीं। इन्द्रधनु उगता है। पल भर में विलीन हो जाता है। मे ा दीपक जल रहा है। आज कोई पतंगा भी इसके चारों ओर नहीं मँडरा रहा। न सही, इसका अकेले जलना ही अच्छा है। कोकिल कूक रही है। क्यों? मेरे आँसू बह रहे हैं। पर इनके बहने से अब लाभ? अतीत की बातें रह रह कर क्यों याद आती हैं? जब कोई प्यार करने वाला ही नहीं, तब प्यार की बातों को सोचने से ही क्या सिद्ध होगा? पर प्रेम प्रतिदान क्यों चाहता है? संभवतः प्रेम की सब से बड़ी दुर्बलता यही है कि वह बदले में कुछ चाहता है। पक्षियों के घोंसले तक चहचहाहट से परिपूर्ण हैं। पर मेरी कुटिया कितनी उदास है! ओह!!

इतने में किसी ने 'मा' शब्द कहा। श्रद्धा की तल्लीनता भंग हो गई। अपने बच्चे की आवाज़ पहचान कर वह उठ खड़ी हुई। एक धूल-धूसरित शिशु उससे आकर लिपट गया। बोला: मा, आज मुझे ऐसी नींद आवेगी कि टूटने की नहीं। श्रद्धा ने स्नेह से उसे चूमा और फिर दोनों मा-बेटे थोड़ी देर में सो गए।

श्रद्धा ने स्वप्न देखा : एक स्थान पर मनु बैठे हैं और इड़ा उनकी पथ-प्रदर्शिका बनी हुई है। वह न स्वयं विश्राम लेना जानती है और न दूसरे को लेने देती है। उसे मनु की प्रेरकशक्ति, उनकी उन्नति का कारण, उनकी सफलता की तारिका कहना चाहिए। उसकी बुद्धि और मनु के प्रयत्न से आज सारस्वत नगर कुछ का कुछ हो गया है। दृढ़ प्राचीरों के भीतर भव्य-महल निर्मित हुए हैं, जहाँ न वर्षा में कोई कष्ट मिलता है न ग्रीष्म और शीतकाल में। बाहर देखो, तो कहीं खेतों में कृषक हल चला रहे हैं, कहीं धातुएँ गल रही हैं, कहीं लोहार घन का आघात कर रहे हैं, कहीं शिकारी बन से विचित्र उपहार ला रहे हैं। दूसरी ओर मालिनें कलियाँ चुन रही हैं; कुसुम-रज एकत्र कर रही हैं। कहीं रमणियों के कोमल कंठ से मधुर तानें उठ रही हैं। प्रजा-वर्गों में विभाजित हो गई है और पुरवासी काम बाँट कर स्वकर्म में लीन हैं। विज्ञान की सहायता से व्यवसायों की विलक्षण उन्नति हुई है।

श्रद्धा ने सिंहद्वार में प्रवेश किया। उसने वहाँ सुन्दर भवनों और सुरभित गृहों को देखा। उन से लगे बहुत से उद्यान भी दृष्टिगोचर हुए जिनमें इधर प्रेमी-प्रेमिका गले में बाहें डाल घूम रहे थे उधर पराग से सने रसीले मधुप गुन-गुन शब्द कर रहे थे। एक दिशा में एक नवीन मंडप के नीचे सिंहासन था जिस पर मनु आसीन थे। उनके हाथ में एक प्याला था जिसमें इड़ा मादक रस ढाल रही थी। मनु ने मदिरा पीते पीते प्रश्न किया : अब और क्या करने को शेष है ? इड़ा बोली : अभी हुआ ही क्या है ! मनु कह उठे : ठीक, नगर तो बस गया, पर मेरा हृदय-प्रदेश तुम्हारे बिना सूना-सूना सा है। इस बात को सुन कर इड़ा चौंक पड़ी। उसने समझाया कि मैं आपकी प्रजा हूँ, आपकी पुत्री के समान हूँ। मेरे प्रति ऐसी भावना आप न रखें। पर मनु ने कुछ नहीं सोचा। आवेश में आ उसका आलिंगन किया। उनके इन अनुचित

कर्म पर देवता अप्रसन्न हो गए और शिव ने क्रोध में भर कर अपना अग्नि-नेत्र खोल दिया तथा पिनाक उठा लिया। प्रकृति काँपने लगी।

प्रजा में हलचल मच गई। आकुल होकर सब राजद्वार पर शरण पाने आये। इस सुअवसर को देख इड़ा खिसक गई। कोलाहल से घबराकर मनु एक कोने में जा छिपे। उन्हें पता चला कि इड़ा भी विद्रोहियों के बीच खड़ी है। इससे वे बड़े क्षुब्ध हुए। प्रहरियों को उन्होंने द्वार बंद करने की आज्ञा दी और स्वयं शयनागार में सोने के लिए चले गए।

श्रद्धा यह देखकर स्वप्न में काँप उठी। रात भर उसे नींद नहीं आई। सोचने लगी : ओह, यह व्यक्ति मुझसे दूर होते ही इतना विश्वासघाती हो गया!

पृष्ठ १७५

संध्या अरुण जलज—जलज—कमल। केसर—फूलों के बीच में पतली सीकें, पराग। तामरस—लाल कमल यहाँ सूर्य से तात्पर्य है। कुंकुम—केसर, रोली। काकली—मधुर ध्वनि।

अर्थ—लाल कमल रूपी सूर्य मुरझाकर (मंद होकर) कब गिर (छिप) गया, इसका पता तक संध्या को न था। अतः उस कमल के लाल पराग (अस्त हुए सूर्य की आकाश में फूटी लालिमा) से ही अपना जी वह इस समय हल्का कर रही थी।

थोड़ी देर में उसके क्षितिज रूपी ललाट पर लालिमा का जो केसर-बिंदु लगा हुआ था वह भी अंधकार के हाथ से पोंछ दिया गया।

कमल की कलियाँ क्योंकि संकुचित होने जा रही थीं, अतः कोकिल की मधुर कूक उन पर व्यर्थ छा रही थी। उसे सुनने वाला कोई न था।

वि०—संध्या के वातावरण से उदासी, उसके भाल से कुंकुम-बिंदु के मिटने से सौभाग्य-हीनता तथा कोकिल की काकली के व्यर्थ मँडराने से आनन्ददायक वस्तुओं में भी श्रद्धा के पक्ष में उत्साह-हीनता

प्रदर्शित करना कवि का लक्ष्य है। अतः विरह वर्णन की दृष्टि से यह पृष्ठभूमि अत्यन्त उपयुक्त हुई है।

कामायनी कुसुम—कुसुम—पुष्प। मकरंद—पुष्प रस। हीन कला शशि—कांतिहीन चंद्रमा।

अर्थ—पृथ्वी पर कामायनी उस पुष्प के समान पड़ी थी जिसका रस झड़ गया हो अर्थात् पति द्वारा परित्यक्ता होने पर उसके जीवन में कोई रस नहीं रहा था। वह उस चित्र के समान थी जिसके रंग धुल गए हों और केवल रेखाएँ शेष रह गई हों। भाव यह कि शरीर का ढाँचा मात्र रह गया था, रक्त सूख गया था। वह उस प्रभातकालीन कांतिहीन चंद्रमा के समान थी। जिसकी चाँदनी की कौन कहे एक किरण तक न दिखाई देती हो। तात्पर्य यह कि उसका शरीर इतना फीका पड़ गया था कि रूप की सारी छटा विलीन हो गई थी। वह उस संध्या के समान थी जिसमें न दिन में झलकने वाला सूर्य रहता है और न रात में चमकने वाले चंद्रमा और तारागण। अर्थ यह कि एक व्यक्ति के जीवन में से निकल जाने पर उसका सारा जीवन अंधकारपूर्ण हो गया और केवल उदासी शेष रह गई।

जहाँ तामरस इंदीवर—तामरस—लाल रंग का कमल। इंदीवर—नीले रंग का कमल। सित शतदल—सफ़ेद रंग का कमल। नाल—कमल का डंठल, मृणाल। सरसी—तालाब, सरोवर। मधुप—भौंरा और मनु। जलधर—बादल। शिशिर कला—पतझड़, माघ फाल्गुन की जाड़े की ऋतु। स्रोत—सोता। हिमजल—बर्फ़ के नीचे।

अर्थ—श्रद्धा उस सरोवर के समान थी जिसमें अपने डंठलों पर ही लाल, नीले और श्वेत रंग के कमल मुरझा गए हों और यह देखकर भौंरे उधर चक्कर न काटते हों। वह उस बादल के समान थी जिसमें न बिजली चमकती हो और न श्यामलता शेष रही हो। उस पतले सोते के समान थी वह जो शीतकाल में बर्फ के नीचे जम गया हो।

वि०—कमल शरीर के अंगों के उपमान हैं। लाल कमल मुरझा गए का अर्थ है उसके अंगों से लालिमा निकल गई। नीले कमल के मुरझाने का भाव है उसकी काली आँखों में वह रस न रहा। इसी प्रकार श्वेत कमल के मुरझाने का तात्पर्य है उसका उजला वर्ण फीका पड़ गया। भौरे से तात्पर्य मनु से है जो उसके शरीर का रस लेकर कहीं दूर चला गया। बिजली की प्रसिद्धि विह्वलता के लिए है और बादलों का काला होना उन में जल भरे रहने की सूचना देता है। अतः बादलों में बिजली न रही से यह समझना चाहिए कि श्रद्धा का मन उत्साहहीन रहता है और श्यामता मिट गई का इसी प्रकार अर्थ होगा रस निश्शेष हो गया! हिम कठोरता का प्रतीक है। श्रद्धा का प्रेम निरंतर प्रवाहित होने वाले जल के सोते के समान था, पर आज मनु के कठोर व्यवहार से उसकी गति रुक गई।

अर्थ—स्रोत शब्द पुल्लिंग है अतः 'शिशिर कला की क्षीण स्रोत' लिखना अशुद्ध है। 'की' के स्थान पर 'का' होना चाहिए। यह अशुद्धि कवि की अपनी है।

एक मौन वेदना—मौन—चुपचाप, सन्नाहट। वेदना—करुणा। विजन—जनहीन प्रदेश। झिल्ली—झींगुर। झनकार—झन-झन शब्द। अस्पष्ट—जिसके कारण का ज्ञान न हो। उपेक्षा—तिरस्कार। वसुधा आलिंगन करना—पृथ्वी को छूना, पृथ्वी पर लेटना या पड़ा रहना।

अर्थ—जिस निर्जन स्थान में झिल्ली का भी झन झन शब्द न होता हो वहाँ करुणा और सन्नाहट का वातावरण जैसे छा जाता है वैसे ही श्रद्धा के जीवन में सुख की क्षीण ध्वनि तक न थी, इसी से उसके सूने जीवन में करुणा चुप चुप बरसने लगी। वह संसार की उपेक्षिता थी, पर उसका क्या अपराध था यह बात वह स्पष्ट रूप से न जानती थी। उसके जीवन में इतना दुःख था कि उसे मूर्तिमती पीड़ा ही कहना चाहिए।

किसी हरे-भरे कुन्ज की केवल छाया के समान वह पृथ्वी पर पड़ी थी अर्थात् एक दिन था कि वह शरीर से स्वस्थ थी और सुखी थी, पर आज उसका सुख-स्वास्थ्य मिट चुका था और उनकी छाया (स्मृति) मात्र शेष रह गई थी। जैसे छोटी सी नदी में जब बाढ़ आ जाती है तब वह असीम हो उठती है वैसे ही मनु उसे एक छोटी सी बात पर छोड़ कर चले गए थे और वह सोचती थी कि यह विरह क्षणस्थायी है, पर कुछ दिनों में जब उसे पता चला कि अब वे कभी लौट कर न आयेंगे, तब उसका विरह असीम हो उठा।

नील गगन में—विहग बालिका—पक्षिणी। विश्राम—चैन। तम घन—काले बादल, रात का अँधेरा, दुःख। स्मृति—याद।

अर्थ—नीले आकाश में पक्षिणी के समान दिन भर उड़ती उड़ती किरणें मानों थक गईं और इसी से संध्या होते ही छिप गईं तथा स्वप्न लोक में नींद की सेज पर उसी प्रकार जा लेटी जैसे पक्षी बन में वृक्षों पर बसेरा लेने लगते हैं। पर उस श्रद्धा विरहिणी के जीवन में तो एक घड़ी भर के लिए चैन न था। उसे न दिन में नींद आती थी न रात को।

जैसे काले बादलों में बिजली चमक उठती है उसी प्रकार जब रात का अंधकार घिरा तब श्रद्धा के मन में मनु संबंधी स्मृति तीव्र हो उठी।

पृष्ठ १७६

संध्या नील सरोरुह—सरोरुह—कमल। श्याम पराग—श्याम वर्ण की पुष्परज। शैल—पर्वत। गुल्म—पौधे। रोमांचित—रोमों का खड़ा होना। नग—पर्वत।

अर्थ—संध्या रूपी नील कमल से अंधकार रूपी श्याम पराग ने बिखर कर पर्वत की घाटियों के अंचल को चुर से भर दिया अर्थात् पहाड़ की तलहटी में संध्या होते ही घना अंधकार छा गया।

श्रद्धा अपनी दुःख-गाथा गाने लगी अतः पहाड़ पर उसे तृण और

पौधे ऐसे प्रतीत होते थे मानो उस विरह-कथा को सुनकर पर्वत रोमांचित हो उठा है। वहाँ श्रद्धा के खोजने से पहाड़ों से प्रतिध्वनि उठी मानो श्रद्धा जो सूनी साँसें फेंक रही थी उनमें वे स्वर भर रहे हों।

जीवन में सुख—मंदाकिनी—गंगा नदी। नखत—तारे। सिंधु—समुद्र। प्रतिबिंब—पहलू। रहस्य—भेद।

अर्थ—मंदाकिनी नदी की ओर देखकर श्रद्धा कहने लगी: हे गंगे! क्या तुम बतला सकती हो कि जीवन में सुख की प्रधानता है अथवा दुःख की? क्या तुम गणना करके बतला सकती हो कि आकाश में तारे जो अपने प्रकाश से सुख के प्रतीक हैं अधिक हैं अथवा समुद्र के बुदबुद जो अपने गीलेपन से दुःख के परिचायक हैं? तुम सुख और दुःख दोनों को जीवन में देखती हो क्योंकि इधर तो तुममें तारे प्रतिबिंबित हो रहे हैं और उधर तुम समुद्र से मिलने जा रही हो जहाँ बुदबुदों का ज्ञान भी तुम्हें होगा। क्या तुम इसे भेद का पता लगा सकती हो कि कहीं तारे और बुदबुदे दो भिन्न वस्तु न होकर किसी तीसरी वस्तु का प्रतिबिंब तो नहीं अर्थात् कहीं ऐसा नहीं है कि सुख और दुःख जिन्हें हम दो भिन्न वस्तु समझते हैं किसी अन्य वस्तु (जीवन) के दो पहलू हों।

इस अवकाश पटी—अवकाश - अंतरिक्ष, पृथ्वी के ऊपर का खोखला। सुरधनु—इंद्रधनुष। आवरण—परदा। धूमिल—धुंधली।

अर्थ—अंतरिक्ष के इस सूने पट पर रात दिन कितने ही चित्र बनते हैं, फिर बिगड़ जाते हैं अर्थात् कभी पीला प्रभात आता है, कभी उज्ज्वल मध्याह्न, कभी अरुण संध्या, कभी काली रात। इन चित्रों में अनेक रंग भरे जाते हैं जो इंद्रधनुष-रूपी पट में छन कर आते हैं, या जो इंद्रधनुष में दिखाई देते हैं। पर वे सारे रंग स्थिर नहीं हैं इसीसे रंगों में डूबे अणु पलभर में घुलकर एक व्यापक सूने नीलेपन में परिवर्तित हो जाते हैं और आकाश की उस धुंधली करुणा की चादर के रूप में प्रकट होते हैं जो इस संसार पर पर्दे के समान पड़ी प्रतीत होती है।

वि०—जीवन के पक्ष में इस छंद का भाव यह है कि हमारे सामने सुख रातदिन अनेक रंग दिखलाता है, पर वह स्थिर नहीं है। इसीसे क्षणभर ठहर कर वेदना में बदल जाता है।

दग्ध श्वास से—दग्ध—तप्त। आह—पीड़ा को प्रकट करने वाला एक शब्द। सजल—भीगी, गीली, रोती। कुहू—अमावस्या। स्नेह—तेल, प्रेम।

अर्थ—तारे जिसके आँसू प्रतीत होते हैं ऐसी अमावस्या की रोती रात में मेरी तप्त साँसों से आज उफ शब्द न फूटे अर्थात् दुःखावेग का प्रदर्शन मुझे भला नहीं लगता।

इस छोटे से दीपक की समता कौन कर सकता है जो अपने अंतर के अमित स्नेह (तेल) को जलाकर स्वयं जल रहा है? मेरी कुटिया में जलने वाली दीपक की लौ कहीं उसी प्रकार बुझ न जाय जैसे संध्या समय सूर्य रूपी दीपक की किरण रूपी लौ बुझ जाती है। आज पतंगा इसके इसका नहीं है। यह अच्छा ही हुआ। यह शिखा अकेली ही जलेगी। निकट सुख इसी में है।

वि०—दीप से तात्पर्य यहाँ श्रद्धा के मन से भी है। वह सोच रही है कि मैं स्नेह में अकेली जल रही हूँ और मेरे इस दुःख को बटाने के लिए मनु पास नहीं हैं। यह भी अच्छा है। मुझे अकेले में ही सुख है। पर कहीं ऐसा न हो कि मैं मर जाऊँ। यदि ऐसा हुआ तो फिर विरह का अनुभव कौन करेगा!

पृष्ठ १७७

आज सुनूँ केवल—पराग—पुष्परज। चहल-पहल—भरमार।

अर्थ—हे कोकिल, मैं तुझे रोकूँगी नहीं, तेरे मन में जो आवे तो तू गा। आज केवल चुप रहकर मैं सब सुनूँगी, क्योंकि अपनी विषम स्थिति के कारण तेरे स्वर में स्वर मिलाने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।

पर इतना तो तू भी जानती है कि पिछले दिनों पराग की जैसी भरमार थी इन दिनों नहीं है, अतः तेरा कूकना असामयिक है।

पतझड़ काल है, डालियाँ सूनी हैं, संध्या-बेला है और मैं किसी की प्रतीक्षा में बैठी हूँ। असहनीय है यह। पर कामायनी, तू अपने हृदय को कड़ा कर और जैसे बने धीरे धीरे सब सह।

विरल डालियों के - विरल—छितरी। निश्वास–बाहर फेंकी जाने वाली साँस विशेषकर दुःखभरी। स्मृति—याद।

अर्थ—छितरी डालियों वाले कुंजों में पवन साँय साँय कर रहा है। मानो वे कुँज दुःख के निश्वास ढाल रहे हैं। पवन से मैं पूछना चाहती थी कि तू क्या उनके मिलन का संदेश लेकर आया है, पर वह तो उनकी याद (विरह) की सूचना देता फिरता है। मुझे लगता है जैसे यह अभिमानी संसार आज मुझ से रूठ गया है यद्यपि मैंने उसका कोई अपराध नहीं किया। मेरी पलकों से ढलकर जो आँसू बह रहे हैं उनसे आज मैं किन चरणों को धोऊँ ? जिन्हें धोती वे तो दूर हैं।

अरे मधुर हैं कष्टपूर्ण—निस्संबल—निस्सहाय, उपायविहीन, निराश्रय। वही—प्रेम का जीवन।

अर्थ—जब मनुष्य का कोई सहारा नहीं रहता और सुख की बिखरी घटनाओं को एक-एक करके वह एकक्रम में देखता है तब उसे उन दिनों की स्मृति में एक सुख मिलता है यद्यपि यह जानकर कष्ट भी होता है कि सुख के वे बीते पल अब नहीं रहे।

अपने प्रेम के सुंदर जीवन को मैंने सत्य समझ लिया था—मैं सोचती थी यह जीवन ऐसे ही चलता रहेगा। पर आज वह नहीं रहा। तब मैं जानती नहीं कि दुःख में उलझे अपने सुख को मैं कैसे पृथक करूँ ?

विस्मृत हों वे—विस्मृत हों—भूल जाऊँ। सार—तत्त्व। जलती—प्रेम की आग से भरी।

अर्थ—प्रेम की वे बीती बातें जिनमें अब कुछ सार नहीं मैं भूल जाऊँ तो अच्छा है क्योंकि आज मेरे लिए न तो मनु का वह जलता वक्ष रहा और न वह शीतल प्यार बचा। मेरी समस्त आशाएं, मेरी सारी मधुर कामनायें अतीत में ही खो गईं। मुझे कठोरता-पूर्वक ठुकरा कर चले जाने से मेरे प्रिय की विजय हो गई यह सत्य है, पर यह मेरी पराजय नहीं है। क्योंकि केवल उनके तोड़ने से ही तो प्रेम का बंधन नहीं टूट सकता। मैंने तो अभी तोड़ा नहीं।

वे आलिंगन एक पाश—आलिंगन—भुजाओं में भरना। पाश—बंधन। स्मिति—मधुर मुसिकान। चपला—बिजली। वंचित—धोखा खाया हुआ। अकिंचन—दरिद्र। अनुमान—कल्पना।

अर्थ—प्रेम के वे आलिंगन जो कोरे मनोरंजन करने वाले आलिंगन न थे, एक को दूसरे से बाँधे रखते थे; वह मधुर मुसिकान जो हमारे ओठों पर खिलती थी बिजली सी उजली थी; आज वह सब कहाँ है। और वह मधुर विश्वास कि जीवन के अंत तक हम एक दूसरे को इसी प्रकार प्रेम करेंगे? उफ़, वह पागल मन का मोह मात्र था!

मनु के द्वारा मैं वंचित हुई हूँ। ठीक है। पर मैं इस घटना को दूसरी दृष्टि से देखती हूँ। मुझ दरिद्र के पास यह बात अभिमान करने को बच रही है कि मैंने अपने को ही समर्पित कर दिया। इससे अधिक और क्या देती? आज मुझे इतना ही याद पड़ता है कि एक दिन था जब मेरे पास जो कुछ था मैंने उसे किसी को दे डाला।

पृष्ठ १८८

विनिमय प्राणों का—विनिमय—लेन देन, आदान प्रदान। भय-संकुल—भयंकर। प्रतीक्षा—आशा।

अर्थ—और सभी वस्तुओं का परिवर्तन चल सकता है, पर अनुराग के परिवर्तन में अनुराग चाहना यह बहुत ही भयंकर व्यापार है। प्रेम में केवल देना ही देना है लेना नहीं, इसीसे यदि प्रेम करना है तो अपने से जितना देते बने उतना दे दे, पर ले कुछ भी न। यह आशा कि बदले में कुछ मिले एक तुच्छ आशा है। यह कभी सार्थक न होगी। जहाँ लेन देन का भाव है वहाँ बदले में उतना मिलता भी नहीं जितना दिया जाता है। प्रकृति को देखो। संध्या अपनी ओर से सूर्य देती है और उसके बदले में उसे मिलते हैं यहाँ वहाँ छितरे छोटे तारे जिनकी सूर्य से कोई समता नहीं।

वि०—प्रेम संबंधी यह आदर्शात्मक भावना 'प्रसाद' जी की अपनी है। लहर में उन्होंने यही भाव दुहराया है—

पागल रे वह मिलता है कब ?
उसको तो देते ही हैं सब।
फिर क्यों तू उठता है पुकार
मुझको न कभी रे मिला प्यार ?

वे कुछ दिन जो—अंतरिक्ष—आकाश, शून्य। अरुणाचल—पूर्व दिशा में उदयाचल नाम का पर्वत जहाँ से सूर्य निकलता है। भरमार—अधिक परिमाण में, ढेर। कुहुक—माया। प्रवास—परदेश को जाना।

अर्थ—जैसे पूर्व में स्थित उदयाचल से आकाश में उग कर सूर्य मुस्कराता है वैसे ही पूर्वकाल में प्रसन्नता के किसी उद्गम से हमारे जीवन के आकाश में भी कुछ हँसी खुशी के दिन आये थे।

जैसे वसंत अपनी माया शक्ति से वन में फूलों की भरमार कर देता है और मीठे स्वर वाले पक्षी कूकने लगते हैं उसी प्रकार हमारे जीवन-वसंत के प्रारंभ होते ही सुख की भरमार हुई और आनन्द के गीतों की लड़ी बँधी।

किरण जब कली के साथ क्रीड़ा करती है तब एक आलोक की सृष्टि होती है, इसी प्रकार जब मनु की और मेरी विलास-क्रीड़ा प्रारंभ हुई तब हमारा जीवन भी मंद हास्य (आनन्द) से भर गया।

जैसे वसंत जाते समय यह आशा बँधा जाता है कि फिर लौटेगा, पर बहुत दिनों तक नहीं आता वैसे ही हमारे वे दिन हमें इस धोखे में रख कर कि फिर लौटेंगे परदेश को जाकर बहुत काल तक न लौटने वाले किसी व्यक्ति के समान कहीं चले गए और इतने दिन व्यतीत होने पर भी लौटे नहीं।

जब शिरीष की—शिरीष—सिरस नाम का पेड़ जिसके पुष्प अत्यन्त कोमल होते हैं। मधु ऋतु—वसंत ऋतु। रक्तिम—लाल। आलाप कथा—गीत।

अर्थ—वसंत की वे रातें जिन में शिरीष पुष्प की मधुर गंध बहती थी, जगते ही बीतती थीं और तब वह समय आता था जब उषा की लालिमा छा जाती थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे रात ने इस बात पर मान किया है कि हमने अपने प्रेम की लीनता में उसके गंध भरे सुंदर शरीर की ओर ध्यान नहीं दिया और क्यों कि हमारा जगना उसे अच्छा नहीं लगा इसी से रूठकर क्रोध से अपना मुख लाल करके वह चली गई है। आकाश में दिन फूटता—फैलता। पक्षी कूकते। ऐसा लगता जैसे उस रूप में कोई मधुर कथा सुना रहा हो। रात होते ही तारे मुस्कराते, ऐसा आभासित होता जैसे हम जो जगकर दिन भर मधुर कल्पनायें करते रहे हैं वे ही उस रूप में झलक उठी हैं।

वन बालाओं के निकुंज—वनबालाओं—चिड़ियों। वेणु—वंशी की ध्वनि जैसी चहचहाहट। पुकार—याद का आकर्षण। अपने घर—घोंसले। तुहिन बिंदु—ओस की बूंद।

अर्थ—चिड़ियों के सब कुंज वंशी के समान मधुर ध्वनि वाली

चहचहाहट से भर गए। जो पक्षी प्रभातकाल में बाहर उड़ गए थे, अपने अपने घोंसले की याद से खिंचकर वे लौट आये। परन्तु मेरा परदेशी नहीं लौटा, यद्यपि उसकी प्रतीक्षा करते करते एक युग बीत गया।

रात की भीगी पलकों से एक एक करके आँसू ओस के रूप में बरस रहे हैं।

वि०—(१) अन्तिम पंक्ति से श्रद्धा के आँसुओं का धीरे-धीरे गिरना भी ध्वनित होता है।

(२) प्रलय के कारण जहाँ श्रद्धा है वहाँ उसे छोड़ कर दूसरा व्यक्ति नहीं। यदि कोई जंगली जाति होती तो वन-बालाओं का अर्थ जंगली जाति की रमणियों का लगाते और अर्थ में एक मार्मिकता आती पर वैसा न होने से पक्षियों के अर्थ की संगति बिठानी पड़ी।

मानस का स्मृति शतदल—मानस—सरोवर और मन। शतदल—कमल। मरन्द—मकरन्द, पुष्परस। पारदर्शी—जिसके आर पार देखा जा सके (Transparent)। नयनालोक—आँखों का उजाला। संबल—पाथेय, राह खर्च।

अर्थ—जैसे मानस (सरोवर) में जब कमल खिलता है तब उससे रस की घनी बूँदें झरती हैं, वैसे ही श्रद्धा के मानस (मन) में जब मनु की स्मृति प्रस्फुटित हुई अर्थात् जब उसे मनु की याद आई तब उसकी आँखों से आँसुओं की घनी बूँदें टपकने लगी। वह सोचने लगी मेरे ये आँसू देखने में मोतियों के समान हैं। अन्तर इतना ही है कि मोती स्पर्श करने में कठोर होते हैं, पर इनके आर पार देखा जा सकता है। इनमें सुख दुःख के अनेक चित्र अंकित हैं अर्थात् सुख दुःख की अनेक घटनाओं के स्मरण से ये उमड़ रहे हैं।

इन आँसुओं की समता तरल विद्युत्कण (Electrons) से

भी की जा सकती है क्योंकि जैसे विद्युत्कण तम को आलोकित करते हैं, वैसे ही विरह के अंधकार में ये भी आँखों में उजाला फैलाते हैं।

भाव यह कि विरह काल में प्रेमी को जब यह नहीं सूझता कि अब वह क्या करे तब आँसू उमड़ कर उसे धीर बँधा जाते हैं। जैसे कोई पथिक उसके पास जो राह खर्च है उसके सहारे यह कल्पना कर सकता है कि उसे लेकर वह इतना मार्ग काट सकेगा, इतने दिन चल सकेगा, वैसे ही आँसुओं की निधि को लेकर प्रेमी के प्राण भी अनेक प्रकार की कल्पनाओं के महल खड़े करते हैं। तात्पर्य यह कि कभी प्रेमी रोकर अपने भारी मन को हल्का करता है, कभी प्रिय को पिघलाने की सोचता है, कभी अपने कठिन विरह को सहज भाव से काटने की संभावना करता है।

पृष्ठ १७९

अरुण जलज के—अरुण जलज—लाल कमल। शोण—लाल। तुषार—ओस की बूंद। मुकुर—दर्पण। चूर्ण—चूर चूर। कुहू—अमावस्या।

अर्थ—जैसे रक्त कमल के लाल कोनों में ओस की नवीन बूंदें भर जाती हैं वैसे ही (देर तक रोने के कारण) श्रद्धा की अरुणाई आँखों के लाल कोयों में नवीन आँसू की बूंदें भर गईं।

वे आँसू नहीं थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे श्रद्धा के हृदय का दर्पण ही टूट कर चूर-चूर हो गया हो और उसी के वे टुकड़े हों। जैसे चूर्ण दर्पण में देखने वाले को जितने दर्पण के टुकड़े होते हैं, उतनी ही अपनी छवियाँ दिखाइ देती हैं, वैसे ही आँसू की एक-एक बूंद में मनु की छवि अंकित थी और इसीसे वे आँसू उसकी अनेक छवियों को लेकर बिखर रहे थे।

प्रेम, हास्य और दुलार का लम्बा जीवन अतीत के अँधकार में विलीन होने जा रहा था और जैसे वर्षाकाल की अमावस्या में जुगनू

टिप-टिप करते अपनी झलक दिखा जाते हैं उसी प्रकार विरह में मनु की याद के जुगनू झलक कर अतीत के सुख के दिनों को डरते-डरते आँखें के सामने ला रहे थे।

सूने गिरि पथ में—शृंगनाद—सिंगी बाजा। आकांक्षा—कामना। पुलिन—किनारा। शलभ—पतंगा।

अर्थ—जैसे नदी पर्वत के सूने पथ पर जब उतरती है तब सिंगी बाजे के समान ध्वनि करती चलती है, उसमें लहरें उठती हैं और अन्त में किसी किनारे की गोद में जाकर वह ढल जाती है, ठीक ऐसे ही श्रद्धा के शुष्क सूने जीवन पथ पर हो कर दुःख की नदी करुणा की ध्वनि मचाती और कामनाओं की लहरें उठाती आगे बढ़ती विकलता के किनारे में जाकर ढल रही थी।

आकाश के दीपक जल उठे अर्थात् संध्या होते ही तारे चमकने लगे और जैसे पतंगे दीपक की ओर उड़-उड़ कर जाते हैं वैसे ही श्रद्धा ने तारों की ओर ज्यों ही दृष्टि उठाई त्यों ही उसके मन से अनेक कल्पनायें उमड़ने लगीं।

पानी आग को बुझा देता है, परन्तु कैसे आश्चर्य की बात थी कि उसकी आँखों में आँसू भरे के भरे रह गए, पर दुःख की आग जो उसके कलेजे में जल रही थी वह किसी प्रकार न बुझी।

मा फिर एक—किलक—हर्षध्वनि। दूरागत—दूर से आई हुई। उत्कंठा—चाव। लुटरी—लटें। अलक—बाल। रजधूसर—धूल से सनी। धूनी—तपने के लिए साधु अपने आगे आग जलाकर बैठते हैं जिसे धूनी कहते हैं।

अर्थ—इतने में हर्ष से भरी मा शब्द की ध्वनि दूर से आती सुनाई पड़ी। इससे उसकी सूनी कुटिया आनन्द की गूँज से परिपूर्ण हो गई। मा भी ममता हृदय में भरी उत्कंठा भर कर उसकी ओर दौड़ पड़ी। उसके बालों की लटें खुली हुई थीं। वह धूल से सनी बालक को लेकर

ही मा से लिपट गया। जिस प्रकार रात में तप करने वाली किसी तपस्विनी की बुझती हुई धूनी हवा आदि के चलने से फिर धधक उठती है उसी प्रकार विरहिणी श्रद्धा का मन जो विरह की आग में जल रहा था और जो इस समय कुछ कुछ शान्त हो चला था बच्चे की किलकारी सुनकर फिर एक बार तड़प उठा क्योंकि उस ध्वनि के कान में पड़ते ही उसका ध्यान मनु की ओर फिर जा पड़ा।

कहाँ रहा नटखट—नटखट—शरारती, ऊधमी। प्रतिनिधि—प्रतिमूर्ति। घना—अधिक। वनचर—वन में घूमने वाले। रूठना—अप्रसन्न होना।

अर्थ—श्रद्धा बोली! अरे नटखट अब तो केवल तू ही मेरा भाग्य है, पर इतनी देर से तू घूम कहाँ रहा था? अपने पिता की तू प्रतिमूर्ति है। जैसे उन्होंने मुझे सुख भी बहुत दिया साथ ही दुःख भी, वैसे ही तू दूर रहकर मुझे चिंतित भी बहुत करता है और पास रहकर सुख भी बहुत देता है। तू इतना चंचल है कि वन में विचरण करने वाले हिरण के समान चौकड़ी भरता फिरता है। मैं तुझे इसलिए मना नहीं करती कि कहीं तू भी मुझसे रूठ न जाय।

पृष्ठ १८०

मैं रूठूँ मा और—विषाद—खेद।

अर्थ—वाह मा, तूने कितनी अच्छी बात कही! मैं रूठ जाऊँ और तू मुझे मनावे! मैं तो अब जाकर सो रहा हूँ, तुझसे नहीं बोलने का। गहरी नींद आवेगी आज, क्योंकि पके-पके फल खाये हैं। उनसे पेट भर गया है। उसकी ऐसी भोली और प्यार भरी बातें सुन कर श्रद्धा ने प्रसन्न होकर उसे चूम लिया, पर इस बात का स्मरण कर कि यदि मनु आज यहाँ होते तो कितने सुखी होते वह फिर विषाद-मग्न हो गई।

जल उठते हैं—जल उठना—प्रत्यक्ष हो कर जलन छोड़ जाना। दिवा श्रांत—दिन भर की थकी। आलोक रश्मियाँ—प्रकाश की किरणें।

निलय—निवास स्थान, घर। संसृति—लोक यहाँ सूने आकाश से तात्पर्य है।

अर्थ—प्रेम के जीवन के पिछले कुछ दिनों के मधुर क्षण धीरे-धीरे जल उठते हैं अर्थात् अतीत के वे सुखमय दिन श्रद्धा की आँखों के सामने अत्यन्त स्पष्टता से उदित हुए और उन्हें स्मरण कर उसे बड़ी पीड़ा या जलन हुई। उसने आकाश की ओर देखा। उसे लगा जैसे उदासी से परिपूर्ण उस खुले आकाश में तारे नहीं झलक रहे हैं उसके अतीत जीवन के ज्वलित क्षण ही छाले बन कर उभर आए हैं।

उसने यह भी देखा कि दिन भर की थकी प्रकाश की किरणें उस नीले निवास-स्थान अर्थात् आकाश में कहीं छिप गई हैं और उसका (श्रद्धा का) करुण स्वर उस लोक में गल कर बह गया।

वि०—स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ एकांत में बैठी श्रद्धा अपनी करुण गाथा सुना रही है—

तृण गुल्मों से रोमांचित नग सुनते उस दुख की गाथा।
श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर जो स्वर भरते थे।

प्रणय का किरण—मुक्ति—बंधन का खुलना या टूटना। तंद्रा—झपकी, हल्की नींद। मूर्च्छित—शांत भाव से रहित। मानस—सरोवर, मन। अभिन्न—जो अपने से भिन्न न हो, जो अपना हो। प्रेमास्पद—प्रेमी।

अर्थ—प्रेम का किरण जैसा कोमल बंधन खुलने पर और भी कस गया। भाव यह कि मनु श्रद्धा को अपने प्रेम से मुक्त करके चले गए हैं, उसका हृदय उनकी स्मृति में और भी जकड़ गया है। मनु उससे बहुत दूर चले गए, पर श्रद्धा उन्हें अपने हृदय के और भी निकट पा रही है। जैसे शांत सरोवर पर मधुर चाँदनी छा जाती है वैसे ही श्रद्धा के हृदय में इस समय भावनाओं का उठना बंद हो गया और उसे एक झपकी आई।

ठीक उसी समय उसके अभिन्न प्रेमी ने अपना चित्र उस मन पर अंकित कर दिया अर्थात् स्वप्न में उसने मनु को देखा।

कामायनी सकल अपना—स्वप्न बनना—सपना देखना, दूर होना। विकल—दुःखी। प्रतारित—वंचित, छली गई। लेख—चिह्न। दल—पंखुड़ियाँ, सुख। पवन—हवा, जीवन। पपीहा—चातक, मन। पुकार—करुण कराह।

अर्थ—कामायनी देख रही है कि उसका सारा सुख सपना हो गया भाव यह कि बाह्य जगत में जहाँ कामायनी के अब सुख के दिन शेष हो गए वहाँ निद्रावस्था में उसने एक सपना देखा जिसमें अतीत के सारे सुख की कल्पनायें एक विशिष्ट रूप में प्रकट हुईं। उसे लगा कि वह युग से इसी प्रकार दुखी और वंचित रही है और अब मिट कर एक चिह्नमात्र रह गई है।

एक समय था जब फूलों की कोमल पंखुड़ियों की रेखाएँ पवन के पट पर अंकित रहती थीं और आज वह समय है जब पपीहे की पुकार की रेखा आकाश में खिंच रही है। भाव यह कि एक दिन जीवन में सुख और विलास के चिह्न थे और आज मन का पपीहा प्रेम का प्यासा है, प्रियतम को पुकार रहा है और उसकी करुण ध्वनि सूने में उठ कर रह जाती है।

पृष्ठ १८१

इड़ा अग्नि ज्वाला सी—उल्लास—प्रसन्नता। विरद—संकट। आरोहण—सीढ़ी, सोपान। शैल शृंग—पर्वत की चोटी। श्रांति—थकावट। प्रेरणा—कार्य में प्रवृत्त कराने वाला मनोविकार (Inspiration)। वहीं—मनु के पास।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा : जैसे अग्नि शिखा अँधेरे पथ को प्रकाशित कर देती है वैसे ही इड़ा प्रसन्नतापूर्वक अग्रगामिनी बन कर अपनी उज्ज्वल प्रखर बुद्धि के प्रकाश से मनु को उनका कार्य-पथ

सुझाती है। जैसे नौका द्वारा नदी को सहज में पार कर जाते हैं वैसे ही जब कभी संकट पड़ता है तब वही उन्हें उससे बचा ले जाती है।

वह उन्नति का सोपान थी अर्थात् उन्नति की ओर ले जाने वाली थी। वह गौरव के पर्वत की चोटी थी भाव यह कि उच्चतम गौरव प्राप्त करवाने वाली थी। थकावट जैसी वस्तु को वह जानती न थी। तात्पर्य यह कि निरंतर कर्म में लीन रहती और रखती थी। वह प्रेरणा की तीव्र धारा के समान थी जो उत्साह भर कर मनु के पास बह रही थी। आशय यह कि उसके पास रहने से मनु को कर्म में बड़ी स्फूर्ति और उत्साह मिलता था।

वह सुन्दर आलोक—आलोक—प्रकाश। हृदयभेदिनी—मन के रहस्यों से परिचित, सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक। तम—अंधकार और अज्ञान। सतत—निरंतर। आश्रय—शरण। श्रम—सेवा।

अर्थ—वह एक रम्य प्रकाश किरण के समान थी। जैसे किरण जिधर प्रवेश करती है उधर ही अंधकार से ढके पथ को आलोकित कर देती है, वैसे ही मन के भेदों को परखने वाली उसकी ऐसी दृष्टि थी कि जिधर वह पड़ जाती उधर ही वह अज्ञान-जनित उलझनों को मिटा देती, मनु को जो बराबर सफलता मिल रही थी उसका एक मात्र कारण वही थी। विजय-तारा के समान वह उनके जीवन में उदित हुई।

भूचाल आने के कारण सब कुछ नष्ट हो गया था। जनता आयश्र चाहती थी। मनु ने उनकी स्थिति से लाभ उठाया। अतः प्रजा ने उनके लिए बदले में अपनी सेवाएँ समर्पित की।

मनु का नगर—सहयोगी—साथी। प्राचीर—चहारदीवारी, परकोटा। मंदिर—महल। धूप—गर्मी। शिशिर—जाड़ा। छाया—बहार, सुख। [illegible]—[illegible], रहट। श्रम स्वेदकने—परिश्रम के कारण पसीने से लथपथ।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा मनु का सुन्दर नगर बसा है। सब

उनके साथी हैं। दृढ़ चहारदीवारी के भीतर महल बना है। उसके अनेक द्वार हैं। वर्षा, गर्मी, जाड़े से बचने के सब साधन वहाँ एकत्र हैं। बाहर खेतों में किसान प्रसन्न होकर हल चला रहे हैं। परिश्रम के कारण उनका शरीर पसीनों से लथपथ है!

उधर धातु गलते—धातु—सोना, चाँदी, लोहा आदि। साहसी—साहस का काम करने वाले जैसे शिकारी डाकू आदि। मृगया—शिकार। पुष्पलावियाँ—पुष्प चुनने वाली रमणी, मालिन। अर्ध विकच—अर्द्ध विकसित। गंधचूर्ण—सुगन्धित रज (Face Powder)। लोध्र—एक वृक्ष जिस पर लाल या श्वेत पुष्प आते हैं। प्रसाधन—सामग्री, वस्तु।

अर्थ—कहीं सोना, चाँदी और लोहा आदि धातुएं गल रही हैं और उनसे आभूषण तथा अस्त्र तैयार किए जा रहे हैं। कहीं साहसी व्यक्ति शिकार खेल का शेर कर चमड़ा या मृग की नाभि से कस्तूरी आदि नवीन उपहार ला रहे हैं। वन कुसुमों की अर्द्ध-विकसित कलियों को कहीं मालिनें चुन रही हैं। लोध्र पुष्पों का पराग सुगन्धित चूर्ण (Face Powder) का काम दे रहा है। इस प्रकार भोग की नवीन नवीन वस्तुओं का आयोजन हो रहा है।

घन के आघातों से—घन—हथौड़ा। आघात—चोट। प्रचंड—कठोर, कर्कश, तीव्र। रोष भरी—जोश भरी। मूर्च्छना—तान। प्रथा—प्रणाली। श्री—शोभा।

अर्थ—एक ओर जोश में भर कर लोहारों के हथोड़ों की चोट से उठी कठोर ध्वनि सुनाई पड़ती है तो दूसरी ओर रमणियों के कंठ से निकली हृदय की तान ढल रही है। उस नगर में सभी अपने अपने वर्ग बना कर काम को पूरा कर रहे हैं। इस प्रकार उनके मिलकर काम करने की प्रणाली के कारण उस नगर की शोभा निखर उठी है।

पृष्ठ १८८

देश काल का लाघव—देश—स्थान । काल—समय । लाघव—छोटा । चंचल—शीघ्र गति से काम करने में तत्पर । सुख साधन—उपभोग की सामग्री । व्यवसाय—रोज़गार । विस्मृत—[illegible] । छाया—सहारा ।

अर्थ—उस नगर के प्राणी ऐसी शीघ्र गति से काम करने में तत्पर हैं कि उन्होंने स्थान और समय दोनों को छोटा कर दिखाया है, अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्र से शीघ्र पहुँचने के साधन उनके पास हैं जिससे कोई स्थान दूर नहीं रहा और जो काम साधारणरूप से अति काल में समाप्त होता उसे वे मशीनों की शक्ति से शीघ्र समाप्त कर लेते हैं । वे सुख के उन सभी साधनों को जुटा रहे हैं जो उनके उपभोग की सामग्री बन सकें । महान् परिश्रम और शक्ति के सहारे उनका ज्ञान और उनके व्यवसाय में उन्नति हो रही है । वे इस बात में रत हैं कि पृथ्वी के भीतर जो कुछ छिपा पड़ा है वह भी मनुष्य के प्रयत्न से उसके भोग के लिए ऊपर आजाय ।

सृष्टि बीज अंकुरित—सृष्टि—निर्माण । स्वचेतन—अपनी चेतना शक्ति का जिसे ज्ञान हो । कुशल—सफल । स्वावलम्ब—अपने भरोसे रहना ।

अर्थ—प्रलयकाल में मनु के बच जाने से उनके रूप में निर्माण कार्य का बीज बच रहा था । उसे उन्होंने बड़े उत्साह से फैलाया । थोड़े दिनों में वह अंकुरित होकर फूला-फला । चारों ओर हरियाली छा गई भाव यह कि प्रलय में पृथ्वी का समस्त वैभव नष्ट हो गया था, मनु के बुद्धि कौशल से फिर एक व्यवस्थित राज्य की स्थापना हुई जिसकी प्रजा धनधान्य से पूर्ण और हर्ष-मंगल भरी थी ।

आज का प्राणी अपनी शक्ति को पहचानता है और वह ऐसी कल्पनायें करके जो सफल होती हैं अपने दृढ़ भरोसे पर जीवित है । अब वह प्रकृति के प्रकोप से डरता नहीं ।

श्रद्धा उस आश्चर्य लोक—मलयबालिका—पवन, हवा। सिंहद्वार—मुख्य फाटक। प्रहरी—पहरेदार। छलती—आँख बचाती। स्तंभ—खंभ। वलभी—छज्जा। प्रासाद—महल। धूप—एक सुगंधित द्रव्य। आलोक शिखा—दीपक या मोमबत्ती का प्रकाश।

अर्थ—चकित करने वाली वस्तुओं से परिपूर्ण उस देश में श्रद्धा पवन के समान स्वतंत्रता से घूम रही है। कुछ देर में वह प्रहरियों की दृष्टि बचाती नगर के मुख्य फाटक के भीतर घुस गई। उसने देखा ऊँचे खंभों पर छज्जों से युक्त सुन्दर महल बने हुए थे। धूप के धुंए से मकान सुवासित हैं और उनमें प्रकाश-शिखा जल रही थी।

स्वर्ण कलश शोभित—स्वर्ण कलश—सोने के कलसे। उद्यान—बाग बगीचे। ऋजु—सीधे। प्रशस्त—स्वच्छ। दम्पति—पति पत्नी। पराग—पुष्प रज।

अर्थ—सोने के कलशों से युक्त होने के कारण भवन सुन्दर लगते हैं। उन्हीं से सटे हुए बगीचे हैं जिनके बीच से होकर सीधे स्वच्छ मार्ग गए हैं। कहीं-कहीं लताओं के घने कुंज हैं। इन कुञ्जों में पति-पत्नी प्यार में डूबे एक दूसरे के गले में भुजायें डाल आनन्द-पूर्वक घूम रहे हैं। वहीं पराग से सने रसिक भौंरे पुष्पों के रस का पान कर आनन्द-मग्न हो गूंज रहे हैं।

देवदारु के वे—देवदारु—एक बहुत ऊँचा और सीधा वृक्ष। प्रलम्ब—लम्बे। भुज—बाहु यहाँ शाखाओं से तात्पर्य है। मुखरित—ध्वनित। कलरव—मधुर ध्वनि। आश्रय देना—सहारा या शरण देना। नागकेसर—एक प्रकार का फूलदार वृक्ष।

अर्थ—देवदार की लम्बी-लम्बी शाखाएं लम्बी-लम्बी भुजाओं सी प्रतीत होती थीं जिनसे वायु की लहरियाँ आकर लिपट गई थीं। वहीं पक्षियों के रम्य बच्चे आभूषणों की झंकार के समान मधुर ध्वनि कर रहे थे। वनों से आती हुई स्वर की हिलोरें बाँसों के झुरमुट में आकर रुक

जाती थीं। वही नागकेसरों की क्यारियों में अनेक रंगों के और भी बहुत से फूल खिल रहे थे।

वि०—देवदारु पुल्लिङ्ग में है और वायु-तरंग स्त्रीलिङ्ग में। ऊपर के छंद में स्त्री-पुरुषों का गले मिलना दिखाया है और इसमें प्रकृति के तत्वों का। भावों की यह समानता उपयुक्त ही हुई है।

पृष्ठ १८३

नव मंडप में सिंहासन—मंडप—चँदोवा। सिंहासन—राजासन। मंच—मूढ़ा, पीढ़ा, लकड़ी या पत्थर का बैठने का एक ऊंचा आधार। शैलेय अगरु—पहाड़ी अगर। आमोद—मीठी खुशबू (fragrance)

अर्थ—एक नवीन मंडप की रचना हुई है। उसमें सिंहासन लगा है। उसके सामने चमड़े से मढ़े, देखने में सुन्दर तथा शरीर को सुख देने वाले एक ओर अनेक मंच बिछे हैं। पहाड़ी अगरु जल रहा है जिसके धुँए की मीठी खुशबू आ रही है। श्रद्धा यह सब देखकर सपने में सोचती है: आश्चर्य! मैं कहाँ आ गई?

और सामने देखा—चषक—प्याला। क्रतुमय—यज्ञों का प्रेमी। मादक भाव—मस्ती।

अर्थ - और अपने सामने ही श्रद्धा ने देखा यज्ञ के प्रेमी मनु अपने सबल हाथ मैं एक प्याला थामे हुए हैं। संध्या की लालिमा जैसी आभा से पूर्ण वह मुख मनु का ही था। उसने यह भी देखा कि उनके आगे एक बालिका बैठी है। वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो उनके मन की मस्ती ही साकार हो गई हो। वह सोचने लगी: एक सुन्दर चित्र के समान इतनी आकर्षक यह कौन है जिसे केवल देखने के लिए कोई भी जीवधारी सैकड़ों बार मर कर फिर-फिर जीना चाहेगा?

इड़ा ढालती थी—आसव—मादक रस। तृषित—प्यासा। वैश्वानर—अग्नि। ज्वाला—लपट। वेदिका—यज्ञ के लिए तैयार की

हुई ऊँची भूमि। सौमनस्य—प्रसन्नता। जड़ता—आलस्य, स्फूर्तिहीनता। भास—चिह्न।

अर्थ—इड़ा मनु के प्याले में ऐसा मादक रस ढाल रही थी जिससे प्यास शांत न होती थी वरन् जिसे बार-बार पीकर भी प्यासा कंठ ऐसा विश्वास नहीं करता था कि उसने यथेष्ट पीली।

यज्ञ की वेदी पर जो एक मंच के रूप में बनी हुई थी अग्नि की एक लपट के समान इड़ा बैठी थी। उसके मुख से शीतल प्रसन्नता बरस रही थी। आलस्य अथवा अकर्मण्यता का कोई चिह्न उसकी आकृति से लक्षित नहीं होता था।

मनु ने पूछा—सविशेष—विशेष रूप से। साधन—सुख की सामग्री। स्ववश—अधिकार में। रिक्त—अभावों से भरा। मानस—मन।

अर्थ—मनु ने प्रश्न किया: क्या अब भी और कोई ऐसा काम है जो करने को बच रहा हो? इड़ा ने उत्तर दिया: जो थोड़ा बहुत तुमने किया है कर्म की विशेष सफलता उतने में कहाँ है? क्या सृष्टि के समस्त सुख-साधन तुम्हारे अधिकार में हैं?

मनु ने बात को उलटते हुए कहा: नहीं, अभी मैं अभाव से भरा हूँ। यह ठीक है कि मैंने सारस्वत नगर बसा दिया है, पर मेरे मन का सूना देश अभी उजड़ा पड़ा है।

पृष्ठ १८४

सुन्दर मुख आँखें—आँखों की आशा—आँखों में किसी की प्रतीक्षा। बाँकपन—तिरछापन। प्रतिपद—प्रतिपदा, पड़वा। अनुरोध—आग्रह। मान मोचन—नायिका के रूठने पर नायक का उसे मनाना।

अर्थ—तुम्हारा सुन्दर मुख और किसी की निरंतर प्रतीक्षा करती तुम्हारी आँखें! पर उफ, उन्हें अपना कहने का अधिकार किसी को नहीं। तुम्हारी चितवन में पड़वा के चंद्रमा जैसा तिरछापन है जिससे

कुछ रिस के भाव झलक रहे हैं। साथ ही इन्हीं आँखों से कुछ ऐसा भी संकेत मिलता है कि वे किसी से ऐसा आग्रह करती हैं जैसे तुम्हारे मन का मान कोई दूर करता। हे मेरी चेतनाशक्ति। इस बात का उत्तर दो कि तुम किसकी हो और तुम्हारा यह मुख और तुम्हारी ये भावभरी आँखें किसकी हैं?

वि०—प्रसिद्ध है कि प्रतिपदा को चंद्रमा नहीं निकलता, पर कवि ने उसकी कल्पना की है।

प्रजा तुम्हारी तुम्हें—प्रजापति—राजा। गुनना—समझना। मराली—हंसिनी। प्रणय—प्रेम।

अर्थ—इड़ा बोली: मैं यही समझती हूँ कि तुम हमारे प्रजापति हो। उस दृष्टि से मैं तुम्हारी प्रजामात्र हूँ। जब मेरा तुम्हारा इतना स्पष्ट संबंध है तब तुम्हारी ओर से यह सदेहभरा नवीन प्रश्न कैसे उठा?

मनु ने उत्तर दिया: तुम प्रजा नहीं, मेरी रानी हो। मुझे अधिक भ्रम में न रखो। तुम एक सुन्दर हंसिनी हो। अपने मुख से कहो कि तुम मेरे प्रेम के मोती चुनने (मुझे प्रेम करने) को तत्पर हो।

मेरा भाग्य गगन—प्राचीपट—पूर्व दिशा। अतृप्त—अभाव से परिपूर्ण। प्रकाश बालिका—उषा।

अर्थ—मेरा भाग्य धुँधले आकाश जैसा है और तुम उसमें उस पूर्व दिशा के सदृश हो जो सहसा खिलकर अपनी यशमयी सुन्दरता से आलोकित हो उठती है। मैं अभाव से पूर्ण हूँ, प्रेम के प्रकाश का भिखारी हूँ और तुम उषा के समान हो। बताओ, वह कौन सा दिन होगा जब तुम्हारे इन मधुर अधरों के रस का पान कर हमारे प्रेम की प्यास शांत हो सकेगी।

ये सुख साधन—सुख साधन—भोग की सामग्री। रुपहली—चाँदी के रंग की। छाया—चाँदनी। संचरित—युक्त। उन्मद—मस्त।

नर पशु—वह पुरुष जिसमें पशु भाव (यहाँ वासना) की प्रधानता हो। मदिर—मस्त।

अर्थ—भोग की यह सामग्री और उस पर चाँदी जैसी उजली रातों की शीतल चाँदनी, स्वर से युक्त दिशायें, मस्त मन और शिथिल शरीर ! भाव यह कि सब कुछ आज मिलन के उपयुक्त है। तब रानी, तुम मेरी प्रजामात्र मत रहो, ऐसी बात उस नर-पशु ने बड़े आवेश में आकर कही। उसी समय घने अंधकार के समान एक मस्त घटा सी छा गई।

पृष्ठ १८५

आलिंगन फिर भय—क्रंदन—चिल्लाना, विलाप करना। वसुधा—पृथ्वी। अतिचारी—अत्याचारी, उच्छृंखलता से व्यवहार करने वाला। परित्राण—रक्षा, छुटकारा, बचाव। अंतरिक्ष—आकाश, शून्य रुद्र—शिव। हुंकार—गर्जन। आत्मजा—पुत्री। शाप—अशुभ फल।

अर्थ—मनु ने इड़ा का बलपूर्वक आलिंगन किया जिससे भयभीत होकर वह चिल्ला उठी। जैसे पृथ्वी हिल उठती है वैसे ही वह काँपने लगी। इधर वह अत्याचार करने को उद्यत और उधर वह एक दुर्बल रमणी ! कैसे छुटकारा होगा यह चिंता करने लगी !

इसी समय आकाश में शिव का गर्जन सुनाई दिया जिससे भयानक हलचल मच गई। उफ़, प्रजा होने से इड़ा तो पुत्री के समान हुई। अतः मनु का यह कर्म पाप के अंतर्गत आने से उसके लिए अशुभ फल देने वाला सिद्ध हुआ।

उधर गगन में—क्षुब्ध होना—क्रोध से तमतमाना। रुद्र—शंकर का भयंकर और विनाशकारी रूप। शिव—शंकर का शांत और कल्याणकारी रूप। शिंजिनि—धनुष की डोर। अजगव—रुद्र का पिनाक नामक धनुष। प्रतिशोध—बदला।

अर्थ—उधर आकाश में और सब देवता भी क्रोध से तमतमा उठे।

सहसा रुद्र का तीसरा अग्नि-नेत्र खुल गया। सारस्वत नगरी घबरा काँप करने लगी।

प्रजा का रक्षक ही जब अत्याचार करने पर उतारू हुआ, उस समय भी देवता क्या शांत बने रह सकते थे ? नहीं। इसी से मनु के अपराध पर बदला लेने के लिए अपने पिनाक नामक धनुर पर शिव ने डोरी चढ़ाई।

प्रकृति वस्त्र थी—त्रस्त—भयभीत। भूतनाथ—भूतों के स्वामी शिव। नृत्य विकंपित—प्रलय नृत्य के लिए चंचल। भूत सृष्टि—भौतिक जगत। सपना होना—नष्ट होना। कलुष—पाप। सदिग्ध—संदेह की अवस्था में। वसुधा—पृथ्वी।

अर्थ—पृथ्वी भयभीत हो उठी। शिव ने प्रलय-नृत्य के लिए चंचल अपना पैर उठाया तो ऐसा लगा कि समस्त भौतिक जगत थोड़ी देर में नष्ट हो जायगा। सब शरण पाने को व्याकुल हो उठे। स्वयं मनु के हृदय में संदेह उठा कि संभवतः उन से पाप बन पड़ा है। जब पृथ्वी थर थर काँपने लगी तब उन्हें निश्चय हो गया कि आज फिर कुछ होने वाला है।

काँप रहे थे प्रलयमयी—प्रलयमयी क्रीड़ा—तांडव नृत्य। आशंकित—भयभीत। छिन्न—टूटता। तंतु—तागा, संबंध। शासन—शासन करने वाला राजा।

अर्थ—रुद्र के प्रलय नृत्य से सब जंतु भयभीत होकर काँपने लगे। इस समय सभी को अपने अपने प्राण बचाने की चिंता थी; अतः किसी ने भी स्नेह के कोमल संबंध का ध्यान करके दूसरे की रक्षा न की।

सब सोचने लगे : आज वह राजा कहाँ है जिसने सब की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया था ! इसी हलचल में मनु के कुव्यवहार पर क्रोध और लज्जा से भरी इड़ा को बाहर निकलने का अवसर मिल गया।

देखा उसने जनता—व्याकुल—क्षुब्ध। रुद्ध—घेरना। नियमन—कड़ा शासन। अविरुद्ध—अनुकूल।

अर्थ—इड़ा ने बाहर आकर देखा जनता क्षुब्ध हो उठी है और उसने राजद्वार को घेर रखा है। पहरेदारों का समूह भी बढ़ा आ रहा है। राजा की ओर से उनका हृदय भी शुद्ध नहीं प्रतीत होता।

कड़े शासन में जो झुकाव रहता है वह दबाव (आतंक) के कारण। जैसे बोझ से दबी चीज़ या तो टूट ही जाती है या फिर (उस बोझ को यदि परे फेंक सकती है तो) ऊपर उठ आती है। इसी प्रकार क्रूर अनुशासन में या तो प्रजा की शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है या फिर वह विद्रोह बैठती है। मनु की प्रजा भी जो अब तक उनके अनुकूल रहती आई थी आज विरोध-भावना से भर उठी।

पृष्ठ १८६

कोलाहल में घिर—कोलाहल—शोर। त्रस्त—भयभीत। आंदोलन—विद्रोह। नृत्य—तीव्र गति धारण करना।

अर्थ—मनु के चारों ओर जब कोलाहल मचा तो वे चिंता-निमग्न होकर एक स्थान पर छिप कर बैठ गए। प्रजा ने जब यह देखा कि द्वार बन्द है, तब वह भयभीत हो उठी। लोगों का मन धैर्य भी कैसे धारण करता ? प्रत्येक व्यक्ति में जितनी शक्ति थी वह उसे लेकर विद्रोह करने को उद्यत हुआ।

शिव का क्रोध भयंकर से भयंकर रूप धारण कर रहा था, और इन सब के ऊपर तीसरे नेत्र से फूटने वाली नील और लाल वर्ण की प्रखर ज्वाला तीव्र गति से बढ़ी चली आ रही थी।

वह विज्ञान मयी—विज्ञानमयी—विज्ञान के आधार पर। माया—आकर्षण। वर्ग—जाति। खाई—भेद।

अर्थ—विज्ञान की शक्ति के आधार पर पंख लगाकर उड़ने (आश्चर्यजनक कार्य कर दिखलाने) की आकांक्षा का परिणाम आज

दिखाई दिया। जीवन की उन अनन्त कामनाओं का परिणाम जो झुकना जानती ही नहीं आज दृष्टिगोचर हुआ। राजा ने अपनी प्रजा का वर्गों में विभाजन किया। उसके एक वर्ग और दूसरे वर्ग के बीच ऐसी खाई खुदी कि वे कभी भरी नहीं जा सकतीं अर्थात् वर्गों की स्थापना से व्यक्तियों में एकता की भावना सदा को तिरोहित हो गई।

असफल मनु कुछ—क्षुब्ध—क्रुद्ध। आकस्मिक—सहसा। बाधा—अड़चन। परित्राण—रक्षा।

अर्थ—अपने शासन की असफलता देखकर कुछ क्रुद्ध हो उठे। सोचने लगे सहसा यह अड़चन कहाँ से आ खड़ी हुई? वे यह समझ ही न पाए कि ऐसी क्या बात हुई जिससे प्रजा ने उन्हें इस प्रकार आकर घेर लिया।

प्रजा ने पहले रक्षा के लिए बहुत गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की, पर जब वह विफल हुई, तब देवताओं के क्रोध की प्रेरणा से वह भावना विद्रोह में बदल गई। मनु ने सोचा: इड़ा भी इनमें सम्मिलित है। उन्हें विश्वास हो गया कि उनके विरुद्ध कोई कुचक्र रचा गया है जिसका परिणाम यह घटना है और जिसमें इड़ा का हाथ है।

द्वार बन्द कर दो—उत्पात—ऊधम। कक्ष—कमरा। लेना देना—लाभ हानि।

अर्थ—मनु ने सेवकों को आज्ञा दी: द्वार बन्द करो। ये लोग भीतर न आने पावें। प्रकृति आज ऊधम मचा रही है। ऐसी दशा में मैं सोना चाहता हूँ। तुम लोग मुझे जगाना मत। ऐसा कह कर वे ऊपर से क्रोध प्रदर्शित करते हुए किन्तु मन में डरते हुए शयनागार में घुसे। जीवन के हानि लाभ पर वे विचार करने लगे।

श्राद्ध काँप उठी—छली—विश्वासघाती। स्वजन—प्रियजन, आत्मीय जन। आशंकायें—संभावनायें।

अर्थ—स्वप्न में यह सब कुछ देखकर श्रद्धा काँप उठी। उसकी नींद एकदम टूट गई। जगने पर वह सोचने लगी : मैंने यह क्या देखा? वह इतना विश्वासघाती कैसे हो गया? प्रियजनों का स्नेह ऐसा है कि जब वे दूर होते हैं तब मन में अनेक प्रकार के भय की संभावनायें उन्हें लेकर उठती रहती हैं। श्रद्धा की सारी चिंता तो यह थी कि इस विद्रोह में मनु पर न जाने क्या संकट आएगा। इसी सोच में छटपटाते-छटपटाते उसने किसी प्रकार रात कटी।

———

संघर्ष

कथा—श्रद्धा का स्वप्न सत्य निकला। एक ओर मनु ने इड़ा से प्रेम का प्रस्ताव किया था जिस पर वह झिझकी, दूसरी ओर भौतिक हलचल से आकुल होकर प्रजा राजा की शरण में आई थी और उससे तिरस्कृत होने पर रोष से भर उठी। मनु ने महल के फाटक बन्द करा दिए। शय्या पर लेटकर वे सोचने लगे: सारस्वत प्रदेश के बिखरे व्यक्तियों को मैंने इसलिए प्रजा का रूप दिया था कि वे मेरे अनुशासन में रहें। पर वे तो आज विद्रोही बन गए। राज-व्यवस्था बनी रहे इसी से तो मैंने अपनी बुद्धि से नियमों का निर्माण किया था। मैं शासक हूँ, नियामक हूँ। क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं है कि मैं स्वनिर्मित नियमों के बन्धन में न रहूँ ? श्रद्धा जो मेरी पत्नी थी जब उसके सामने ही मैंने आत्म-समर्पण न किया तो इड़ा मुझे कैसे बाँध सकती है ? इस जगत में कोई भी वस्तु बँधकर रहती है क्या ? सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों में से किसी की स्थिति स्थिर नहीं। पृथ्वी जल में डूब जाती है, समुद्र शुष्क होकर मरुभूमि में परिवर्तित हो जाती है। स्वयं मनुष्य कुछ काल के लिए आता है, फिर चला जाता है। तारे चक्कर काट रहे हैं, पवन बह रहा है, सारा विश्व ही गतिशील है। स्थिर कुछ भी नहीं। संसार में कोई नियम काम नहीं कर रहा। कभी-कभी घटनायें उसी रूप में घट जाती हैं। उसे हम नियम मान लेते हैं। सारी सृष्टि मृत्यु की गोद में खेल रही है। अतः मेरी समझ में तो यही आता है कि जितने पल सुख और स्वतन्त्रता में कट सकें वे ही अपने हैं। शेष सब निस्सार हैं।

मनु ने करवट ली। देखा इड़ा खड़ी है। उसने समझाना प्रारंभ किया : जब नियमों का मानने वाला ही नियमों को न मानेगा तो अपने आप अव्यवस्था फैलेगी। एक ओर तो तुम यह चाहते हो कि सब तुम्हारी आज्ञा का पालन करें और दूसरी ओर तुम उच्छृङ्खलता से व्यवहार करने पर उतारू हो। यह नहीं हो सकता। चेतना एक अखंड वस्तु है। पर प्रत्येक प्राणी के शरीर में बद्ध होकर वह खंड-खंड प्रतीत होती है। यही कारण है कि चेतन प्राणियों का आपस में निरंतर संघर्ष चल रहा है। इस संघर्ष में जो शक्तिशाली है वह विजयी होता है। ऐसे मनुष्यों को शासन करने का अधिकार है यह सत्य है। पर शासक का धर्म यह भी है कि वह लोक-कल्याण करे, अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को भुला दे, प्रजा के सुख दुःख में अपने सुख-दुःख को खो दे। सृष्टि विकास-पूर्ण है, अतः जो इसके विकास में सहायक होता है उसी का जीवन सार्थक है। जैसे वह महाचेतन सृष्टि की सब वस्तुओं में समाया है वैसे ही राजा को अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को लोक में समाहित करना है। तुम भी लोक के अनुकूल होकर चलो, उसका विरोध न करो।

मनु बोले : यह तो मैं जानता हूँ कि तर्क करने की तुम में प्रबल शक्ति है। पर मेरे राजा होने का क्या इतना भी लाभ नहीं कि मेरी कोई इच्छा पूरी हो सके? मुझे शासन नहीं चाहिए, अधिकार नहीं चाहिए। केवल तुम्हें अपने पास रखना चाहता हूँ। भूचाल से यह पृथ्वी काँप रही है, पर मेरे हृदय की धड़कन इस से किसी प्रकार कम नहीं। मैंने प्रलय का सामना किया है, पर अपने हृदय की पुकार के सामने मैं विवश हूँ। चाहे कुछ हो जाय, मैं तुम्हें न जाने दूँगा।

इड़ा ने उत्तर दिया : मैं जो कुछ कह रही हूँ तुम्हारी भलाई के लिए, पर मुझे लगता है उत्तेजना के वशीभूत होकर तुम अपना अनिष्ट करोगे। प्रजा शरण माँगने आई है, तुम उसकी चिन्ता करो। ये व्यर्थ की बातें हैं।

मनु ने कहा : तो क्या तुम यह समझती हो कि इतने सहज रूप से छुटकारा हो जायगा ? मायाविनि, यह तुम्हीं तो हो जिसने मुझे संघर्ष का पाठ पढ़ाया, बाधाओं का तिरस्कार करना सिखाया। पर आज वैभव में मेरी स्पृहा नहीं है। केवल तुम्हें चाहता हूँ। यदि तुमने मेरी बात न सुनी तो समझ लो कि तुम्हारा यह साम्राज्य आज नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।

इड़ा बोली : मैं समझती हूँ इस बिखरे वैभव का तुम्हें स्वामी बना कर मैंने कुछ बुरा नहीं किया। मेरा इतना अपराध अवश्य है कि तुम्हारी प्रत्येक बात में हाँ में हाँ मिलाना मै नहीं जानती। रात बीत चली, प्रभात होने वाला है। तुम यदि अब भी धैर्य और विचार से काम लो तो बिगड़ी बात बन सकती है।

ऐसा कह कर इड़ा द्वार की ओर बढ़ी, पर मनु ने आवेश में आकर उसे हाथों से थाम लिया और अपनी ओर खींच कर वक्ष से लगा लिया। इसी बीच सहसा सिंह-द्वार टूट गया। जनता भीतर घुस आई। इड़ा को देखकर लोगों ने चिल्लाना प्रारम्भ किया 'हमारी रानी', 'हमारी रानी।' जनता को उत्तेजित देख मनु क्रोध से भर कर बोले : तुम मेरे उपकारों को एक दम भूल गए। मैंने तुम्हें व्यवस्थित किया, सभ्य बनाया, भाषा दी, प्रकृति से युद्ध करना सिखाया। जनता बोली : पापी, तूने हमें लोभी बनाकर काल्पनिक दुःखों से दुःखी रहना सिखाया। और इसके ऊपर जो हमारी महारानी पर अत्याचार किया है उस अक्षम्य अपराध के बदले में तुझे अभी दंड मिलेगा।

बात दोनों ओर से बढ़ चली। युद्ध आरंभ हुआ। जनता का संचालन असुर पुरोहित आकुलि और किलात कर रहे थे। मनु ने उन्हें धराशायी किया। इड़ा ने बहुत चाहा कि युद्ध रुक जाय, पर मनु जन-संहार करते रहे। अंत में बहुत से व्यक्तियों ने मिल कर मनु पर आक्रमण किया। दैवी प्रकोप भी कुछ कम नहीं था। परिणाम यह हुआ कि मनु

मरणासन्न होकर गिर पड़े और पृथ्वी पर जनता के रक्त की नदी बह चली।

पृष्ठ १८९

श्रद्धा का था स्वप्न—श्रद्धा ने यद्यपि मनु द्वारा इड़ा के शरीर का बलपूर्वक आलिंगन और शरण न मिलने पर प्रजा का विद्रोह-भावना से भर जाना आदि सब सब स्वप्न में ही देखा था, परन्तु था यह सब कुछ सत्य। इधर मनु के व्यवहार पर इड़ा संकुचित थी और उधर प्रजा अत्यन्त क्रुद्ध।

भौतिक विप्लव देख—भौतिक विप्लव—भौतिक हलचल, भूचाल।

अर्थ—भूचाल देख कर वे व्याकुल हो उठे, घबरा उठे। वे राजा की शरण में इसलिए आए थे कि उनकी रक्षा हो सके।

किंतु मिला अपमान—मनस्ताप—मानसिक क्लेश।

अर्थ—पर वहाँ उनका अपमान किया गया, उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया। इस पर सबको मानसिक क्लेश हुआ और वे क्रुद्ध हो उठे।

क्षुब्ध निरखते वदन—क्षुब्ध—क्रुद्ध। वदन—मुख। तांडव लीला—भयंकर हलचल।

अर्थ—इड़ा के मुख की ओर दृष्टि डाली तो वह एकदम पीला पड़ गया था, इससे वे और भी कुपित हो उठे। इधर प्रकृति की भयंकर हलचल अभी बंद नहीं हुई थी।

प्रांगण में थी भीड़—प्रांगण—आँगन।

अर्थ—प्रजा के लोग महल के आँगन में इकट्ठे हो गए। भीड़ बढ़ने लगी। पहरेदारों ने दरवाज़ा बंद किया और चुप हो कर बैठ गए।

रात्रि घनी कालिमा—रात घने अंधकार के परदे को ओढ़ कर छिपती फिरती थी। बीच बीच में बादलों में बिजली चमक उठती और पृथ्वी से लग-लग जाती थी।

मनु चिंतित से—शयन—शय्या, बिस्तर। श्वापद—हिंसक जंतु।

अर्थ—मनु शय्या पर पड़े सोच-विचार में लीन थे। जैसे किसी को हिंसक जंतु नोचते हैं उसी प्रकार उन्हें कभी क्रोध नोचता था कभी चिंता। अर्थात् कभी तो क्रोध से तिलमिला कर सोचते थे कि इन्हें अभी चल कर दंड दूँ और कभी इस शंका के उठते ही कि न जाने आज ये मेरी क्या दशा करेंगे, पीड़ित हो उठते थे।

मैं यह प्रजा—वे सोचने लगे: इन बिखरे व्यक्तियों को व्यवस्थित प्रजा का रूप देकर मुझे कितना संतोष हुआ था। कोई नहीं कह सकता कि आज तक मैंने कभी इन पर क्रोध किया हो।

कितने जव से—जव—वेग, तीव्र गति। चक्र—शासन चक्र। छाया—व्यक्तित्व।

अर्थ—किस तीव्र गति के साथ मैं इनके शासन-चक्र को चला रहा था अर्थात् असाधारण गति से मैंने इस राज्य की उन्नति की। एक दिन ये सब एक दूसरे से अलग अलग थे, पर इनके व्यक्तित्वों को मैंने एक भावना-सूत्र में गूंथ दिया। तात्पर्य यह कि इनमें यह भावना भर कर कि हम एक ही राज्य की प्रजा हैं इन्हें एक कर दिया।

मैं नियमन के—नियमन—शासन। एकत्र करना—एकता उत्पन्न करना, व्यवस्था देना। चलाना—नियमों का पालन करना, आज्ञा का पालन कराना।

अर्थ—नियम बनाकर उनका पालन इनसे मैंने कराया और अपनी बुद्धि-शक्ति से प्रयत्न करके मैंने इनमें एकता की भावना इसलिए भरी कि शासन-व्यवस्था भंग न हो।

पृष्ठ १९०

किन्तु स्वयं भी—पर क्या स्वयं मुझे भी यह सब कुछ मानना पड़ेगा? क्या मैं थोड़ा भी स्वतंत्र नहीं हूँ? सोने को गला कर जैसे कभी भी किसी भी रूप में ढाला जा सकता है, उसी प्रकार क्या मुझे भी सदा

प्रजा की इच्छा पर चलना होगा ? भाव यह कि मेरी अपनी दृढ़ता, मेरा अपना व्यक्तित्व क्या कुछ नही है ?

जो मेरी है सृष्टि—भीत—डरना। अविनीत—उच्छृंखल होना, नियमों को न मानना।

अर्थ—जो मेरे बनाये हुए हैं उनसे ही मुझे डर कर रहना होगा ! क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं है कि कभी मैं उच्छृंखल हो जाऊँ—नियमों को न मानूँ ?

श्रद्धा का अधिकार—श्रद्धा का यह अधिकार था कि उसके सामने मैं आत्म-समर्पण करता। वही मैंने स्वीकार नहीं किया। मैंने अपनी स्वतन्त्रता का बराबर विकास किया और अपनी पत्नी तक के बंधन में नहीं रहा।

इड़ा नियम परतंत्र—निर्बाधित—बाधाहीन, बे रोक-टोक।

अर्थ—और इड़ा नियमों में कसकर मुझे पराधीन बनाना चाहती है। वह मेरे ऐसे अधिकार को स्वीकार नहीं करती कि मेरे ऊपर किसी का अधिकार नही है।

विश्व एक बंधन-विहीन—स्वयं यह परिवर्तनशील जगत् भी किसी बंधन में नहीं बँधा। इसके भीतर जो सूर्य, चंद्र और तारे हैं—

नोट—भाव आगे के छंद में पूरा होगा।

रूप बदलते रहते—वे अपना स्वरूप बदलते रहते हैं। पृथ्वी जल में डूब कर समुद्र बन जाती है। समुद्र सूख कर रेगिस्तान में बदल जाता है। सागर में बड़वाग्नि के रूप में आग धधकती है।

तरल अग्नि की—तरल—द्रव रूप में, धारा। हिम नग—बर्फ से ढके पर्वत। लीला—क्रीड़ा।

अर्थ—ध्यान से देखो तो आग की धारा सब वस्तुओं में प्रवाहित हो रही है। बर्फ से ढके पर्वत इसी आग के प्रभाव से गल कर सरिता के रूप में क्रीड़ा करते हुए बह रहे हैं।

यह स्फुलिंग—यह—मनुष्य । स्फुलिंग—चिनगारी । नृत्य—झलक ।

अर्थ—मनुष्य भी आग की एक चिनगारी के समान पल भर के लिए अपनी झलक दिखा कर चला जाता है। ऐसा कौन है जिसे इस विश्व में रुकने की सुविधा मिल जाय ?

कोटि कोटि नक्षत्र—शून्य—अन्तरिक्ष, आकाश । महा विवर—विशाल गुहा । लास—कोमल नृत्य । रास—नृत्य । अधर—निराधार स्थान ।

अर्थ—करोड़ों नक्षत्र आकाश की विशाल गुहा में निराधार स्थान में लटके हुए कोमल नृत्य कर रहे हैं ।

उठती हैं पवनों—स्तर—तह, परत । चीत्कार—करुण ध्वनि, चीख ! परवशता—पराधीनता ।

अर्थ—हवा के परतों में कितनी ही लहरियाँ उठती हैं । नीचे मनुष्यों के लोक में दुःख की इतनी चीखें उठ रही हैं जिनकी कोई संख्या नहीं, इतनी विवशता है जिसकी सीमा नहीं ।

पृष्ठ १९१

यह नर्तन उन्मुक्त—विश्व के इस मुक्त नृत्य का कम्पन तीव्रतर होता हुआ एक गति धारण करता जा रहा है। यह नृत्य एक लक्ष्य की सिद्धि के लिए हो रहा है।

वि०—'प्रसाद' को संगीत के पारिभाषिक शब्दों में सोचना प्रिय लगता है। नृत्य करते समय शरीर का एक-एक अंग एक विशेष ढंग से हिलता है। इसके लिए स्पंदन आया है। नृत्य करने वाला पहले धीरे-धीरे नाचता है फिर तेज़ी से। जहाँ नृत्य में पदसंचालन या करसंचालन तीव्र हुआ वहाँ विशेष गति आ जाती है। यह गति लय (तान) के अनुसार होती है। लय विलंबित, मध्य और द्रुत—तीन प्रकार की होती है। धीमी लय होगी तो नाचने वाला धीमे नाचेगा, द्रुत या

तीव्र गति होगी तो नृत्य करने वाला द्रुत गति (rapid motion) से नाचेगा। लय का वास्तविक आनन्द उसी समय है जब नृत्य, गीत और वाद्य की समता (harmony) हो जाय।

विश्व के उन्मुक्त नृत्य से तात्पर्य यह है कि वह एक मुक्त आकाश में चक्कर काट रहा है, उसका प्रत्येक तत्त्व गतिशील है। एक दिन अंत में प्रलय होगी। जगत् के जीवन पर विचार करें तो वह धीरे-धीरे विकास की ओर अग्रसर है और यह विकास एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए हो रहा है।

कभी कभी हम—पुनरावर्तन—घटना का दुहराया जाना।

अर्थ—कभी कभी हम देखते हैं जो घटना एक बार घट चुकी है उसी रूप में वह दुबारा घटती है। उसे हम नियम मान लेते हैं। फिर ऐसे नियमों के अनुसार हम अपने जीवन को चलाते हैं।

रुदन हास बन—परन्तु हमारी हँसी पलकों में आँसू बन कर ढलती है। सैकड़ों प्राण जो पराधीन हैं मुक्ति पाने को लालायित हैं।

जीवन में अभिशाप—जीवन संकटमय है। संकट से पीड़ा मिलती है। सत्य बात यह है कि संसार-रूपी कुंज की हरियाली नाश की गोद में पनप रही है अर्थात् सृष्टि की एक एक वस्तु जो विकसित हो रही है उसका वास्तविक स्वरूप यह है कि वह नाशवान् है।

विश्व बँधा है—चारों ओर से बार-बार जब यह पुकार आई कि संसार एक नियम से बँधा है तब मनुष्यों के हृदय में यही भावना दृढ़ हो गयी।

नियम इन्होंने परखा—पहले मनुष्य इस निश्चय पर पहुँचे कि संसार में बहुत से काम नियम से होते हैं। फिर उन्हीं नियमों के आधार पर उन्होंने सुख के साधन जुटाये। उदाहरण के लिए राजा की सृष्टि इस-लिए हुई कि वह अन्याय और अत्याचार से दुर्बलों की रक्षा करे। इसके

लिए स्वभावतः राजा ने कुछ नियम बनाये जिनका पालन करना आव-श्यक हुआ, पर साथ ही जिनसे प्रजा को सुख मिले।

परन्तु मैं यह नहीं मान सकता कि जो नियम बनाने वाला है अर्थात् शासक है उसे भी नियमों से बाध्य होना पड़ेगा।

मैं चिर बंधन-हीन—बंधन मैंने कभी स्वीकार नहीं किया और मेरी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि मैं मृत्यु तक की सदा उपेक्षा करूँगा।

महानाश की सृष्टि—हमारे प्राणों में चेतना है। इसका संतोष इसी में है कि यह जो नाशवान् सृष्टि है उसमें जितने पल हम आनन्द से काट लें, वे ही हमारे हैं। नहीं तो सब कुछ असार है।

प्रगतिशील मन—प्रगतिशील—चिंतन करता हुआ, विचारलीन।

अर्थ—विचारलीन मन की चिंताधारा एक क्षण भर के लिए रुक गई। मनु ने करवट ली तो देखा कि इड़ा अपना सब कुछ दे चुकने पर फिर लौट आई और शांत भाव से खड़ी है।

वि०—मनु ने इड़ा का बरबस आलिंगन किया था और वह भय से काँप उठी थी। यह सब कुछ उसकी इच्छा के विरुद्ध था। उसका अपमान था। पर वह मनु के कल्याण के लिए उन्हें समझाने को लौट आई। इसी पर मनु को आश्चर्य हुआ।

पृष्ठ १९२

और कह रही—इड़ा ने कहा: नियमों का बनाने वाला यदि स्वयं ही उन नियमों को न मानेगा तो यह निश्चय है कि उसका सारा कार्य-क्रम नष्ट हो जायगा।

ऐं तुम फिर—मनु ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा: तुम आज यहाँ फिर लौट कर किसलिए आई हो? प्रजा को तुमने विद्रोह के लिए भड़-काया। अब क्या कोई और नया ऊधम मचाने की मन में है?

नोट:—इस छंद की दूसरी पंक्ति का भाव आगे के छंद के 'मन

में' शब्द पर समास होता है। प्रश्न है : क्या मन में कुछ और उपद्रव की वात समाई है ?

मन में, यह सब—आज तो उपद्रव हुआ है, क्या उससे तुम्हारा मन नहीं भरा ? करने को अब रह क्या गया है ?

मनु सब शासन—स्वत्व—अधिकार। सतत—सदा। तुष्टि—संतोष। चेतना—स्वातंत्र्य भावना।

अर्थ—इड़ा बोली : हे मनु तुम्हारा संतोष इस बात में है कि तुम्हारे शासन के अधिकार को एक ओर सभी सब काल मानते रहें और दूसरी ओर उनके अंदर जो आत्म-चेतना (consciousness) या स्वा-तंत्र्य-भावना है उसे वे दबादें।

आह प्रजापति—राजन्, मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि ऐसा न तो कभी हुआ और न कभी होगा। स्वयं एकदम स्वतंत्र होकर अधिकार का भोग आज तक कोई नहीं कर पाया !

यह मनुष्य आकार—मनुष्य चेतना की विकसित मूर्ति है। उसकी इस चेतना के परदे में मनोविकारों का एक संसार बसा हुआ है।

वि०—आगे के छंदों में मनु को माध्यम बनाकर पश्चिम के विकासवाद (Theory of Evolution) की चर्चा, जिसमें 'स्पर्धा में जो उत्तम ठहरें वे रह जावें' (Survival of the fittest) का सिद्धांत चलता है, कवि कुछ हेर-फार के साथ करना चाहता है।

चिति केन्द्रों में—इस दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य चेतना का एक केन्द्र हुआ। होता यह है कि चेतना के एक केन्द्र (मनुष्य) का चेतना के दूसरे केन्द्र (मनुष्य) से संघर्ष चलता रहता है। इससे द्वैत-भाव अर्थात् यह भावना दृढ़ हो जाती है कि हम आपस में एक न होकर दो हैं, विरोधी हैं, भिन्न-भिन्न हैं।

वे विस्मृत पहचान—पर देखने में भिन्न-भिन्न लगने वाले प्राणी धीरे-धीरे इस भूले हुए सत्य को पहचानते हैं कि प्राणियों में चाहे खंड

चेतनाएँ हों, पर हैं वे एक ही चेतना के अंश। इस भावना के उठते ही एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के समीप आता है और अनेकता में एकता या भेद में अभेद-भावना की स्थापना होती है।

स्पर्धा में जो—स्पर्धा—होड़। संसृति—संसार।

अर्थ—फिर शारीरिक और मानसिक शक्तियों की होड़ (Competition) होती है। उसमें जो श्रेष्ठ ठहरते हैं वे अधिकारी होते हैं। परन्तु ऐसे व्यक्तियों का यह भी धर्म होता है कि जो दुर्बल हों उनके जीवन के लिए वे शुभ मार्ग का संकेत करें और इस प्रकार संसार का कल्याण करें।

पृष्ठ १९३

व्यक्ति चेतन—इस प्रकार मनुष्य को यदि सामाजिक दृष्टि या संघर्ष की दृष्टि से देखा जाय तो उसकी चेतना स्वाधीन नहीं रह जाती अर्थात् समाजबद्ध होकर प्राणी जो मन में आये नहीं कर सकता। दूसरे की सुख-सुविधा के अनुकूल उसे रहना होगा।

फिर भी वह रागद्वेष ही से सदैव पूर्ण रहता है। एक ओर जब कल्याण करने या शुभ मार्ग बताने की सोचता है तब प्रेममय प्रतीत होता है, और जब संघर्ष में रत रहता है तब उसकी चेतना वैर-भाव की कीचड़ में सनी रहती है।

नियत मार्ग में—नियत—निश्चित। ठोकर—भूल। लक्ष्य—उद्देश्य, ध्येय, गंतव्यस्थान (Destination)। श्रांत—हतोत्साह।

अर्थ—मनुष्य की यह चेतना संसार के विकास के मार्ग में पद पद पर भूल करती है और हतोत्साह भी होती है, पर दिन दिन यह अपने लक्ष्य के निकट ही पहुँच रही है।

वि०—'प्रसाद' का विश्वास है कि अनंत अपूर्णताओं और भूलों के होते हुए भी संसार और प्राणी दोनों चिरंतन विकासशील हैं।

यह जीवन उपयोग—उपयोग—सार्थकता। साधना—प्रयत्न। श्रेय—कल्याण। आराधना—रत रहना, प्राप्ति।

अर्थ—जीवन की सार्थकता इसी में है हम पूर्ण विकसित हों। बुद्धि का सारा प्रयत्न भी इसी के लिए है। तुम सुख चाहते हो। मेरी दृष्टि से सुख की प्राप्ति इसमें है कि हमारी आत्मा का कल्याण हो।

वि०—'प्रसाद' की दृष्टि से आत्म-कल्याण का अर्थ है दूसरों का कल्याण करना। दूसरों को सुख पहुँचा कर ही मनुष्य सुखी रह सकता है।

लोक सुखी हो—तुम्हारी राजसत्ता की छाया में शरण लेने से यदि लोक को सुख मिले तो तुम्हारा प्रजापति होना सार्थक है। जैसे प्राणवायु समस्त शरीर में इसलिए प्रविष्ट रहती है कि उसमें चेतना भरे, वैसे ही इस सारे राष्ट्र के स्वामी तुम इसलिए हो कि इसके विकास में सहायक हो।

देश कल्पना काल—देश—विस्तार, प्रसार। काल—समय। परिधि—घेरा। लय—समाप्त। महाचेतना—व्यापक चेतना, ईश्वर। लय—नाश, किसी में समाना।

अर्थ—विचार करके देखा जाय तो सृष्टि का जितना प्रसार है उसका उद्गम और लय-स्थान समय है। एक समय विशेष में ही प्रकृति की किसी वस्तु की रचना होती है और एक समय विशेष में ही वह नष्ट हो जाती है। इससे कहा जा सकता है कि स्थान की कल्पना काल की सीमा में समाप्त हो जाती है। अर्थात् अंत में स्थान काल में रूपान्तरित हो जाता है।

समय गतिवान है, अतः चेतन है। यह चेतन काल एक दिन (महा-प्रलय में) महाचेतन (ईश्वर) में लीन हो जाता है।

वि०—'प्रसाद' ने दर्शन के अत्यन्त गंभीर विवेचन को दो पंक्तियों में समेट कर रख दिया है। उसकी विशेष मीमांसा का यह स्थान नहीं है। उनके कहने का आशय यह है कि जो दिखाई सब कुछ देता है, पर

एक अद्वैत तत्त्व के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। देश (Space) काल (Time) में परिवर्तित हो जाता है और काल एक महाचेतना (Universal Consciousness) में। अतः मनु जो 'मैं' 'मैं' कर रहा है वह उसका शुद्ध भ्रम है।

वह अनंत चेतन—अनंत चेतन—भगवान। उन्मद गति—मस्ती से। नाचो—कर्म करो। द्वयता—भेदभाव। विस्मृति—भुलाना।

अर्थ—स्वयं भगवान मस्त होकर सृष्टि-कर्म में लीन हैं। तुम्हारे लिए भी यही उचित है कि तुम अपना काम भेदभाव को भुला कर करो।

क्षितिज पटी को—क्षितिज—वह स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी मिले हुए दिखलाई पड़ते हैं यहाँ माया के परदे या सीमित दृष्टि से तात्पर्य है। ब्रह्मांड—सम्पूर्ण विश्व, कपाल। विवर—गुफा, छिद्र। कुहर—गुफा।

अर्थ—जैसे किसी गुफा के मुख पर परदा पड़ा हो तो उसे हटा कर ही उसमें प्रवेश किया जा सकता है और उसके भीतर यदि बादल गूँजते हों तो वह गूँज भी सुनने को मिल सकती है, वैसे ही इस संसार-रूपी गुफा में यदि बढ़ना है तो अपनी सीमित दृष्टि को हटा दो। ऐसा करने पर इसमें जो आनन्द के बादलों की गूँज उठ रही है वह तुम्हें सुनाई देगी। अर्थात् वास्तविक आनन्द 'मै', 'तू' की संकीर्णता को परे फेंकने पर ही मिल सकता है।

वि०—इस छंद से योगपक्ष का एक अर्थ भी ध्वनित है। प्रसिद्ध है कि योगी लोग कपाल में अवस्थित ब्रह्मरंध्र में अनहद-नाद सुनते हैं। उस दृष्टि से साधक से कहा जारहा है कि वह माया को परे फेंक कर कुंडलिनी को जागरित करता हुआ ब्रह्मरंध्र में ले जाय। वहाँ उसे अनहद-नाद सुनाई देगा।

ताल ताल पर—ताललय—संगीत में किसी राग के टुकड़े को निश्चित समय में निश्चित मात्राओं का बनाकर गाना जैसे 'हरे राम' में ६ मात्राएँ हैं। इसे बार बार एक ढंग से गाना लय में गाना है। तालों

की गति का नाम लय है। विवादी स्वर—राग को बिगाड़ने वाला स्वर।

अर्थ—जिस गाने वाले को ताल का ज्ञान होता है, वह लय में गाता है। वैसे ही यदि तुम चाहते हो कि आनंद मिले (लय न छूटे) तो तुम सब के अनुकूल होकर (ताल पर) चलो।

जैसे—बाजे म प्रतिकूल स्वर छोड़ने से गाना बिगड़ जाता है वैसे ही यदि तुम चाहते कि जीवन का संगीत बिगड़े न तो तुम विरोध की बातें न करो।

अच्छा यह तो—मनु ने कहा : ठीक है। पर यह सब अब तुम्हें नये सिरे से समझाने की आवश्यकता नहीं। मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि किसी को किसी दिशा में उकसाने की तुम में कितनी भारी शक्ति है।

पृष्ठ १९४

किंतु आज ही—मुझे आश्चर्य इस बात पर हो रहा है कि अभी तुम अपने को अपमानित समझ मेरे पास से क्रोध करके चली गई थीं और थोड़ी देर भी नहीं हुई कि फिर लौट आई। तुम्हारे मन में ऐसे साहस की बात उठी कैसे ?

आह प्रजापति—उफ, क्या मेरे राजा होने का यह अधिकार है कि जो मेरी कामना है वह कभी पूरी हो न हो ?

मैं सबको वितरित—वितरित—बाँटना। सतत—सदैव। प्रयास—प्रयत्न।

अर्थ—क्या सबको सुख-सुविधाएँ जुटाने का ही मेरा काम है ! और जब मैं अपने लिए कुछ पाने का प्रयत्न करूँ तो वह पाप है ? क्या इसे मैं सहन कर सकता हूँ ?

तुमने भी प्रतिदान—तुम्हारे लिए मैंने इतना किया। तुम बतला सकती हो उसके बदले में व्यक्तिगत रूप से तुमने मुझे कुछ दिया है ? क्या मुझे केवल ज्ञान देना ही तुम्हारे जीवित रहने के लिए यथेष्ट है ? भाव

यह कि जैसे मेरे हृदय में वैसे ही तुम्हारे हृदय में प्रेम की भावना नहीं उठती क्या ? क्या बिना प्रेम किए तुम अपना सारा जीवन काट दोगी ?

जो मैं हूँ चाहता—जो वस्तु मैं चाहता हूँ, यदि वह मुझे नहीं मिलती, तब तुमने जो त्याग की अभी व्यर्थ चर्चा की है, उसे अपने पास ही रखो।

\+ \+ \+ \+

इड़े मुझे वह—हे इड़ा, जिस वस्तु को मैं चाहता हूँ, वह मुझे मिलनी चाहिए। और वह वस्तु तुम हो। यदि तुम पर मेरा अधिकार नहीं है तो मेरा राजा होना व्यर्थ है।

तुम्हें देख कर—तुम्हें देख लेने पर मन मर्यादा के इस बंधन को स्वीकार नहीं करना चाहता कि तुम मेरी प्रजा हो, अतः तुमसे प्रेम करना मेरे लिए पाप है। सुनो, अधिकार अथवा शासन की अब मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है।

देखो यह दुर्धर्ष—दुर्धर्ष—दुर्दमनीय। कंपन—हिलना, हलचल। समत्त—सामने, समता में। क्षुद्र—कुछ नहीं के बराबर। स्पंदन—काँपना।

अर्थ—दुर्दमनीय प्रकृति की इस भारी हलचल को देखो। परन्तु इसका यह कंपन भी मेरे हृदय की धड़कन के सामने कुछ नहीं के बराबर है।

इस कठोर ने—मैं वह सबल हृदय व्यक्ति हूँ जो प्रलय के भी आघात को खेल समझ कर हँस कर झेल गया। परन्तु आज उसी हृदय में यह भावना जाग चुकी है कि वह अकेला है, उसे एक साथी की आवश्यकता है। यही कारण है कि वह तुम्हारे सामने आज इतना झुक गया है।

पृष्ठ १९५

तुम कहती हो—तुम कहती हो संसार एक लय है उसमें मैं लीन हो जाऊँ अर्थात् संसार में आनंद की सृष्टि के लिए यह आवश्यक है कि मैं सबकी इच्छाओं के अनुकूल चलता हुआ अपने व्यक्तित्व

को लोक के व्यक्तित्व से एक कर दूँ। पर इससे मुझे क्या सुख मिलेगा ?

क्रंदन का निज—आकाश—चारों ओर।

अर्थ—मेरे जीवन में चाहे चारों ओर रोना ही रोना हो, मुझे चिंता नहीं। परन्तु उसके बीच यदि मैं तुम्हें पा सका तो खिलखिला के हँस पड़ूँगा।

फिर से जलनिधि—चाहे समुद्र अपनी मर्यादा का परित्याग कर के तट पर फिर उछल कर बहने लगे। चाहे आँधी फिर वज्र (तीव्र) गति से आवे जावे—

नोट—भाव तीसरे छंद पर पूरा होगा।

फिर डगमग हो—चाहे एक बार फिर मेरी नाव उस जलराशि में डगमगा जाये और लहरें उसके ऊपर उतराने लगें। चाहे सूर्य, चंद्रमा और तारे एक बार फिर प्रलय देख कर चकित हो जायँ, हिल उठें और अपनी रक्षा के लिए चिंतित हों—

किंतु पास ही—परन्तु हे बाले, तुम्हें मैं कहीं न जाने दूँगा। तुम मेरी हो। मैं कोई खेल नहीं हूँ जिससे तुम खेल रही हो। भाव यह कि मैं इतना साधारण व्यक्ति नहीं हूँ जिसे तुम जैसे चाहो वैसे नचा सको।

आह न समझोगे—इड़ा बोली : उफ़, क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि मैं जो कुछ कह रही हूँ वह तुम्हारे हित के लिए है ? तुम आवेश में अपने अधिकार को खोने पर तुले हो।

प्रजा क्षुब्ध हो—एक ओर प्रजा तुम्हारा आश्रय पाने आई है और उसके न मिलने पर उत्तेजित हो उठी है। दूसरी ओर प्रकृति पल पल पर देवताओं के कोप-भय से निरंतर काँप रही है।

सावधान मैं—मैं तुम्हें सावधान किए जाती हूँ। इससे अधिक मेरे पास कहने को कुछ नहीं है कि मैं तुम्हारा भला चाहती हूँ। तुम्हें जो

कहना था वह मैं कह चुकी। मैं चलती हूँ। मेरे रुकने की यहाँ अब कोई आवश्यकता नहीं रही।

पृष्ठ १९६

मायाविनि बस—मायाविनि—जादूगरनी, आकर्षणमयी। खुट्टी-कुट्टी, बच्चे खेल खेलते समय जब बिगड़ उठते हैं तब बंद ओठों पर अंगूठे के पास की उँगली लाकर कहते हैं: 'हमारी तुम्हारी कुट्टी' और फिर एक दूसरे से नहीं बोलते।

अर्थ—मनु बोले: हे मायाविनि, तुम तो मुझसे इतने सहज भाव से छुटकारा पाना चाहती हो जैसे खेल खेल में बच्चे एक दूसरे से कहते हैं—'हमारी तुम्हारी खुट्टी' और फिर आपस में सम्बन्ध नहीं रखते।

मूर्तिमती अभिशाप—मूर्तिमती—साकार प्रतिमा। अभिशाप—अहितकारिणी। संघर्ष—विरोध। भूमिका—प्रारंभ।

अर्थ—तुम वह हो जो मेरे सामने अमंगल की साकार मूर्ति बन कर आई। तुम वह हो जिसने सर्व प्रथम विरोध करना सिखलाया।

रुधिरभरी वेदियाँ—विनयन—शासन, नियंत्रण, दबाव। उपचार—उपाय।

अर्थ—तुम्हारी तुष्टि के लिए यज्ञ की वेदियाँ बलि-पशुओं के रक्त से भर दी गईं। तुम्हारी प्रसन्नता के लिए यज्ञ-भूमि में भयंकर लपटें उठीं। तुम वह हो जिससे मैंने प्रजा को दबाने के उपाय सीखे।

चार वर्ण बन गए—जन-समुदाय चार श्रेणियों में विभाजित हो गया। प्रत्येक वर्ग ने अपना अपना काम बाँट लिया। ऐसे शस्त्रों और यंत्रों का निर्माण हुआ जिनकी कल्पना स्वप्न में भी नहीं हुई थी।

आज शक्ति का—उसमें कितनी शक्ति है यही दिखलाने के

लिए आज मनुष्य उतावला हो रहा है। प्रकृति से अब वह भयभीत नहीं होता। रात दिन उससे युद्ध करने में लगा हुआ है।

बाधा नियमों की—ऐसी दशा में मुझे नियमों से न जकड़ो। मेरी सारी आशाएँ नष्ट हो चुकी हैं। एक क्षण-भर के लिए तो मुझे सुख मिल जाने दो।

राष्ट्र-स्वामिनी यह—हे सारस्वत राज्य की रानी, तुम अपने समस्त वैभव को मुझ से वापस ले लो। मुझे केवल इतना अधिकार दे दो कि तुम्हें मैं सब प्रकार से अपनी कह सकूं।

यह सारस्वत देश—यदि ऐसा न हुआ तो समझ लो कि यह सारस्वत देश नष्ट हो जायगा। तुम इस राज्य में आग लगाने वाली सिद्ध होगी और यह राज्य धुएँ के समान उड़ जायगा।

मैंने जो मनु—इड़ा ने उत्तर दिया : हे मनु, तुम्हारी उन्नति के लिए मैंने जो कुछ किया है उसे ऐसे झूठे तर्कों से भुलाने का प्रयत्न न करो। तुम्हें जो अधिकार और वैभव मिला है उससे अभिमान में न आओ।

पृष्ठ १९७

प्रकृति संग संघर्ष—प्रकृति का सामना करना तुम्हें मैंने ही सिखाया है। तुम्हें माध्यम बना कर प्रजा और तुम्हारी उन्नति की ही मैं साधक हूँ। मैंने कोई बुरा काम नहीं किया।

वि०—यहाँ देखने की बात यह है कि इड़ा की बुद्धि से जो सिद्ध हुआ उसका श्रेय मनु लेना चाहते थे, वैसे ही जैसे काम सम्पन्न होते हैं चालक की बुद्धि से, श्रेय लेना चाहे मशीन।

मैंने इस बिखरी—मैं वह हूँ जिसने तुम्हें अत्यन्त सरलता से इस सृष्टि के बिखरे ऐश्वर्य का अधिपति बना दिया। मेरे ही कारण आज तुम इसके रहस्यों से परिचित हो पाए हो।

किंतु आज अपराध—किंतु कृतज्ञ होना तो दूर, आज उल्टा तुमने

हमें दोषी ठहराया। आज स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि यदि हम तुम्हारी हाँ में हाँ न मिलायें, तो यह हमारा अपराध है।

मनु देखो यह—हे मनु, देखो रात बीत चली। पर क्या यह सत्य थी? नहीं। यह दृष्टि का भ्रम है। सूर्य की अनुपस्थिति में यह प्रतीत होती है। प्रमाण यह है कि पूर्व दिशा में नव उषा ने अंधकार को मिटा दिया।

ठीक इसी प्रकार तुम अभी तक अज्ञान के अंधकार में आबद्ध हो। ज्ञान की उषा का यदि उदय हो जाय तो तमस (तुम्हारे अन्तर का तमोगुण) मिट जाय।

तात्पर्य यह कि तुम भूल में हो, समझ से काम लो।

अभी समय है—अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। यदि मेरे ऊपर विश्वास हो और तुम थोड़े धैर्य से काम ले सको तो सब ठीक हो जायगा।

और एक क्षण—ठीक उसी समय मनु के मन में उच्छृङ्खलता की एक लहर फिर उठी। उधर इड़ा दरवाजे की ओर बढ़ी।

किंतु रोक ली—किंतु वह जा नहीं सकी। अपनी भुजाएँ बढ़ा कर मनु ने उसे रोक लिया। उसकी सहायता करने वाला वहाँ कोई न था। दीन दृष्टि से वह केवल ताकती रह गई।

यह सारस्वत देश—मनु बोले: अच्छा, यह सारस्वत देश तुम्हारा है और तुम इसकी रानी हो। मुझे अब पता चला कि तुम मुझे अपना अस्त्र (कार्य-सिद्धि का साधन) बनाकर जो तुम्हारे मन में आता था वह करा रही थीं।

वि०—इड़ा ने कहा था: तुमको केन्द्र बना कर अनहित किया न मैंने। मनु इसी पर भड़क उठे हैं।

पृष्ठ १९८

यह छल चलने—पर तुम भी समझ लो कि आज से तुम्हारा

छल शक्ति हीन है। स्पष्ट किए देता हूँ कि अब मैं तुम्हारे फंदे से बाहर हूँ।

शासन की यह—तुम्हारे राज्य की उन्नति अब स्वतः ही बंद हो जायगी, क्योंकि अब मुझसे तुम्हारी गुलामी नहीं हो सकती।

मैं शासक मैं—मैंने शासन करना ही सीखा है। मैं कभी पराधीन नहीं रहा। अतः मैं अपने जीवन की सफलता इस बात में समझता हूँ कि तुम पर भी मेरा असीम अधिकार रहे।

छिन्न भिन्न अन्यथा—यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हारी यह राज्य-व्यवस्था अभी नष्ट-भ्रष्ट हुई जाती है। यह व्यवस्था पाताल में चली जाय मुझे चिंता नहीं।

देख रहा हूँ—मैं देख रहा हूँ एक ओर पृथ्वी भूचाल के कारण अत्यन्त भय से काँप रही है और दूसरी ओर रुद्र के वज्र धनु की टंकार से आकाश में निर्मम करुण-ध्वनि भर गई है।

किन्तु आज तुम—इतना होने पर भी आज तुम मेरी भुजाओं में कसी हुई हो। मेरी छाती से आज तुम्हें कोई नहीं छुड़ा सकता। इसके उपरांत इड़ा की कोई अनुनय-विनय न चली। वह केवल आहें भरती रह गई।

सिंह द्वार अरराया—उसी समय मुख्य द्वार अररर शब्द करता हुआ टूट गया। जनता भीतर घुस पड़ी। इड़ा को देखते ही लोगों ने चिल्लाना प्रारंभ किया 'हमारी रानी, हमारी रानी।'

अपनी दुर्बलता में—स्खलन—पतन। काँपना—लड़खड़ाना।

अर्थ—उस समय यह देखकर कि लोगों को उनकी दुर्बलता का पता चल गया, मनु हाँपने लगे। इड़ा पर बल प्रयोग करते समय मनु जानते थे कि यह उनका पतन है। यह सोचकर उनके पैर काँपने लगे थे। थोड़ी देर में जब जनता भीतर आई, तब भी उनके पैरों का लड़खड़ाना बंद नहीं हुआ।

सजग हुए मनु—राजदंड—एक दंड जिसे राजा लोग दरबार में बैठते समय अपने हाथ में रखते थे। यह किसी धातु का बना और प्रायः गदा के आकार का होता था।

प्रजा को देखकर वज्रनिर्मित राजदंड को हाथ में ले मनु सावधान हो गए और चिल्ला कर बोले : इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे तुम ध्यान से सुनो।

पृष्ठ १९९

तुम्हें तृप्तिकर—मैंने सुख के वे सारे साधन तुम्हें बताये जिनसे हृदय तृप्त होता है। मैंने ही कर्म का विभाजन करके तुम्हें जातियों में बाँटा।

नोट :—व्याकरण की दृष्टि से यहाँ 'बताया' अशुद्ध है। 'बताये' होना चाहिए। पर तब तुक न मिलती।

अत्याचार प्रकृति—प्रकृति के उन अत्याचारों का जिन्हें हम सबको सहना पड़ता है, विरोध करना हम ने सीख लिया है और पहले के समान अब हम एकदम चुप नहीं बैठे रहते।

आज न पशु—आज हम न तो पशु जैसे असभ्य है और न वन में घूमने वाले भाषाहीन प्राणी। भाव यह कि आज हम घर बना कर बसते हैं, भाषा का प्रयोग करते हैं और सभ्य कहलाते हैं।

मेरे द्वारा किए गये इस उपकार को क्या तुम आज भूल गए?

वे बोले सक्रोध—तब मानसिक पीड़ा से दुःखी होकर क्रोध प्रदर्शित करते हुए लोगों ने उत्तर दिया : देखो, आज पापी अपने मुँह से ही अपने दोषों की चर्चा कर रहा है।

तुमने योगक्षेम—योगक्षेम—आवश्यक वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की रक्षा को योगक्षेम कहते हैं, जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं का जुटाना। संचय—इकट्ठा करना। विचार संकट—चिंता।

अर्थ—आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यदि हम वस्तुओं या धन

को इकट्ठा करते, यहाँ तक तो ठीक था, पर तुमने हमें व्यर्थ ही धन जोड़ना सिखाया। इस प्रकार हमें लोभी बना कर तुमने रात दिन चिंता में डाल दिया।

हम संवेदनशील—संवेदनशील—अधिक अनुभूतिशील। कृत्रिम—काल्पनिक।

अर्थ—तुमने जो कुछ किया उससे हमें यह सुख मिला कि हम अधिक अनुभूतिशील हो गए। पहले वास्तविक दुःखों पर ही दुःखी होते थे, अब काल्पनिक दुःखों पर भी दुःखी होने लगे।

वि०—जिस दुःख का अस्तित्व तक नहीं है उसे लेकर इस प्रकार दुःखी होना कि 'यदि ऐसा हुआ तो हाय क्या होगा और वैसा हुआ तो हाय क्या होगा' काल्पनिक दुःख की श्रेणी में आता है। जो जितना अधिक कल्पनाशील या भावुक होता है वह उतना अधिक दुःखी रहता है।

प्रकृत शक्ति तुमने—प्रकृत—स्वभाविक। शोषण—चूसना। जर्जर—जीर्ण। झीनी—दुर्बल, निःशक्त।

अर्थ—यंत्रों का आविष्कार करके तुमने हमारी स्वाभाविक शक्ति को व्यर्थ कर दिया। हमारे जीवन को चूस कर तुमने उसे जीर्ण और निःशक्त बना दिया।

और इड़ा पर—और इड़ा पर तुमने जो यह अत्याचार किया है उसका तुम्हारे पास कोई उत्तर है! हमारे सहारे जीवित रहने वाले क्या हमें यही दिन दिखाने के लिए तू अब तक बचा हुआ था?

आज बंदिनी—यायावर—जिसके रहने का स्थान निश्चित न हो, एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमने वाला।

आज हमारी इड़ा महारानी को तुमने बंदी बना रखा है। तुम्हारी, जिसके रहने का कोई ठौर-ठिकाना नहीं, अब कोई रक्षा नहीं कर सकता।

पृष्ठ २००

तो फिर मैं हूँ—मनु बोले : यदि ऐसी बात है तो आज जीवन-संग्राम में प्रकृति और उसके पुतले मनुष्यों के भयंकर दल में फँसा मैं अकेला ही सामना करूँगा।

आज साहसिक का—जब तुम्हारे शरीर पर आघात होंगे तब पता चलेगा कि मुझ साहसी में कितना बल है। यह वज्र का राजदंड आज तक हाथ की शोभा था, पर मेरी कठोरता देखकर तुम्हें पता चलेगा कि राजदंड वास्तव में वज्र का (भीषण) होता है।

यों कह मनु—देव—देवताओं। आग—अपराध पर उत्पन्न कोप। ज्वाला उगली—दंड देने को उतारू हुए।

अर्थ—इतना कहकर मनु ने अपने भयंकर अस्त्र को सँभाल कर हाथ में ले लिया। उसी समय मनु के अपराध पर देवताओं ने कोप किया और वे उन्हें दंड देने पर उतारू हुए।

छूट चले नाराच—नाराच—तीर। धूमकेतु—पुच्छल तारे।

अर्थ—जनता के धनुषों से तीखे नोकदार तीर छूटने लगे। उधर आकाश में नीले पीले रंग के पुच्छल तारे टूटे।

अंधड़ था बढ़ रहा—आँधी का वेग ठीक प्रजा की झुंझलाहट के समान बढ़ रहा था और उस आँधी में बिजली ठीक उसी प्रकार चमक रही थी जिस प्रकार उस घमासान युद्ध में शस्त्र चमक रहे थे।

किंतु क्रूर मनु—परन्तु निर्दयी मनु बाणों के प्रहार को बचाते तलवार से जनता के प्राण नष्ट करते आगे बढ़े।

तांडव में थी—तांडव—रुद्र का प्रलय नृत्य। प्रगति—विशेष गति। विकर्षणमयी—अस्तव्यस्त, विपरीत।

अर्थ—रुद्र का प्रलय नृत्य तीव्र गति से चल रहा था। अणु चंचल हो उठे। यह देखकर कि भाग्य विपरीत है, सब भयभीत हो गए।

मनु फिर रहे—अलातचक्र—चक्कर काटती मशाल । रक्तिम—रक्त बहाने वाला, खूनी । उन्माद—आवेश । निर्मम—निर्दय ।

अर्थ—उस घन अंधकार में चक्कर काटती मशाल के समान मनु चारों ओर घूम घूम कर लड़ रहे थे, आवेश में आकर, निर्दयी होकर उनका हाथ रक्त बहाने को चंचल हुआ ।

उठा तुमुल रणनाद—तुमुल—कोलाहल । अवस्था—स्थिति । पद दलित—पैरों से कुचला जाना, छिन्न भिन्न । व्यवस्था—राज्य व्यवस्था ।

अर्थ—युद्ध में कोलाहल ध्वनि छा गई । उस समय की स्थिति भयानक थी । मनु के विरोधियों का समूह चुपचाप उनकी ओर बढ़ा । आज राज्य-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई ।

आहत पीछे हटे—दुर्लक्ष्यी—कठिन निशाने को बींधने वाला । टंकार—कसे धनुष की डोरी को खींच कर छोड़ने से उत्पन्न ध्वनि ।

अर्थ—घायल होकर मनु पीछे हटे । एक खंभे का सहारा लेकर उन्होंने साँस ली और फिर उस धनुष पर जो कठिन से कठिन निशाने को बींध सकता था टंकार की ।

पृष्ठ २०१

बहते विकट अधीर—उस समय उनचास प्रकार की भयंकर वायु तीव्र वेग से चंचल होकर बहने लगीं । प्रजा के लोगों के लिए वह मरण-काल था । इस समय आकुलि और किलात उनका संचालन कर रहे थे ।

वि०—किसी भारी दैवी प्रकोप के समय उनचास पवन छूटते हैं । लंका-दहन के प्रसंग में तुलसी ने लिखा है—

हरि-प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास

ललकारा बस अब—आकुलि और किलात ने ललकार कर कहा:

आज यह बच कर भाग न जाय। किंतु मनु पहले से ही होशियार थे। उनके पास पहुँच कर बोलेः पकड़ो इन्हें।

कायर तुम दोनों—अरे कायरो, तुम्हें अपना समझ कर ही मैंने अपनाया था, पर अब पता चला कि यह सारा ऊधम तुम दोनों का खड़ा किया हुआ है।

तो फिर आओ—यदि ऐसी बात है तो आगे बढ़ो। हे किलात, हे आकुलि, तुम तो यज्ञ-पुरोहित हो। तुमने बहुत से पशुओं की बलि करायी है। पर यह यज्ञभूमि नहीं, रणक्षेत्र है। आज तुम भी देख लो कि बलि कैसे दी जाती है!

और धराशायी थे—और उसी क्षण दोनों असुर-पुरोहित मनु के बाण खाकर पृथ्वी पर लोट गए। इड़ा बराबर कह रही थीः बस, युद्ध को अब बंद करो।

भीषण जन संहार—दैवी प्रकोप से भीषण जन-संहार स्वयं ही हो रहा है। अरे, पागल मनुष्य, फिर तू जीवन नष्ट करने पर क्यों उतारू है?

क्यों इतना आतंक—ओ अभिमानी, इतना भय तू क्यों फैला रहा है? सब को जीने दे और उनके साथ-साथ तू भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर।

किंतु सुन रहा—किंतु इड़ा की बात पर मनु ने ध्यान नहीं दिया। पास में ही वेदी की ज्वाला धधक रही थी। ऐसा लगता था जैसे पशुओं के स्थान पर प्राणियों को बलि किया जा रहा है। समूह रूप में जनबलि का यह नवीन ढंग मनु ने ही उत्पन्न किया।

वि०—यहाँ 'वेदी ज्वाला' सामान्य अर्थ में ही प्रयुक्त है 'युद्ध की आग' के अर्थ में नहीं। 'निर्वेद' में आया है—(१) अग्निशिखा थी धधक रही तथा (२) सहसा धधकी वेदी ज्वाला।

रक्तोन्मद मनु का—रक्त बहाने का पागलपन मनु पर सवार था।

उनका हाथ अब भी नहीं रुका था। साथ ही प्रजा का साहस भी कम न हुआ।

वहीं घर्पिता खड़ी—घर्पिता—अपमानिता।

अर्थ—वहीं मनु से अपमानिता सारस्वत प्रदेश की रानी इड़ा खड़ी थी। प्रजा के लोग बदला चुकाने को अधीर थे और उसके लिए अपना खून पसीने की तरह बहा रहे थे।

पृष्ठ २०२

धूमकेतु सा चला—उसी समय रुद्र का एक भयंकर तीर पुच्छल तारे के रूप में उनके पिनाक नामक धनुष से छूटा। वह अपने सिरे पर प्रलय की आग लपेटे हुआ था।

अंतरिक्ष में महाशक्ति—सहसा आकाश में किसी महाशक्ति की 'हूँ' ध्वनि सुनाई दी। प्रजा के लोग पैने शस्त्रों को हाथ में लेकर वेग से बढ़े।

और गिरी मनु पर—और वे धारें मनु पर टूट पड़ीं। मरणासन्न होकर वे जहाँ खड़े थे वहीं गिर पड़े और जिस स्थान पर युद्ध हुआ था वहाँ रक्त की एक वेगवती नदी बहने लगी।

निर्वेद

कथा—युद्ध की समाप्ति पर सारस्वत नगर में मलिनता छा गई, उदासी घिर आई, विषाद बरसने लगा। संध्या हुई, पर पहली सी चहल-पहल अब कहाँ! पक्षी करुण रव कर उठे, दीपों से धूमिल प्रकाश फूटा, अन्धकार भयभीत सा चुप खड़ा रह गया। यज्ञ-मंडप में इड़ा एकाकिनी बैठी सोच रही थी: मनु ने मेरी प्रजा की अकारण हत्या की है। इसे दण्ड मिलना चाहिए। नहीं। यह ठीक नहीं। इस समय यह घायल पड़ा है, इसकी सेवा करनी चाहिए। यह व्यक्ति मुझसे प्रेम करता था! निश्चय ही। पर संयम के मूल्य को यह नहीं पहचानता था। यह इसका दोष था। इसी से एक छोटी सी हठ के लिए इसने इतना भीषण-कांड रच डाला। पछतावा इस बात का है कि जिस सहृदयता का व्यवहार मैंने इसके साथ किया उसकी ओर इसने ध्यान नहीं दिया। एक दिन वह भी था जब यह इधर-उधर भटकता फिरता था और एक दिन वह भी आया जब मैंने इसे सम्राट् बनाया। मेरे इस उपकार को इसने इतनी जल्दी भुला दिया!

सहसा दूर से आती हुई एक ध्वनि सुनकर इड़ा चौंक पड़ी। उस सुनसान रात में कोई स्त्री यह कहती हुई उसकी ओर बढ़ी चली आ रही थी कि अरे कोई यह बतला दो कि मेरा रूठा प्रवासी कहाँ है? इड़ा ने उठ कर देखा राजपथ पर कोई दुखिया स्त्री अपने किशोर बालक को साथ लेकर किसी की खोज में घूम रही है। उसने उन दोनों को टोका और यहीं ठहरने का आग्रह किया। ये श्रद्धा और उसका पुत्र मानव थे। उसी समय वेदी की धधकती ज्वाला के आलोक में श्रद्धा ने मनु को

पहचाना और उन्हें उस दशा में देखकर वह बहुत दुःखी हुई। उसने मनु को सहलाना प्रारम्भ किया। उस कोमल परस के पाते ही मनु की व्यथा दूर हो गई और अपनी ठुकराई हुई श्रद्धा को फिर अपने निकट पाकर उनकी आँखें भर आईं। श्रद्धा ने अपने पुत्र को पास बुला कर बतलाया कि वे उसके पिता हैं। कुमार इस पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसी समय भाव मग्न होकर श्रद्धा ने एक गीत गुनगुनाया जिससे मनु को बड़ी शांति मिली।

प्रभात होते ही मनु ने आँखें खोलीं। श्रद्धा से कहा: तुम मेरे निकट आओ। इड़ा भी वहीं खड़ी थी। उसे देखकर वे विरक्त हो उठे और अपनी आँखों के आगे से हटने की उसे आज्ञा दी। फिर उन्होंने श्रद्धा से उन्हें कहीं दूर ले जाने की इच्छा प्रकट की। पर श्रद्धा ने यह कह कर कि अभी वे चलने फिरने में अधिक समर्थ नहीं है, वहीं रुकना उचित समझा।

मनु ने भावावेश में आकर कहना प्रारम्भ किया: श्रद्धा, अपने जीवन के वे दिन मुझे याद आते हैं जब मैं युवक था, मेरे हृदय में प्रेम की तरंगें उठ रही थीं और मेरा भी कोई अपना था। वे सुख के दिन थे। सहसा प्रलय उपस्थित हुई और सब नष्ट हो गया। मैं एकाकी, उदास और आकुल रहने लगा। ठीक ऐसे समय में तुम आईं और मेरे मन में बस गईं। तुम्हारे प्रेम को प्राप्त करके मैं धन्य हुआ। पर तुमने मुझ तुच्छ-हृदय को इतना स्नेह दिया कि मैं उसे सँभाल न सका, देवी तुमने मेरे जीवन में सुख, मंगल और विश्वास भरा, तुमने मेरे हृदय के भीतर से उत्तम गुणों को उभारा, तुमने हँस-हँस कर संसार के कष्टों का सामना करना मुझे सिखाया, तुमने सबसे मैत्री-भाव रखने का आदेश मुझे दिया। देवी, तुम्हारे सम्पर्क में आकर मेरा हृदय कोमल हुआ। पर मैंने, जहाँ तक दूसरों का सम्बन्ध था उन पर क्रोध किया और जहाँ तक अपना सम्बन्ध था वहाँ तक स्वार्थ से काम लिया। यह कुमार, मेरा पुत्र, मेरे कितने

भारी स्नेह का केन्द्र और कितने बड़े आकर्षण का कारण है, इसे मैं कैसे बतलाऊँ ? पर सचमुच मैं तुच्छ हूँ, अधम हूँ। मुझमें अब भी सम दृष्टि से देखने की न तो क्षमता है और न त्याग करने की शक्ति। देवी, मैं अपराधी हूँ, मुझे क्षमा करो। मेरी आंतरिक कामना है कि तुम सब मिल कर सुखी रहो।

श्रद्धा ने मनु के अन्तर की इस हलचल को पहचाना, पर वह शांत ही रही। दिन व्यतीत हुआ। रात आई। पर नींद किसी को न आई। इड़ा को आज बड़ा पछतावा हो रहा था। और मनु तो सबसे अधिक दुःखी थे। वे पड़े-पड़े सोचने लगे : जीवन सुख है ? नहीं। निश्चित रूप से नहीं। मैं पापी हूँ। अपने इस मुख को श्रद्धा को कैसे दिखलाऊँ। एक प्रश्न यह भी है कि यदि श्रद्धा मेरे साथ रही तो मैं इन शत्रुओं से बदला नहीं ले सकूँगा। और साम्राज्य में शत्रु खड़े करके यहाँ रहना भी उचित नहीं है।

प्रभात हुआ, पर मनु इसके पूर्व ही सबको एक विचित्र उलझन में छोड़कर कहीं चले गए थे।

पृष्ट २०५

वह सारस्वत नगर—क्षुब्ध—व्याकुल। मौन—सुनसान। विगत—बीती हुई। कर्म—घटना, यहाँ दुर्घटना। विष—विषैला, दुःखपूर्ण। विषाद—शोक। आवरण—वातावरण। उल्काधारी—मशालधारी। ग्रह—मंगल शुक्र आदि नक्षत्र। वसुधा—पृथ्वी।

अर्थ—वह सारस्वत नगर जिसमें प्रजा और मनु के बीच संघर्ष हुआ था इस समय व्याकुल था, मलिन था, कुछ सुनसान सा था। उसके ऊपर अभी हुई दुर्घटना के विषैले शोक का वातावरण छाया हुआ था।

आकाश में ग्रह और तारे मशालधारी प्रहरियों के समान घूम रहे

थे। वे यह देख रहे थे कि पृथ्वी पर यह हो क्या रहा है और इस बात पर विचार कर रहे थे कि प्रत्येक अणु चंचल क्यों है।

जीवन में जागरण—जागरण—जाग्रतावस्था, प्रवृत्ति-मार्ग। सुषुप्ति—आत्मा की परमात्मा में लीनता, निवृत्ति-मार्ग, ज्ञान। भव-रजनी—संसार रूपी रात्रि। भीमा—भयंकर। निशिचारी—रात में घूमने वाले, राक्षस। सर्राटे भरना—पक्षी का सर सर शब्द करते वेग से उड़ना, तीव्र गति। सन्नाटा खींचना—चुप होना, निःशब्द होकर।

अर्थ—जीवन में जाग्रत अवस्था में हम जो कुछ अनुभव करते हैं वह सत्य है अथवा उसका चरम लक्ष्य यह है कि जीव ब्रह्म में लीन हो? भाव यह कि प्रवृत्ति मार्ग सत्य है अथवा ज्ञान-मार्ग निश्चय-पूर्वक कहना कठिन है। हाँ, अन्तर से यह ध्वनि बार-बार उठती है कि यह संसार एक भयानक रात्रि (भारी भ्रम) है।

इस प्रकार निशाचर (राक्षस) जैसे भयंकर विचार सर सर उड़ते हुए पक्षियों के समान मस्तिष्क में पूरे वेग से चक्कर काट रहे थे। नगर के निकट ही सरस्वती नदी चुप बही जा रही थी।

वि०—(अ) जैसे सोकर स्वप्न में हम सब कुछ करते हैं, पर वह सत्य नहीं, ठीक वैसे ही हमारे सांसारिक कर्म भी जग कर देखे हुए सपने हैं, सत्य नहीं। स्वप्न की बातें प्रभात के प्रकाश में जैसे असत्य सिद्ध होती हैं वैसे ही जाग्रत-काल के कर्म ज्ञान का प्रकाश पाने पर असत्य सिद्ध होते हैं। 'क्या जागरण सत्य है' इस पर तुलसी के विचार देखिये—

सपने होहिं भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे हानि न लाभ कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ।

(आ) ज्ञान-क्षेत्र में संसार का रूपक रात्रि से बाँधा जाता है। तुलसी ने लिखा है—

एहि निशि जामिनि जागहिं जोगी, परमारथी प्रपंच-वियोगी
जानिय जबहिं जीव जग जागा, जब सब विषय विलास विरागा।

(इ) विचार करने वाले का संकेत यहाँ स्पष्ट रूप से नहीं किया गया। पर वह इड़ा हो सकती है। यदि वह न होती तो यह विचार कवि की ओर से माना जाता।

पृष्ठ २०६

अभी घायलों की—मर्म—गहरी। पुर लक्ष्मी—नगर की देवी, हिन्दुओं का ऐसा विश्वास है कि प्रत्येक नगर की एक अधिष्ठात्री देवी होती है जो उसकी रक्षा करती है। मिस—बहाने। धूमिल—धुँधला खिन्न—उदासीन। अवसाद—शिथिलता से पूर्ण।

अर्थ—युद्ध भूमि में पड़े घायल व्यक्ति अब तब सिसकियाँ ले रहे थे। उन्हें मार्मिक पीड़ा हो रही थी। पक्षी बीच-बीच में करुण ध्वनि कर उठते थे। ऐसा लगता था जैसे नगर की देवी उनके बहाने आज की करुण-कहानी का कोई अंश सुना रही है।

नगर में कहीं-कहीं दीपक जल रहे थे जिनसे धुँधला प्रकाश आ रहा था। वायु रुक रुक कर चल रही थी। उसकी गति में उदासीनता और शिथिलता थी।

भयमय मौन—भयमय—भयभीत। निरीक्षक—दर्शक। सजग—चौकन्ना। सतत—सदा से। दृश्य—दिखाई देने वाला, ठोस, मूर्त्त। मंडप—यज्ञस्थल। सोपान—सीढ़ी।

अर्थ—रात होने के कारण अंधकार का एक काला परदा जो माप में ठोस जगत से भी बड़ा था युद्ध-भूमि पर छा गया। ऐसा लगता था जैसे वह उस दुर्घटना का कोई दर्शक हो जो भयभीत होकर शांत चौकन्ना और चुपचाप सदा से वहाँ खड़ा है।

मंडप की सीढ़ियाँ सूनी थीं। वहाँ और कोई नहीं था। केवल इड़ा यज्ञ-भूमि में बैठी थी। पास में अग्नि की लौ वेग से उठ रही थी।

पृष्ठ २०७

शून्य राज चिह्नों—राज चिन्ह—राजा की सत्ता को घोषित करने वाली बातें जैसे स्वयं राजा, प्रहरी, सेना, भाट चारण आदि। मन्दिर—महल।

अर्थ—वह महल राजकीय-चिह्नों से आज सूना था और समाधि जैसा लगता था। समाधि किसी मृत शरीर को ही तो अपने में छिपाए रहती है। इस समाधि में भी मनु का घायल शरीर पड़ा हुआ था।

इस हत्या-कांड को देख कर इड़ा को बड़ी ग्लानि हुई। वह बीती बातें सोच रही थी। मनु ने जो कुछ किया उस पर कभी उसे बड़ी घृणा उत्पन्न होती थी और कभी उससे प्रेम पर विचार करके उसके घायल शरीर को देख कर ममता भी। इस प्रकार उसने कई रातें बिताईं।

नारी का वह—सुधासिंधु—करुणा का अमृत सिंधु। बाड़व ज्वलन—समुद्र के अन्तर में निवास करने वाली अग्नि के समान क्षोभ की ज्वाला। कंचन—सोना। मधु—प्रेम का रस। पिंगल—पीत रंग, फीकापन या क्षीणता। शीतलता—जल और क्षमा का आग और हृदय को ठंडा करने का गुण। संसृति—संसार। प्रतिशोध—बदला। माया—प्रभाव।

अर्थ—इड़ा का हृदय भी आखिर नारी का हृदय था जो सदा उलझनमय होता है। एक ओर उसमें करुणा का अमृत-सिंधु हिलोरें ले रहा था, दूसरी ओर मनु के अपराध पर उसका हृदय जल रहा था जो बाड़वाग्नि का काम कर रहा था। जैसे समुद्र की अग्नि की लपटें जब समुद्र के जल के भीतर से फूटेंगी तब जल का रंग सोने का दिखाई देगा, वैसे ही हृदय में भरे करुणा के उज्ज्वल अमृत में जब जलन का रंग फूटा तब वह पीला (फीका) पड़ गया। भाव यह कि मनु के

अपराध पर क्षोभ उत्पन्न होते ही उसके प्रति करुणा-भावना क्षीण हो जाती थी।

परन्तु समुद्र की पीतवर्णी अग्निधारा को जल शीतल भी तो करता रहता है। इसी प्रकार थोड़ी ही देर में प्रेम के रस से पूर्ण उस हृदय में जिसमें क्षोभ की पीत (क्षीण) अग्निधारा उठ रही थी फिर क्षमा अपना संसार बसाती अर्थात् क्षमा-भावना उदित होती। इस प्रकार क्षमा और बदला लेने की भावनायें दोनों अपना प्रभाव दिखा रही थीं।

पृष्ठ २०८

उसने स्नेह किया—अनन्य—एक लक्ष्य पर स्थायी रहने वाला, एकनिष्ठ। सहज लब्ध—सरलता से प्राप्त। बाधाओं का—लोक-नियमों को विघ्न मान कर। अतिक्रमण—उल्लंघन। अबाध—उच्छृङ्खल। सीमा—मर्यादा।

अर्थ—मनु मुझे प्रेम करते थे यह ठीक है; पर वह प्रेम एकनिष्ठ न रह सका। यदि उनका प्रेम एकनिष्ठ होता तो वे मेरी भावनाओं का आदर करते, मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे ऊपर बल का प्रयोग न करते। फिर भी मनु का हृदय ऐसा था अवश्य कि उसे यदि कहीं टिकने के लिए अवसर मिलता तो वह अत्यन्त सहज भाव से अपनी अनन्यता का परिचय देता।

जो प्रेम लोक-नियमों को विघ्न समझ कर उच्छृङ्खल भाव से उनका उल्लंघन करता है, जो प्रेम सारी मर्यादा को छिन्न-भिन्न कर डालता है, वह अपराध गिना जाता है।

हाँ अपराध—यह—मनु का प्यार। भीम—भयंकर। जीवन के कोने—एकांत की सामान्य बात। असीम—व्यापक संघर्ष। शून्य—मार्गहीन।

अर्थ—हाँ, उच्छृङ्खल प्यार अपराध तो है, परन्तु यह एक हल्की सी घटना कितनी भयंकर सिद्ध हुई। मेरे प्रति मनु का अनुरोध एक व्यक्ति

के एकांत जीवन की सामान्य सी बात थी। उसने राजा और प्रजा के व्यापक संघर्ष का रूप धारण कर लिया।

और वे मेरे अनेक उपकार और साथ ही मनु के प्रति मेरा सहृदयतापूर्ण आचरण! क्या वह सब कुछ सारहीन था? क्या उसके पीछे केवल कपट काम कर रहा था।

पृष्ठ २०९

कितना दुखी—धरा-पृथ्वी, यहाँ ठहरने का स्थान। शून्य-सूनापन। चतुर्दिक—जीवन में चारों ओर। सूत्रधार—संचालक। नियमन—नियम। आधार—उद्गम, निर्माता। निर्मित—बनाये हुए, खड़े किए हुए। विधान—व्यवस्था।

अर्थ—वह व्यक्ति जो एक दिन एक परदेशी के रूप में मेरे पास आया था, कितना दुःखी था! ठहरने को उसके पास स्थान नहीं था और जीवन उसका चारों ओर से सूना था।

एक दिन वही प्राणी शासन का संचालक और नियमों का निर्माता बना। और अपनी खड़ी की हुई व्यवस्था के अनुकूल—वह राजा था, अतः दंड देने का अधिकारी था—उसने स्वयं अपने को दंड की प्रतिमूर्ति सिद्ध किया अर्थात् अपने हाथों प्रजा की हत्या की।

सागर की लहरों—सागर—समुद्र, दुःख। शैलशृंग—पर्वत की चोटी, उन्नति की सीमा। अप्रतिहत—जिसे कोई रोक न सके। संस्थान—डेरा, ठहरने का स्थान, मंजिल। सपना—निस्सार।

अर्थ—समुद्र की लहरों में घिरा व्यक्ति अत्यन्त सरलता से एक दिन पर्वत की चोटी पर चढ़ गया अर्थात् दुःखों के समुद्र की लहरों के चपेटे खाने वाला प्राणी (मनु तो वैसे भी जल-प्रलय से बचे थे) वैभव और उन्नति के शिखर पर पहुँचा। उसकी गति रोकने वाला कोई न था। उसकी उन्नति की अनेक मंज़िलें थीं, पर वह कहीं रुका नहीं। जिस मंज़िल पर पहुँचता था उससे आगे ही बढ़ जाता था।

आज वह मृतप्राय पड़ा है। उसका वह समस्त अतीत जिसमें वह वैभव का स्वामी रहा आज निस्सार सिद्ध हुआ। जिसे एक दिन सब अपना समझते थे, उसके लिए आज वे सब पराये बन गए।

पृष्ठ २१०

किन्तु वही मेरा—जिसका—इड़ा का। सर्ग—सृष्टि। पल्लव—किसलय, नवीन पत्ते। भले बुरे—भलाई बुराई। सीमा—मिलन स्थल। युगल—दोनों, भलाई बुराई से तात्पर्य है।

अर्थ—जिस मनु ने मेरे राज्य को सँभाल कर मेरा उपकार किया, उसी ने मेरी प्रजा की हत्या करके मेरा अपराध किया। जो व्यक्ति अपने गुणों से सब को लाभ पहुँचाता था, उसी से प्रत्यक्ष रूप में उनके रक्त-पात का दोष बन पड़ा।

पता यह चलता है कि भलाई और बुराई सृष्टि रूपी अंकुर के दो पत्ते हैं। दोनों एक दूसरे से मिले हुए हैं अर्थात् प्रकृति में न कोई शुद्ध भली वस्तु है और न कोई शुद्ध बुरी। सभी में कुछ भलाई कुछ बुराई मिली रहती है। यदि ऐसा ही है तो हम दोनों ही को क्यों न प्रेम की दृष्टि से देखें!

अपना हो या—बिन्दु—सीमा। दौड़ना—अथक प्रयत्न करना। पथ में रोड़े बिखराना—रास्ता रोकना, यहाँ सुख का मार्ग रुद्ध करना।

अर्थ—सुख चाहे अपना हो चाहे दूसरों का जहाँ वह बढ़ता है वहीं दुःख का कारण बन जाता है। किंतु सुख-भोग में कहाँ तक बढ़ जाना चाहिए और किस सीमा पर रुक जाना चाहिए यह भी निश्चयपूर्वक नहीं बताया जा सकता।

मनुष्य अपने भविष्य के सुखों की चिंता में अपने वर्तमान के सुख को छोड़ बैठा है। इस प्रकार अपने मार्ग में रोड़े बिखराता (अपने सुख को मिटाता) मनुष्य अथक प्रयत्न में लीन है। भाव यह कि उसे न भविष्य का सुख मिलता है और न वर्तमान का।

पृष्ठ २११

इसे दंड देने—विकट—जटिल । पहेली—समस्या । वास्तविकता—यथार्थ स्थिति, प्रजा के लोगों और मनु का घायल होना ।

अर्थ—मैं मनु को दंड देने के लिए यहाँ बैठी हूँ अथवा इसके घायल शरीर की रक्षा कर रही हूँ ? यह एक जटिल समस्या है । मेरा हृदय भी कैसा उलझनमय है !

मेरे मन में यह मधुर कल्पना जगी है कि मेरे यहाँ बैठने का परिणाम सुन्दर निकलेगा और मेरी इस कल्पना को सत्य का वरदान मिलेगा अर्थात् वह सत्य सिद्ध होगी । मेरा यह भी विश्वास है कि उसका रूप इस वास्तविक (भयंकर) स्थिति से अच्छा होगा ।

वि०—मनु के शरीर की रक्षा का परिणाम यह निकला कि श्रद्धा की सेवा द्वारा उन्हें फिर जीवनदान मिला और उनके कुमार मानव की सहायता से इड़ा ने फिर एक बार अपने नष्ट राज्य को सँभाला ।

चौंक उठी अपने—चौंकना—चकित होना । दूरागत—दूर से आई हुई । निस्तब्ध—सुनसान । प्रवासी—परदेशी । फेरा डालना—घूमना ।

अर्थ—इड़ा अपने विचारों में डूबी हुई थी । सहसा उसने दूर से आती हुई एक ध्वनि सुनी जिस पर वह चौंक उठी । उस सुनसान रात में कोई स्त्री यह कहती बढ़ी चली आ रही थी—

अरे कोई दया करके इतना बतला दो कि मेरा परदेशी कहाँ है ! मैं उसी बावले को पाने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम रही हूँ ।

पृष्ठ २१२

रूठ गया था—अपनेपन—अहंभाव की प्रधानता । शूल—काँटा सदृश—समान । सालना—कसकना, खटकना, चुभना । उर—हृदय ।

अर्थ—अहंभाव की प्रधानता के कारण वह मुझसे रूठ गया था । मैं उसे अपनाने में असमर्थ रही । जो अपने नहीं होते उन्हें मनाया

जाता है और क्योंकि वह तो मेरा अपना ही था इसीलिए उसे मनाने की चिंता मैंने नहीं की।

पर यह मेरी भूल थी जो हृदय में अब काँटे के समान खटक रही है। मेरे पास आकर कोई इतना बतावे कि मैं उसे कैसे पा सकूंगी?

इड़ा उठी दिख पड़ा—राजपथ—राजमार्ग। वेदना—व्यथा। जलना—दुःख की जलन में भरा रहना। शिथिल—थका हुआ। वसन—वस्त्र, कपड़े। विशृंखल—अस्त व्यस्त। कबरी—चोटी। अधीर—हिलती। छिन्न—टूटे हुए। मकरंद—पुष्प रस।

अर्थ—इड़ा उठी। उसने देखा राजमार्ग पर एक धुँधली सी छाया चली आरही है। उसकी वाणी से करुण व्यथा टपकती थी मानो उसके स्वर में किसी दुःख की आग भरी हो।

शरीर उसका थक गया था, कपड़े अस्तव्यस्त थे; चोटी वेग से हिल रही थी और खुली थी। उस स्त्री को देखकर लगता था जैसे कोई मुरझाई हुई कली हो जिसके पत्ते टूट गए हैं, जिसका रस लुट चुका है।

पृष्ठ २१३

नव कोमल अवलम्ब—नव—नवीन। अवलम्ब—सहारा। वय—अवस्था। किशोर—ग्यारह से पन्द्रह वर्ष की अवस्था का बालक। बटोही—पथिक, रास्तागीर।

अर्थ—सहारे के लिए उसके साथ नवीन कोमल शरीर वाला किशोरावस्था का एक बालक उँगली पकड़े हुए था। वह अपनी मा के हाथ को कसकर थामे इस प्रकार चुपचाप धैर्य धारण किए चला आरहा था मानो साक्षात् धैर्य शांत भाव से बढ़ा आरहा हो।

वे दोनों ही दुःखी पथिक मा बेटे चलते चलते थक गए थे। जो मनु घायल होकर यहाँ पड़े थे, वे उन्हीं भूले मनु की खोज में थे।

इड़ा आज कुछ—द्रवित—पिघलना, हृदय का कोमल होना।

बिसराना—भूलना। रजनी—रात। चंचल—अधीर। व्यथा—दुःख, पीड़ा। गाँठ—बंद या छिपी। खोलना—भेद खोलना, चर्चा करना।

अर्थ—इड़ा का मन आज पहले से ही कुछ पिघला हुआ था। उसने दुःखियों को देखा। उनके पास जाकर पूछाः तुम्हें किसने भुला दिया है? इस रात में भटकती हुई तुम भला कहाँ जाओगी? तुम मेरे पास आकर बैठो। मैं स्वयं आज बहुत अधीर हूँ। तुम भी अपने छिपे दुःख को मेरे सामने खोल कर रखो।

पृष्ठ २१४

जीवन की लंबी—रातें—समय। श्रान्त—थका हुआ। विश्राम—आराम, ठहरने का स्थान। वह्नि—अग्नि।

अर्थ—जीवन इतनी लंबी यात्रा है जिसमें अपने खोये हुए साथी भी मिल ही जाते हैं। यदि मनुष्य जीता रहे तो जिनसे उसका विछोह हुआ है उनसे उसका कभी न कभी मिलन भी हो जाता है। यों दुःख का काल किसी प्रकार बीत ही जाता है।

यह जान कर कि कुमार थक चला है और यहाँ विश्राम मिलता है, श्रद्धा रुक गई। वह इड़ा के साथ उस स्थान पर पहुँची जहाँ अग्नि-शिखा जल रही थी।

सहसा धधकी—धधकी—वेग से जली। आलोकित—प्रकाशित। कुछ—मनु को। डग भरना—लंबे पैर बढ़ाना। नीर—आँसू।

अर्थ—अकस्मात् वेदी की ज्वाला धधक उठी जिससे यज्ञ-मंडप प्रकाशित हो गया। इसी बीच कामायनी ने कुछ ऐसा देखा जिससे उसे मनु की आकृति का संदेह हुआ। वह उस तक जल्दी चरण बढ़ा कर पहुँची।

अरे, ये तो उसके अपने मनु हैं। ये तो सचमुच घायल हैं। तब क्या उसका वह स्वप्न सत्य था? उसके मुँह से इतना ही निकलाः आह

प्राणप्रिय ! यह क्या हुआ ? तुम्हारी ऐसी दशा ! और तब उसका हृदय घुल कर आँसू के रूप बहने लगा।

पृष्ठ २१५

इड़ा चकित—चकित—आश्चर्य में। सहलाना—कोमलता से शरीर पर हाथ फेरना। अनुलेपन—लेप। नीरवता—चुपचाप पड़ा रहना। स्पन्दन—धड़कन। बिन्दु—आँसू की बूँदें।

अर्थ—इड़ा यह देखकर चकित हो उठी। श्रद्धा मनु के निकट आकर बैठ गई और उनके शरीर को सहलाने लगी। उसका मधुर स्पर्श लेप का काम कर रहा था। ऐसी दशा में मनु के शरीर में पीड़ा भला कैसे टिक सकती थी ?

मनु अभी तक मूर्च्छावस्था में चुप पड़े थे! श्रद्धा का परस पाते ही उनके हृदय में हलकी धड़कन प्रारंभ हुई। उनकी आँखें खुलीं और चारों कोनों में आँसू की चार बूँदें भर आईं।

उधर कुमार—मन्दिर—महल। मनोहर—सुन्दर। रोयें—शरीर के रोम।

अर्थ—उधर कुमार ऊँचे महल, यज्ञ-मंडप और वेदी को देखने में लीन था। वह चकित होकर सोच रहा था यह सब क्या है ? ये तो एकदम नवीन वस्तुएँ हैं। कैसी सुन्दर हैं ? और हृदय को ये कितनी प्यारी लगती हैं !

मा ने उसे पुकार कर कहाः अरे कुमार तू इधर तो आ। देख, तेरे पिता यहाँ पड़े हुए हैं। कुमार ने उत्तर दियाः पिता जी, देखो मैं आ गया। इतना कहते ही उसका शरीर रोमांचित हो उठा।

पृष्ठ २१६

मा जल दे—गुंजन—ध्वनित, गूँजना। आत्मीयता—अपनत्व। परिवार—कुटुम्ब।

अर्थ—कुमार बोला : मां इन्हें जल दे। ये प्यासे होंगे। तू यहाँ

बैठी कर क्या रही है ? उसकी इस बात से वह सूना मंडप गूँज उठा। इससे पहले ऐसी सजीवता वहाँ कहाँ थी ?

उस घर में एक प्रकार के अपनेपन ने प्रवेश किया। अब उन चारों का एक छोटा सा कुटुम्ब बन गया। श्रद्धा ने एक गीत गाया जिसका मधुर स्वर उस स्थान पर मँडराने लगा।

तुमुल कोलाहल—तुमुल—घोर। हृदय की बात—शांति।

अर्थ—हे मेरे मन, जब कलह का घोर कोलाहल छाता है तब मैं शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करती हूँ।

वि०—जब मनु श्रद्धा के साथ रहे तब तक कलह से बचे रहे। इड़ा के सम्पर्क में आते ही संघर्ष का सामना करना पड़ा। कलह का अर्थ यहाँ बाहरी कलह और आन्तरिक अशान्ति दोनों का लेना चाहिए। यदि श्रद्धा को स्त्री मानें तब वह बाह्य कलह से मनु को बचाती रही और यदि वृत्ति मानें तो वह हृदय को क्षोभ से दूर रखती है। यही भाव इस पूरे गीत में है।

विकल होकर—विकल—आकुल, दुःखी। चंचल—अधीर। नींद के पल—विश्राम। चेतना—बुद्धि। थकना—संघर्ष से ऊबना। मलय की बात—मलय पवन, मलय नामक पर्वत की ओर से, जो दक्षिण में है और जिस पर चंदन के वृक्ष उगते हैं, आने वाली सुगंधित वायु।

अर्थ—मनुष्य की बुद्धि जब दुःख से आकुल होकर सदा अधीर रहने लगती है और संघर्ष से ऊब विश्राम चाहती है तब मैं मलय पवन के समान उसे शान्ति पहुँचाती हूँ।

पृष्ठ २१७

चिर विषाद विलीन—चिर—बहुत दिन से। विषाद—शोक। विलीन—डूबा हुआ—व्यथा—पीड़ा, शोक। तिमिर—अंधकार। ज्योति-रेखा—किरण।

अर्थ—जो मन चिर काल से शोक में डूबा है उसमें मैं आनन्द

की किरण वैसे ही उगा देती हूँ जैसे रात के अंधकार में डूबी सृष्टि को उषा की किरणें खिला देती हैं।

अंधकार में डूबा वन जैसे प्रभात काल में फिर खिले पुष्पों से शोभा-शाली प्रतीत होता है वैसे ही पीड़ा के अंधकार से युक्त मन रूपी वन भी सुख के प्रभात में आनन्द रूपी पुष्पों से युक्त होता है और मन को शोक से मुक्त कर सुख और आनन्द से युक्त करना मेरा ही काम है।

जहाँ मरु ज्वाला—मरु—रेगिस्तान, जीवन की शुष्कता। चातकी—एक पक्षी, आत्मा। कन—जलकण, आनन्द। सरस—जल-भरी, रसपूर्ण, आनन्दमयी।

अर्थ—प्रकृति में हम देखते हैं कि मरुभूमि में ग्रीष्म का प्रचंड ताप जब फैलता है और चातकी जब स्वाति नक्षत्र की एक बूँद के लिए तरस जाती है तब पर्वत की घाटियों से उठकर जलभरे बादल बरसते हैं और उसे तृप्त करते हैं। ठीक ऐसे ही जब जीवन शुष्क मरुभूमि सा बन जाता है और उसमें दुःख की आग धधकने लगती है, तब आत्मा रूपी चातकी सुख की एक बूँद के लिए तरस जाती है। उस समय हे मन, मैं जीवन के पलों में रस (आनन्द) की वर्षा करती हूँ।

पवन की प्राचीर—पवन की प्राचीर—स्थिर पवन, परिस्थितियों का घेरा। जीवन—जल और प्राणियों का जीवन। झुकना—एक ओर रहना, कहीं कोने में पड़ा रहना। कुसुम ऋतु—वसंत ऋतु।

अर्थ—गर्मियों के दिनों में जब वायु भी चलना बंद कर देती है और दीवाल के समान स्थिर प्रतीत होती है तब ऐसे वातावरण में बंद पड़ा जल जो ग्रीष्म के ताप से सूख गया है प्रवाहहीन हो जाता है और किसी एक ओर को झुक (रुक) कर जैसे तैसे बना रहता है। इसी प्रकार परिस्थितियों के घेरे में बंद दुःख से दग्ध व्यक्ति भी किसी कोने में पड़े रहते हैं, किसी प्रकार जीते हैं।

पर जैसे ताप से झुलसने दिन के उपरांत वसंत की रात के आने

पर सब ताप नष्ट हो जाता है वैसे ही दुःख से झुलसते संसार में मैं वसंत की रात के समान सुख और ऐश्वर्य की शीतलता और समृद्धि लाती हूँ।

चिर निराशा—चिर—बहुत दिनों की, घनी। नीरधर—मेघ, बादल। प्रतिच्छायित—प्रतिबिंबित। सर—तालाब, सरोवर। मधुप—भौंरा। मुखर—गूँज से युक्त। मरंद—पुष्प रस। मुकुलित—खिला हुआ। सजल—सरस। जलजात—कमल या कमलिनी।

अर्थ—घनी निराशाओं के मेघ जब आँसुओं के सरोवर में प्रतिबिंबित होते हैं तब भी हे मन, मैं उसमें उस सरस कमलिनी के समान खिलती हूँ जिस पर भौंरे गूँजते हों, जो रस से भरी हो, जो विकासोन्मुख हो। भाव यह है कि किसी प्रकार के दुःख के कारण जब आँखों में आँसू आते हैं तब घनी निराशा छा जाती है; जो हृदय श्रद्धावान् अर्थात् इस सम्बन्ध में अडिग है कि दुःख क्षणिक है और सुख लौटकर आएगा ही वह अपनी निराशा में भी आशा की गूँज और उसके बने रहने से जीवन में रस, विकास और प्रसन्नता का अनुभव करता है।

पृष्ठ २१८

उस स्वर लहरी—स्वर लहरी—गीत। संजीवन रस—जीवन देने वाला रस, नवीन उत्साह, नवीन बल देने वाली कोई बात। प्राची—पूर्व दिशा। मुद्रित—बंद। अवलंबन—सहारा। कृतज्ञता—एहसान, आभार।

अर्थ—श्रद्धा के मुख से निकले गीत के समस्त अक्षर संजीवन रस बन कर मनु के अंतर में घुल गए अर्थात् उसके गान ने उन्हें नवीन जीवन दान दिया। उधर पूर्व दिशा में प्रातःकाल होते ही उन्होंने अपनी बन्द आँखें खोलीं। उन्हें श्रद्धा का एक बार फिर सहारा मिला। उसके प्रति कृतज्ञता से अपने हृदय को भर कर प्रसन्न होकर वे उठ बैठे और प्रेममयी वाणी में कहने लगे—

वि०—यहाँ 'फिर' शब्द की यह सार्थकता है कि एक बार इसके पूर्व भी घोर निराशा की ऐसी ही स्थिति में जब मनु का कोई अपना नहीं था तब श्रद्धा ने ही उनके मन को सहारा दिया था। इसके लिए 'श्रद्धा' सर्ग देखिए।

श्रद्धा तू आगई—भला तो—अच्छा हुआ। स्तम्भ—खंभे। वेदिका—यज्ञ की वेदी। क्षोभ—आकुलता, जी घबराना।

अर्थ—श्रद्धा तुम आ गई! बहुत अच्छा हुआ। पर क्या मैं अभी तक यहीं पड़ा था? हाँ, यह वही भवन है, ये वे ही खंभे हैं। यह वही यज्ञ की वेदी है जहाँ युद्ध हुआ था। यहाँ चारो ओर बिखरे कुत्सित दृश्यों को देखकर घृणा उत्पन्न होती है।

घबरा कर मनु ने आँखें बन्द कर लीं। बोले: श्रद्धा, मुझे यहाँ से कहीं बहुत दूर ले चलो। कहीं ऐसा न हो कि दुर्भाग्य के इस भयंकर अंधकार में मैं तुम्हें फिर खो बैठूं?

नोटः—'आँख बन्द कर लिया' प्रयोग अशुद्ध है। आँख स्त्री-लिङ्ग है और उसके साथ पुलिङ्ग क्रिया का प्रयोग है।

पृष्ठ २१९

हाथ पकड़ ले—हाथ पकड़ना—सहारे का आश्वासन देना। चल सकना—जीवन बिताना। अवलम्बन—सहारा। कुसुम—पुष्प। नीरव—चुप, शांत, मौन।

अर्थ—यदि तुम मेरा हाथ थाम लो तो मैं अब भी जीवन के शेष दिन भली प्रकार व्यतीत कर सकता हूँ, पर शर्त यह है कि मुझे तुम्हारा सहारा बराबर मिलता रहे। उधर वह कौन हैं? इड़ा है न? तुम मेरी आँखों के सामने से हट जाओ। श्रद्धा, तुम मेरे पास आओ जिससे मेरे हृदय का पुष्प विकसित हो अर्थात् मेरा मन प्रसन्न हो।

श्रद्धा चुप बैठी मनु के सर पर हाथ फेर रही थी। अपनी आँखों में

दृढ़ विश्वास भर कर मानों वह कह रही थी : तुम मेरे हो। ऐसी दशा में तुम्हें (इड़ा से) व्यर्थ डरने की क्या आवश्यकता है ?

जल पीकर कुछ—इस छाया—साम्राज्य की सीमा। मुक्त—खुला हुआ। गुहा—कंदरा, गुफ़ा। झेलना—सहना।

अर्थ—मनु ने जल पिया जिससे वे थोड़े स्वस्थ हुए। इसके उपरांत उन्होंने धीरे धीरे बोलना प्रारंभ किया: इस साम्राज्य की सीमा से मुझे दूर ले चलो। मुझे यहाँ न रहने दो।

खुले नीले आकाश के नीचे या किसी कंदरा के भीतर हम अपने दिन काट लेंगे। अब तक मैंने कष्ट ही कष्ट झेले हैं और भविष्य में भी जो संकट आवेंगे उन्हें हम मिल कर सहन कर लेगें।

पृष्ठ २२०

ठहरो कुछ तो—तुरत—तुरंत, शीघ्र। क्षण—समय। संकुचित—लज्जित। यह—रहने का। अविचल—स्थिर।

अर्थ—श्रद्धा बोली: अभी यहीं रहो। तुम्हारे शरीर में जब थोड़ा बल आ जायगा तब शीघ्र ही तुम्हें कहीं ले चलूंगी। क्या ये हमें इतने समय तक यहाँ न रहने देंगी ?

इड़ा वहीं लज्जित सी खड़ी थी। उन दोनों के कुछ दिन वहाँ ठहरने के अधिकार पर 'ना' न कह सकी। श्रद्धा स्थिर भाव से बैठी रही, पर मनु की वाणी न रुकी। वे बोले—

जब जीवन में—साध—कोई विशेष कामना। अनुरोध—प्रेम का आग्रह। बोध—ज्ञान। कुसुम—फूल, फूल सा शरीर। सघन—घनी, अत्यधिक। सुनहली—सोने के रंग की, स्वर्णवर्णा रमणी। छाया—समीपता की शीतलता। मलयानिल—मलय पवन, प्रेम के उच्छ्वास। उल्लास—आनंद। माया—प्रसार, फैलाव।

अर्थ—जीवन के वे दिन स्मरण आते हैं जब मेरी भी एक विशेष कामना थी, जब अपनी प्रेमिका से मैं प्रेम का आग्रह इसी सीमा तक

कर जाता था कि उच्छृंखल हो उठता था, जब मेरे हृदय में इच्छाएँ भरी थीं और जब इस बात का ज्ञान था कि कोई हमारा भी है।

मै था और सुंदर पुष्पों के समान कोमल अवयव वाली मेरी प्रेमिका थी जिसकी सुनहली घनी छाया—स्वर्ण गात की अत्यधिक शीतल समीपता—मिली।

जैसे सुमनों की गंध लेकर मलय पवन चलता है वैसे ही उसके हृदय से प्रेम के उच्छ्वास फूटते थे। आनंद का उस समय प्रसार था।

वि०—यह प्रलय से पूर्व मनु के दैवी जीवन की चर्चा है। इस बात का संकेत कामायनी में कई स्थानों पर है कि श्रद्धा को स्वीकार करने से पहले भी मनु किसी देव-बालिका से परिचित थे।

पृष्ठ २२१

उषा अरुण प्याला—उषा—प्रभात सुंदरी, उषा सी सुंदरी। अरुण प्याला—लालिमा से युक्त सूर्य रूपी प्याला, प्रेम का प्याला। सुरभित—उच्छ्वसित। छाया—शीतल आश्रय। मकरंद—रस, प्रेम। शरद प्रात-शरद ऋतु का प्रभात, जीवन का उज्ज्वल प्रारम्भ। शेफाली—हरसिंगार, मन। घुँघराली अलकें घूँघरवाले बाल, घिरता अंधकार।

अर्थ—जैसे उषा सूर्य रूपी प्याले में लालिमा भर लाती है वैसे ही उषा सी सुन्दरी मेरी प्रेमिका हृदय के प्याले में अनुराग का अरुणवर्णी रस भर कर लाती थी और उसके सुरभित उच्छ्वासों के आश्रय में जो मुझे शीतलता प्रदान करते थे मेरा यौवन (युवक रूप में मैं) आँख मींच कर मस्ती से सुख का अनुभव करते हुए उस रस को पीता था।

शरद ऋतु के प्रभातकाल के समान जीवन के उस उज्ज्वल प्रभात में मन रूपी हरसिंगार के वृक्ष से प्रेम का नवीन रस चूता था। संध्या के समय जब सुन्दर अन्धकार घिर आता था तब यह जानकर कि अब हम दोनों का मिलन होगा एक प्रकार के सुख की वर्षा होने लगती थी।

वि०—काव्य में अनुराग का रंग लाल माना जाता है।

सहसा अंधकार—अंधकार—अँधेरी, यहाँ विनाश। हलचल—प्रलय। विक्षुब्ध—घबराना। उद्वेलित—उछलना, आकुल या दुःखी रहना। मानस लहरी-सरोवर की लहरें, मन के भाव। नीले नभ—नील गगन, विराट निराशा। छायापथ—आकाश गंगा। स्मिति—मंद हास्य।

अर्थ—अकस्मात् विनाश की वेगभरी आँधी क्षितिज से उठी अर्थात् प्रलय के रूप में दैवी प्रकोप हुआ। प्रलय की हलचल से संसार घबरा उठा और जैसे आँधी के चलने से सरोवर की लहरें उछलने लगती हैं, वैसे ही प्रलय में मेरे मन के भावों ने भी आकुलता का अनुभव किया। भाव यह कि यद्यपि मैं बच गया था, पर मेरा मन दुःखी रहने लगा।

हे देवी, ठीक ऐसे समय में तुम आईं और तुमने आकर अपने कल्याणकारी मधुर मंद हास्य की छटा छिटकायी। इससे विराट् निराशा के वातावरण में पला मेरा दुःखी हृदय वैसे ही आलोकित हो गया, जैसे नील गगन में आकाश-गंगा झलकती है।

वि०—जैसे छायापथ में अनंत तारे होते हैं वैसे ही हृदय में अगणित भाव।

नोट :—'जभी' जैसे शब्दों का प्रयोग खड़ी बोली में बचाना चाहिए, असाहित्यिक है।

पृष्ठ २२२

दिव्य तुम्हारी—दिव्य—अलौकिक। अमिट—स्थायी रूप से। हेम लेखा—स्वर्ण रेखा। निकष—कसौटी। अरुणाचल—उदयाचल।

अर्थ—तुम्हारी अलौकिक अमर छवि मेरे अंतर में स्थायी रूप से रँग-रंलियाँ करने लगी और हृदय रूपी कसौटी पर स्वर्ण की एक नवीन रेखा के समान वह अंकित हो गई।

मन को मधुर करने वाली तुम्हारी नवीन मधुर आकृति मेरे मन

मन्दिर में वैसे ही बस गई जैसे उदयाचल पर उषा निवास करती है। तुमने स्नेह-पूर्वक मुझे सुन्दरता की सूक्ष्म महत्ता का ज्ञान कराया।

वि०—श्रद्धा के आगमन से पूर्व मनु का हृदय निराशा से आवृत था। कसौटी भी काली होती है। अतः यहाँ हृदय की तुलना जो कसौटी से की गई है वह अत्यन्त उपयुक्त हुई है। और श्रद्धा की सुन्दरता के कारण उसे रेखा की संज्ञा देना उचित ही हुआ।

उस दिन तो—सुन्दर—सुन्दरता। पहचानना—बोध होना। किसके हित—सुन्दरता के लिए। जीवन—हृदय। साँस लिए चल—प्रेम के उच्छ्वास भर। संबल—पाथेय, मार्ग व्यय, सहारा।

अर्थ—हमें उसी दिन पता चला कि सुन्दरता क्या वस्तु है, और उसी दिन इस बात का बोध हुआ कि वह क्या चीज है जिसके लिए संसार के मनुष्य सुख दुःख सहन करने को उद्यत रहते हैं।

उन दिनों जीवन यौवन से प्रश्न करता : अरे मतवाले संसार में आकर तूने कुछ देखा भ ? यौवन उत्तर देता : इसी सौंदर्य की छाया में प्रेम के उच्छ्वास भरता रह और कुछ न सोच। जीवन-पथ को काटने का यही उपयुक्त संबल (सहारा) है। इसे जितना प्राप्त कर सके कर।

पृष्ठ २२३

हृदय बन रहा था—शतदल—कमल। मकरन्द—पुष्प रस। इस—जीवन के। हरियाली—हराभरापन, प्रसन्नता। मादकता—नशा। तृप्ति—संतुष्टि, इच्छापूर्ति।

अर्थ—मेरा हृदय सीपी के समान प्रेमरस का प्यासा था। तुमने स्वाती की बूंद बन कर उसे भर दिया। सरोवर में खिलने वाला कमल जैसे मकरंद को प्राप्त करके मस्ती से झूमने लगता है वैसे ही मेरे मन का कमल तुम्हारे प्रणय-रस को प्राप्त करके मस्ती का अनुभव करने लगा।

मेरा जीवन सूखे पतझड़ के समान था। तुमने वसंत के समान आकर उसे हरा-भरा कर दिया। तुमने मुझे इतना अधिक स्नेह दिया कि मैं तृप्त हो गया और अधिक मदिरा पीने से मनुष्य जैसे नशे की दशा में आ जाता है वैसे ही वह अगाध प्रेम मुझे नशा सा प्रतीत हुआ—मैं उसे सहन न कर सका और इसी से वह एक दिन भंग हो गया।

विश्व कि जिसमें—मरण—मृत्यु जैसा। बुद्बुद् की माया—बुलबुले का सा प्रभाव, अस्थिरता, आशा का निर्माण और विनाश। कदम्ब—एक वृक्ष।

अर्थ—मेरे जीवन की दुनियाँ में एक दिन दुःख की आँधियाँ और व्यथा की लहरें उठती थीं और एक दिन मैं जीवित रह कर भी मरा जैसा था। जैसे बुलबुला अभी बना और अभी फूट जाता है, वैसे ही एक दिन मेरी आशाएँ बनती और मिट जाती थीं।

ऐसा दुःखमय अस्थिर जीवन तुम्हारे सम्पर्क से शांत, उज्ज्वल, कल्याणकारी और विश्वास से पूर्ण हो गया। वर्षा के दिनों में जैसे कदम का वन हरा-भरा हो जाता है वैसे ही तुम्हारे प्रेम की वर्षा से संसार मेरे लिए फिर एक बार ऐश्वर्य से भरपूर हो गया।

पृष्ठ २२४

भगवति वह—भगवति—देवी, आदर-सूचक एक संबोधन। शैल—पर्वत। धुल जाना—निखरना, मैल कटना। अकथ—रहस्यमय।

अर्थ—हे देवी, तुम्हारे प्रेम की वह पवित्र मधुधार जिसके सामने अमृत भी तुच्छ था तुम्हारे रम्य सौंदर्य के पर्वत से फूटी। उससे मेरे जीवन का सारा दुःख रूपी मैल धुल गया।

ऐसी दशा में संध्या तारागों के द्वारा जिस रहस्यगाथा को गुनगुनाती थी वह मेरी दी हुई थी अर्थात् अपने दुःख में प्रेम के भावों को खिला कर जैसे हँसना सीखा ठीक वैसे ही अपने अंधकारमय जीवन में संध्या भी तारागों को लेकर खिलखिलाती थी। समस्त दिन काम करते-

करते मैं थक जाता था जिससे मन अकुलाता और शरीर दुख उठता था। पर उन दिनों ज्यों ही नींद आई कि सहज ही सारी पीड़ा दूर हो जाती थी।

नोट—'वही' के स्थान पर 'बही' कीजिए। इस क्रिया का संबंध मधुधारा से है।

सकल कुतूहल—कुतूहल—आश्चर्य। उन चरणों—श्रद्धा के चरणों या श्रद्धा से। कुसुम—भाव। स्मिति—मंद हास्य। मधु राका—वसंत की पूर्णिमा। पारिजात—स्वर्ग का एक वृक्ष, हरसिंगार। मन्थर—मंद। मलयज मलय पवन। वेणु—वंशी।

अर्थ—तुम्हीं मेरे समस्त कौतूहल और कल्पनाओं का केन्द्र थीं। जैसे पुष्प जब खिलते हैं तो मुस्कराते से प्रतीत होते हैं वैसे ही मेरे हृदय के समस्त भावों में प्रसन्नता भर गई, वे खिल उठे। जीवन का वह मुहूर्त्त धन्य था।

तुम्हारी मुसकान वसंत की पूर्णिमा की चाँदनी जैसी थी, तुम्हारे श्वासों में खिले हरसिंगार के फूलों की गंध थी, तुम्हारी गति उस मलय पवन के समान थी जो पुष्पों के रस के भार से मन्द मन्द चलता है और तुम्हारे स्वर की समता तो वंशी भी न कर सकती थी।

पृष्ठ २२५

श्वास पवन पर—दूरागत—दूर से आई हुई। रव—ध्वनि। कुहर—गुफा, सूनापन। दिव्य—अलौकिक। अभिनव—नवीन। जल-निधि—जीवन रूपी समुद्र। मुक्ता—मोती, गुण।

अर्थ—जैसे दूर से आती हुई वंशी की ध्वनि पवन पर आरूढ़ होती हुई संसार-रूपी गुफा में एक नवीन अलौकिक रागिनी के रूप में गूँजने लगती है वैसे ही तुमने मेरी साँस-साँस में समा कर मेरे सूने संसार को आनन्द की रागिनी से गुँजा दिया।

मेरे जीवन-रूपी समुद्र के गर्भ में अर्थात् मेरे हृदय में जो मोतियों के

समान उज्ज्वल गुण छिपे हुए थे, वे प्रकट होने लगे। उस समय संसार का कल्याण करने वाला तुम्हारा गीत (गुण-गाथा) जब मैं गाता था तो मेरे रोम खड़े हो जाते थे।

आशा की आलोक किरन—मानस—मानसरोवर, मन। जलधर—बादल, भाव। सृजन—सृष्टि, निर्माण। शशिलेखा—चाँदनी, प्रेम का प्रकाश। प्रभा—आलोक, प्रकाश। जलद—बादल, यहाँ प्रेम का बादल।

अर्थ—सूर्य का ताप जब मानसरोवर पर पड़ता है, तब उससे बादलों का सृजन होता है। ठीक ऐसे ही मेरे मन के रस और आशा की उज्ज्वल किरन के संयोग से एक छोटे से भाव-रूपी बादल की सृष्टि हुई। अर्थात् मन में एक दिन आशा उगी, कि मेरा कोई साथी हो। इस भाव-रूपी बादल को प्रेम की चाँदनी ने घेर लिया। भाव यह कि वह साथी मुझसे प्रेम भी करे यह भी मैंने चाहा।

जैसे काले बादल में प्रकाशमयी बिजलियाँ झूमती हैं वैसे ही मेरे भाव में तुम्हारे व्यक्तित्व की प्रभापूर्ण बिजली मचली अर्थात् जब मेरा हृदय प्रेम से भरा था तब तुम भी प्रेम की मस्ती लेकर आईं। बिजली से संयुक्त होने पर बादल जैसे छोटी-छोटी बूँदों में लगातार बरसता है जिससे वनभूमि हरियाली धारण करती है वैसे ही तुम्हारे संयोग से प्रेम का बादल धीरे-धीरे निरन्तर बरसा जिससे मेरा मन आनन्द से पूर्ण हो गया।

पृष्ट २२६

तुमने हँस हँस—खेल है—हँसकर सामना करने की वस्तु। विभ्रम—हाव भाव। संकेत—इशारा।

अर्थ—हँस-हँस कर तुमने मुझे यही सिखाया कि संसार भी एक खेल है, जब तक जीवित रहो तब तक उसे खेलो अर्थात् संसार से न डरने की आवश्यकता है, न विरक्त होने की, बल्कि संकटों का सामना

प्रसन्नता से करते हुए हँसी-खुशी से जीवन काटो। मेरे साथ एक होकर तुमने मुझे यही शिक्षा दी कि सबसे मित्र-भाव रखो।

अपने बिजली जैसे स्पष्ट हाव-भावों से यह संकेत भी मुझे तुम्हीं से मिला कि जहाँ तक मन का संबंध है वहाँ तक उस पर हमारा अपना अधिकार है। इसे जब और जिसे देने की इच्छा हो उसी क्षण और उसी को हम दे सकते है।

तुम अजस्र वर्षा—अजस्र—निरन्तर। सुहाग—सौभाग्य। मधु रजनी—वसंत की रात, कोई सुहावनी ऋतु। अतृप्ति—असन्तोष। आश्रित—सहारा पाने वाला। आभारी—कृतज्ञ। संवेदनमय—कोमल।

अर्थ—तुम जिस दिन से आईं, उसी दिन से न रुकने वाली वर्षा के समान मेरे जीवन में सौभाग्य की वर्षा हुई और वसंत की रातें जैसी सुहावनी लगती है वैसा ही तुम्हारा मधुर स्नेह मुझे मिला। मेरे जीवन में घना असंतोष था तुमने मुझे सभी प्रकार से सतुष्ट किया।

मेरे ऊपर तुमने इतना उपकार किया जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। यह तुम्हीं तो थीं जिसने मेरे प्रेम को सहारा दिया। तुम्हें पाकर मेरा हृदय कोमल भावनाओं से पूर्ण हुआ। इसके लिए मैं तुम्हारा बहुत आभारी हूँ।

पृष्ठ २२७

किन्तु अधम मैं—अधम—तुच्छ-हृदय। मंगल की माया—मंगलकारी स्वरूप। छाया—अवास्तविक। मेरा—मेरे व्यक्तित्व का। क्रोध—दूसरों पर क्रोध। मोह—अपने स्वार्थ का ध्यान। उपादान—तत्त्व। गठित—निर्मित। किरन—ज्ञान।

अर्थ—परन्तु मैं तुच्छ-हृदय निकला। तुम्हारे उस कल्याण-कारी स्वरूप को समझ ही न सका। और आज भी मैं झूठे 'हर्ष-शोक के पीछे ही दौड़ रहा हूँ।

क्रोध और मोह के तत्त्वों से ही जैसे मेरे समस्त व्यक्तित्व का निर्माण

हुआ है। लगता है कि ज्ञान की किरणों ने—इस बोध ने कि संसार में सुखी रहने के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को भुलाना पड़ता है—मुझे अब भी नहीं चेताया।

शापित सा मैं—शापित—शापग्रस्त प्राणी। कंकाल—अस्थि-पंजर मात्र, कोई सारहीन वस्तु। खोखलेपन—शून्यता, सारहीनता। अंधतमस—घोर अंधकार। प्रकृति—स्वभाव। खीझना—क्रोध करना।

अर्थ—शापग्रस्त प्राणी का जीवन जैसे जीवन नहीं रह जाता वैसे ही मेरा जीवन सारहीन है। फिर भी मैं सुख की खोज में यहाँ वहाँ घूम रहा हूँ। जैसे कोई अंधा सूने में कुछ खोजता है और नहीं पाता, फिर भी भ्रम से यहाँ वहाँ रुक जाता है, वैसे ही अपने इस सूने जीवन के भीतर मैं सुख की व्यर्थ खोज कर रहा हूँ। कभी-कभी भ्रम होता है कि संभवतः जिस वस्तु की खोज में मैं हूँ वह मिल जाय। इसी से थोड़ी देर रुक जाता हूँ, पर परिणाम में हाथ कुछ भी नहीं पड़ता।

मेरे चारों ओर निराशा का घोर अन्धकार है फिर भी स्वभाव से मनुष्य निष्क्रिय नहीं हो सकता इसीसे कभी इधर कभी उधर आकर्षित होकर खिंच जाता हूँ। निराश होने पर मैं सभी पर झुँझलाता हूँ, अप्रसन्न हो जाता हूँ। उन सब में मैं भी सम्मिलित हूँ। हाँ मुझे अपने ऊपर भी झुँझलाहट आती है।

पृष्ठ २२८

नहीं पा सका—जो—प्रेम। क्षुद्र पात्र—संकीर्ण हृदय। स्वागत—अधिकार में। छिद्र—छेद, असंपूर्णताएँ।

अर्थ—प्रेम का जो दान तुमने देना चाहा वह मैं पा न सका। मेरे हृदय का पात्र छोटा है और तुम उसमें रस की भारी धारा उड़ेल रही हो।

पर हृदय का सारा रस बाहर हो गया। उस पर मैं कोई अधिकार

न रख सका। कारण यह था कि हृदय-रूपी पात्र में बुद्धि और तर्क के दो छिद्र हो गए थे जिससे वह कभी भरा न रह सका।

वि०—प्रेम शुद्ध अनुभूति से संबंध रखता है। जो मनुष्य प्रेम में तर्क से काम लेता है अथवा भावना-प्रधान न होकर बुद्धि-प्रधान होता है उसके हृदय से प्रेम उड़ जाता है और उसे कभी शांति नहीं मिलती।

यह कुमार मेरे—कुमार—मनु का पुत्र मानव। उज्ज्वल अंश—उत्तम निधि। कल्याण कला—मंगल रूप। प्रलोभन—मोह। आँधी—भावों का वेग।

अर्थ—यह कुमार मेरे जीवन की उत्तम निधि है, मंगल रूप है। मेरे कितने भारी मोह का यह केन्द्र है! स्नेह का रूप धारण करके मेरा हृदय इसकी ओर खिंच गया है।

यह बच्चा सुखी रहे। मेरी कामना है तुम सब सुखी रहो। मैं अपराधी हूँ। तुम मुझे अकेला छोड़ दो। इस समय मनु के हृदय में भावों का जो वेग उठ रहा था श्रद्धा चुपचाप उसका निरीक्षण कर रही थी।

पृष्ठ २२६

दिन बीता रजनी—तंद्रा—झपकी, ऊघना, हल्की नींद। खिन्न—चिंतित। उपधान—तकिया। अभिशाप—दुःख।

अर्थ—दिन समाप्त हुआ। इसके उपरांत रात आई जिसमें सभी ऊँघ का अनुभव और नींद का सुख पाते हैं। इड़ा कुमार के पास लेट गई। इन तीनों के मिलन पर उनके मन में भी कुछ कहने की उमंग उठी थी, पर उसने अपने मन की बात मन में ही रहने दी।

श्रद्धा कुछ चिंतित थी, कुछ थक सी चली थी, अतः हाथों का तकिया बना कर पड़ी-पड़ी मन ही मन कुछ सोचने लगी। मनु भी इस समय चुप थे। अपने हृदय के दुःख को उन्होंने हृदय में ही दबा लिया।

वि०—कुमार की अवस्था प्रेम के लिए उपयुक्त नहीं है; अतः मन

की दबी उमंग में इड़ा में मनु-पुत्र के प्रति प्रेम-भावना का आरोप असंगत होगा।

सोच रहे थे—विकट—भयंकर। इंद्रजाल—माया, सांसारिक मोह। चंचल—जो स्थिर न हो, गतिशीला। छाया—व्यक्तित्व। कलुषितगाथा—पापी शरीर।

अर्थ—वे सोचने लगे : जीवन सुख है? नहीं। जीवन एक भयंकर उलझन है। अरे, मनु, तू यहाँ से भाग जा। इस सांसारिक मोह से छुटकारा पा। ऐसा कौन सा कष्ट है जो तूने इन लोगों के कारण नहीं सहा।

श्रद्धा का व्यक्तित्व प्रभातकाल की सुनहली झलमलाती गतिशीला किरणों के समान है। जैसे रात अपने अँधेरे मुख को उषा को नहीं दिखला सकती वैसे ही मैं भी अपने इस मुख और इस पापी शरीर को (जिसने इड़ा को स्पर्श किया है) इसे कैसे दिखलाऊँ?

पृष्ठ २३०

और शत्रु सब—कृतघ्न—उपकार को न मानने वाला। प्रतिहिंसा—वैर का बदला। प्रतिशोध—बदला।

अर्थ—श्रद्धा को छोड़ कर और सब मेरे शत्रु हैं। शत्रु ही नहीं, स्वभाव से ये सब कृतघ्न हैं। अतः इनका कोई विश्वास नहीं कि किस समय, क्या कर बैठें। और मेरे मन में इनसे अपने वैर के बदले को चुकाने की जो भावना उठ रही है उसे मन में दबा कर चुप रहने से तो मैं मुर्दे के समान हो जाऊँगा।

यदि श्रद्धा मेरे साथ रही तब तो यह संभव ही नहीं है कि मैं इन से बदला ले सकूँ। तो फिर मेरा निश्चय है कि मेरी धारणाओं के अनुकूल मेरे मन को जहाँ शांति मिलेगी वहीं मैं उसकी खोज में जाऊँगा।

जगे सभी जब—शांत—चुप। अपराधी—दोषी। अपने में—हृदय में। उलझना—ठीक से कुछ निश्चय न कर सकना।

अर्थ—नवीन प्रभात होने पर जबसब जगे तो उन्होंने देखा कि मनु वहाँ हैं ही नहीं। कुमार तो धैर्य खो बैठा। पिता तुम कहाँ हो! इस प्रकार पुकार मचाता हुआ वह उन्हें खोजने लगा।

इस घटना को देखकर इड़ा सोचने लगी कि इसके लिए सबसे अधिक दोषी वही है। जहाँ तक श्रद्धा का सम्बन्ध था, वह बाहर से मौन थी, पर भीतर यह निश्चय नहीं कर पा रही थी कि ऐसा क्यों हुआ और अब क्या करना होगा?

दर्शन

कथा—एक दिन निस्तब्ध अँधेरी रात में श्रद्धा सरस्वती नदी के किनारे जल में पैर लटकाये बैठी थी। पास में खड़े कुमार ने उससे पूछाः मा, इस निर्जन में अब ऐसा क्या आकर्षण है जो तू यहाँ से उठती नहीं; और इन दिनों तू इतनी उदास क्यों रहती है? उठ, घर को चल। देख तो, उसमें से गंध-धूम निकल रहा है। श्रद्धा ने ऐसी प्यार भरी भोली बातों को सुन कर उसे चूम लिया और समझायाः बेटा, मेरा घर इससे कहीं बड़ा है। वह दीवालों में बँधा हुआ नहीं है। यह विस्तृत उन्मुक्त विश्व जिसके ऊपर आकाश की छत और पृथ्वी का आँगन है मेरा वास्तविक घर है। विश्व के इस आँगन में सुख-दुःख आते जाते हैं, पवन शिशु सा क्रीड़ा करता है और उन्नति अवनति, सृष्टि विनाश के द्वन्द्वों से युक्त होने पर भी यह सदा सुन्दर बना रहता है। यह शान्ति, शीतलता और आनन्द का निकेतन है। इसमें भासित होने वाला ताप एक भ्रान्ति-मात्र है।

इसी समय पीछे से किसी ने पूछाः माता, यदि तुम्हारा दृष्टिकोण इतना उदार है तब तुम मुझसे क्यों विरक्त हो? श्रद्धा ने मुड़कर देखा इडा खड़ी है। उसने उत्तर दियाः तुमसे तो विरक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता! जिस व्यक्ति को मैं अपनाकर न रख सकी, उसे तुमने आश्रय दिया। इसके बदले में मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है। नारी के पास माया और ममता का ही बल है। वह स्वयं सभी के अपराधों को क्षमा करती है। ऐसी दशा में उसे कौन क्षमा कर सकता है? मैं जानती हूँ मेरे पति ने अपराध किया है। उसके लिए मैं तुमसे क्षमा चाहती हूँ।

इड़ा बोलीः बात ऐसी नहीं है। स्त्री हो चाहे पुरुष अपराध तो सभी से होते हैं। पर अधिकार पाकर मनुष्य मर्यादा का ध्यान नहीं रखता। जो उसे समझाने का प्रयत्न करता है, उसे वह अपना शत्रु समझता है। मेरे राज्य की व्यवस्था तो एकदम छिन्न-भिन्न हो गई है। श्रम के आधार पर मैंने वर्ग विभाजन किया था पर आज एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का विरोधी हो गया है। जो लोग शांति-स्थापना के लिए नियम बनाते हैं वे ही बड़े-बड़े विप्लवों के मूल कारण बनते हैं। मनुष्य की बुद्धि को विकसित कर मैंने उसे शक्ति देनी चाही, पर देखती हूँ प्राणी उसका दुरुपयोग कर रहा है। तब क्या संघर्ष शक्तिहीन है, कर्म व्यर्थ है ? मनुष्य को विनाश के मुख में चुपचाप चला जाने दूँ ?

श्रद्धा ने टोकाः तुम्हारी भूल यह है कि तुम्हारे सारे कर्मों में बुद्धि और तर्क की प्रधानता है, हृदय और भाव से वे अछूते हैं। इससे जीवन की सामंजस्य-भावना बिखर जाती है। जीवन की धारा सत्, चित् और आनन्दमयी है। उसे अपने सरल रूप में ही ग्रहण करना चाहिए। सुख दुःख दोनों में से एक को भी नहीं छोड़ा जा सकता। तर्क की प्रधानता के कारण तुम एक-एक बात पर संदेह करती हो। आस्था जैसे तुम्हारे जीवन में है ही नहीं। त्याग संघर्ष से बहुत बड़ी वस्तु है। उसे तुमने नहीं पहचाना। कुमार की ओर देखकर श्रद्धा बोलीः तुम्हारे लिए मेरा आदेश है कि तुम इनके साथ रहकर राष्ट्रनीति देखो। ये तर्कमयी हैं और तुम श्रद्धामय। तुम दोनों मिलकर सुशासन के द्वारा शांति और आनन्द की स्थापना कर सकोगे।

यह सुनकर कुमार को बड़ा धक्का-सा लगा, पर मा की आज्ञा का पालन करना ही उसने अपना धर्म समझा।

श्रद्धा उठी और आगे बढ़कर एक गुहा-द्वार पर उसने मनु को पाया। यह देखकर कि श्रद्धा अकेली है, मनु बड़े दुःखी हुए। बोलेः वह इड़ा चलते-चलते तुम्हारे साथ छल कर गई।

श्रद्धा ने उत्तर दिया: तुम इतने संदेही क्यों हो? कुछ देकर आज तक कोई दरिद्र नहीं हुआ। अब तुम स्वतन्त्र हो और हम तुम दोनों मिलकर सुख से रह सकेंगे।

इसी बीच अँधेरा गहरा हो उठा। थोड़ी देर में ज्योत्स्ना की एक रेखा उसमें प्रस्फुटित हुई जिससे अंधकार केश-कलाप सा प्रतीत हुआ और शिव का आलोक-शरीर स्पष्ट दिखाई दिया। उनका तांडव-नृत्य प्रारंभ हुआ और नृत्य करते-करते जब वे थक चले तो उनके शरीर से पसीने की बूँदें झरने लगीं। वे ही सूर्य, चन्द्र और तारा बन गईं। चरण-चाप से जो धूलिकण उड़े वे पर्वतों और अनन्त ब्रह्मांडों के रूप में चारों ओर बिखर गए। रजतगौर भगवान शंकर के ओठों पर मुस्कान खिल उठी तो वह ऐसी प्रतीत हुई जैसे हीरे के पर्वत पर विद्युत झलक उठी हो।

मनु इस रम्य दृश्य को देखकर तन्मय हो गए। श्रद्धा से उन्होंने कहा: प्रिये सहारा देकर उन चरणों तक मुझे ले चलो। वहाँ पहुँच कर सब पाप-ताप गल जाते हैं। सब दुःख-शोक दूर हो जाते हैं, पीड़ा देने वाली स्वयं बोधवृत्ति तक शेष नहीं रहती। यह मूर्ति कैसी एकरस, अखंड और आनन्दमयी है। श्रद्धा मुझे वहीं ले चलो।

पृष्ठ २३३

वह चन्द्रहीन थी—चंद्रहीन—जब चंद्रमा न निकला हो। स्वच्छ—उजला। झलमलाना—टिमटिमाना; चमचमाना। प्रतिबिम्बित—किसी की छाया पड़ना। वक्षस्थल—हृदय। पवन पटल—वायु की तह; हवा के झोंके। निजी बात—गुप्त बात; रहस्य।

अर्थ—वह एक ऐसी रात थी जिसमें चंद्रमा नहीं निकला था। अर्थात् अमावस्या थी। उसी में उजला प्रभात हो रहा था। भाव यह कि उस रात के व्यतीत होने पर उज्ज्वल प्रभात होगा। झलमलाते हुए श्वेत तारे नदी के अन्तर (जल) में प्रतिबिम्बित हो

रहे थे। जल की धारा के आगे बढ़ जाने पर भी उनका बिंब वहीं का वहीं रहता था। वायु के झोंके धीरे-धीरे आ रहे थे।

पंक्तिबद्ध वृक्ष मौन खड़े थे मानो वे पवन से कोई गुप्त बात सुन रहे हों।

धूमिल छायाएँ—धूमिल—धुँधली। लहरी—लहरें। निर्जन—जनहीन प्रदेश, सूना स्थान। गंध-धूम—धूप आदि का सुगंधित धुँआ।

अर्थ—आकाश में धुँधले बादल और वृक्षों के हिलने से पत्तों की धुँधली छाया जब घूम रही थी तब श्रद्धा सरिता के तट पर जल में पैर लटकाए बैठी थी। लहरें आकर उसके चरणों को चूम लेती थीं।

कुमार ने कहा : मा, इधर तू बहुत दूर निकल आई है। संध्या तो बहुत देर हुई व्यतीत हो गई। इस सूने स्थान में भला इस समय ऐसी कौन सी सुन्दर वस्तु है जिसे तू देख रही है। चल अब तू घर चल।

देख मा, हमारे घर से सुगंधित धुँआ उठ रहा है। उसकी इस भोली बात पर श्रद्धा ने उसका मुँह चूम लिया।

पृष्ठ २३४

माँ क्यों तू—दुसह—असहनीय, जिसका सहना कठिन हो। दह—जलन। भरी साँस—भारी निश्वास। हताश—आशा का टूटना या मिटना।

अर्थ—अच्छा मा, तू इतनी उदास किसलिए है? मैं तो तेरे पास ही हूँ। फिर तू चिंता क्यों करती है?

पिछले कई दिनों से तू इसी प्रकार चुप रह कर क्या सोचती रहती है! मुझे भी तो कुछ बतला। तुझे यह कैसा असहनीय दुःख मिला है जो तेरे हृदय में जलन उत्पन्न कर रहा है और बाहर से तुझे झुलसाये डालता (दुर्बल बना रहा) है!

तू भारी-भारी साँसें लेकर उन्हें शिथिलता से बाहर फेंकती रहती है। ऐसा लगता है जैसे तेरी कोई आशा टूट रही है।

वह बोली—अपार-असीम। अवनत—झुके हुए। दिशि—देश, भूमि, स्थान। पल—समय। अनिल—पवन। अविरल—असंख्य, अगणित। उन्मुक्त—खुला हुआ।

अर्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया : इस असीम नीले आकाश को देखो। इसमें जल-भार से झुके बादल घूमते हैं।

इस आकाश के नीचे मनुष्य के जीवन में सुख दुःख आते हैं। एक भूमि खंड का निर्माण होता, फिर विनाश होता है। समय बीतता है। इसी के भीतर पवन बालक के समान खेल करता हुआ चलता है। इसी में ताराओं की सुन्दर पंक्ति झलमलाती ऐसी प्रतीत होती है मानो आकाश-रूपी रात के ये असंख्य जुगनू हों।

यह संसार जिसका द्वार सभी के लिए खुला है कितना उदार है। बेटा, मेरा वास्तविक घर यही है।

पृष्ठ २३५

यह लोचन गोचर—लोचन—आँख। गोचर—वह विषय जिसका ज्ञान इंद्रियों (यहाँ आँखों) को हो। लोचन-गोचर—आँखों को दिखाई देने वाला। कल्पित—जो प्रतीत होते हुए भी हो न। हर्ष—प्रसन्नता। शोक—पीड़ा। भावोदधि—भाव का समुद्र। किरन—सूर्य की किरण, बोध या अनुभव। झरने—भावों के झरने। आलिंगित—लिपटे हुए। नग—पर्वत, मन। उलझन—आकर्षण। उसकी—ईश्वर की। नोंक झोंक—छेड़छाड़, माया, लीला, प्रेरणा।

अर्थ—ये सब लोक जो आँखों के आगे दिखाई देते हैं और संसार के ये हर्ष (सुख) और शोक (दुःख) जो प्रतीत होते हुए भी वास्तव में हैं नहीं, भाव के समुद्र से बोध वृत्ति (या अनुभूति) द्वारा वैसे ही उत्पन्न होते हैं जैसे सूर्य की प्रखर किरणों के द्वारा सागर से मेघ उठते हैं और जिस प्रकार स्वाति नक्षत्र में गिरने वाले जलकण सीपी में मोती और सर्प के

मुख में विष उत्पन्न करते (भरते) हैं, उसी प्रकार ये (सुख दुःख) भी सारे संसार को प्रसन्नता-पीड़ा से भर देते हैं।

कभी ऊँची और कभी नीची भूमि में होकर निरंतर बहने वाले झरने पहाड़ों के गले से लगे हुए झरते हैं। आशय यह कि ठीक इसी प्रकार मन के पर्वत से सद् (उत्थान की ओर ले जाने वाली) और असद् (पतन को ओर लेजाने वाली) वृत्तियों के झरने भी बराबर बहते हैं। साथ ही जीवन में आकर्षण के मधुर बन्धन भी हैं।

इस प्रकार यह सब (सृष्टि, उसके हर्ष शोक, उत्थान पतन की ओर लेजाने वाले भाव और प्रेम) उस भगवान की माया (प्रेरणा) है।

वि०—जैसे स्वप्न में प्राणी रोता हँसता है, वैसे ही जीवन के हर्ष शोक की भी स्थिति है। जगने पर, न रोना, न हँसना । इसी प्रकार ज्ञान होने पर, न हर्ष, न शोक। अतः ज्ञान की दृष्टि से हर्ष शोक जो सुख दुःख का परिणाम है, काल्पनिक हैं। हैं ही नहीं।

जग जगता आँखें—आँखें किए लाल—उषा के रूप में लालिमा फैलना। मृति—मृत्यु। संसृति—जीवन। नति—अवनति । सुषमा—सौंदर्य। अवकाश—शून्य, अंतरिक्ष। मराल—हंस। विशाल—विस्तृत, व्यापक।

अर्थ—जैसे प्राणी की जब नींद टूटती है तब उसकी आँखें किंचित् ललाई लिए रहती हैं, वैसे ही सृष्टि में जब प्रभात होता है तब उषा की लालिमा के रूप में मानो उसकी आँखें लाल दिखाई देती हैं और जैसे सोते समय हम चादर ओढ़ लेते हैं वैसे ही यह सृष्टि रात को अंधकार और नींद की चादर (जानों) ओढ़ कर सो जाती है।

जैसे इन्द्रधनुष अनेक रंग बदलता (रखता) है, वैसे ही यह ससार नाशवान् है, सृजनशील है, अवनति और उन्नतिमय है। इन्द्रधनुष का सौंदर्य इसलिए और भी झलमलाता है कि वह अनेक-वर्णी है । ठीक

ऐसे ही संसार का सौंदर्य इस बात से और भी बढ़ गया है कि इसमें विनाश के साथ सृजन और अवनति के साथ उन्नति लगी हुई है।

इस जगत् के ऊपर (फूलों के समान) रात को तारागण खिलते हैं और प्रभात काल में झर जाते हैं।

शून्य में इस जग की स्थिति वैसे ही है जैसी सरोवर में हंस की। यह कितना सुन्दर है, साथ ही कितना व्यापक।

पृष्ठ २३६

इसके स्तर स्तर में—स्तर—तह। मौन—चुपचाप समायी हुई। शीतल—शीतलता, सुख। अगाध—अथाह। ताप—दुःख का ताप। भ्रान्ति—भ्रम। मंगल—कल्याणकारी। मुसिकाते—सुख पक्ष के। कोलाहल—आनन्दोत्सव। उल्लास—हर्ष। अन्तस्तल—हृदय। कांति—सौंदर्य। नीड—घोंसला।

अर्थ—इस सृष्टि की तह-तह में शान्ति समायी हुई है। यह अथाह शीतलता (अनन्त सुख) का स्थान है। दुःख दुःख चिल्ला कर मनुष्य जिस ताप की चर्चा करता है वह एक भ्रम है। भाव यह कि मनुष्य ईर्ष्या, कलह, हिंसा आदि में रत रहकर दुःख की सृष्टि स्वयं करता है। यदि वह समता, प्रेम और त्याग का पथ पकड़े तो सुख और शांति की उपलब्धि कर सकता है।

परिवर्तनशील होने से यह सृष्टि सदैव कल्याणमयी रहेगी। कारण यह है कि परिवर्तन का अर्थ नित्य नवीनता का होता है और नवीनता आनन्द की जननी है।

इस संसार में वे सभी भाव विद्यमान हैं जो मुसिकान उत्पन्न करते अर्थात् सुखदायी हैं। इसमें उत्सवों की धूम मची रहती है। इसके भीतर आनन्द भरा पड़ा है।

मधुरता और सुन्दरता से परिपूर्ण मेरे रहने का यह स्थान ठीक उस घोंसले के समान है जिसमें सुख भी मिलता है और शांति भी।

अम्बे फिर क्यों—अम्बा—मा। विराग—विरक्ति। सानुराग—अनुरागमयी। छवि—आभा, शोभा, सौंदर्य। शशिलेखा—चंद्रमा। रेख—चिह्न, प्रभाव। दीन—दीनता से। त्याग—उत्सर्ग।

अर्थ—इसी समय यह ध्वनि सुनाई दी—मा, यदि यह सत्य है तब तुम मुझ से इतनी विरक्त क्यों रहीं? मुझे तुम्हारा स्नेह क्यों नहीं मिला?

श्रद्धा ने जब मुड़कर पीछे देखा तो वहाँ इड़ा खड़ी थी। उसके अंग-प्रत्यंग की आभा मलिन पड़ गई थी मानो चंद्रमा को राहु ने ग्रसा हो। विषैले शोक की छाया उस के मुख पर अंकित थी।

मनु के प्रयत्न से जिसका भाग्य एक बार जग कर फिर सो गया, वह इड़ा श्रद्धा से यह दीन आशा लगाए हुए थी कि यह कुछ त्याग करे तो मैं उसे स्वीकार करूँ।

पृष्ठ २३७

बोली तुमसे कैसी—विरक्ति—अनुराग-हीनता। अन्धानुरक्ति—विवेकहीन प्रेम, बिना आगा पीछा सोचे प्रेम करना। अवलम्बन—सहारा। मादकता—मस्ती। अवनत—झुका हुआ, जलभार से झुका। अतृप्ति—अशांति। उत्तेजित—कर्म में लीन करने वाली, प्रेरणामयी।

अर्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया : तुम से विरक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। तुममें कुछ ऐसा है कि जीवधारी बिना कुछ सोचे समझे अपना अनुराग तुम्हारे प्रति प्रदर्शित करते हैं!

मुझ से बिछुड़े व्यक्ति को सहारा देकर तुमने उसका जीवन बचाया। तुम आशाओं को हृदय में जगाती हो, इसी से तुम्हारे प्रति आकर्षण कभी समाप्त नहीं होता। जलभार से झुके हुए बादल के समान तुममें मस्ती भरी है।

तुम वह हो जिसने मनु के मस्तिष्क को सदा अशांत रखा। तुममें वह शक्ति है जो प्राणों को सदैव कर्म की दिशा में प्रेरित करके चंचल बनाए रखती है।

वि०—इड़ा बुद्धि का भी प्रतीक है। उस दृष्टि से इस छंद का यह आशय होगा कि बुद्धि के प्रति उदासीनता कोई नहीं प्रकट कर सकता। प्राणी उसके प्रति अंधे होकर आकर्षण का अनुभव करते हैं। जिसका मन भाव से ऊब जाता है, वह बुद्धि को पकड़े रहता है। बुद्धि अनेक आशाओं को जाग्रत करती है और इसी से अपनी ओर आकर्षित करती है। जो बुद्धि-व्यापार में फँस जाता है वह उस लीनता में एक प्रकार की मस्ती का अनुभव करता है। यह मन को कभी स्थिर नहीं रहने देती और सदैव कर्म की उत्तेजना उत्पन्न करके उसे चंचल बनाए रखती है।

मैं क्या दे सकती—मोल—तुम्हारे उपकार के बदले में। बोल—बातचीत। इससे—किसी किसी से। उसको—बहुतों को। सुख करना—सुख से सहन करना। मधुर बोल—मधुरता जिसमें घुली हुई है, मधुरता मिश्रित। विस्मृति—भूली बात।

अर्थ—मनु की उन्नति के लिए जो कुछ तुमने किया, उसका मूल्य मैं तुम्हें क्या दे सकती हूँ? मेरे पास देने के नाम केवल हृदय है या फिर दो मीठी बातें हैं।

मैं सुख के समय हँसती हूँ और दुःख के समय रो लेती हूँ। अभी जिस वस्तु को प्राप्त करती हूँ, दूसरे क्षण ही उसे खो भी देती हूँ। कोई ऐसा है जिसका प्रेम मैं स्वीकार करती हूँ, और दूसरी ओर ऐसे भी प्राणी हैं जिनको मैं अपना अनुराग देती हूँ। मेरे जीवन में यदि दुःख भी आता है तो मैं उसे सुखपूर्वक सहन करती हूँ। भाव यह कि मैं जीवन को उसके स्वाभाविक रूप में व्यतीत करना ही उचित समझती हूँ।

जिसमें मधुरता घुली हुई है ऐसे अनुराग से मैं परिपूर्ण हूँ। बहुत दिनों की भूली हुई कोई बात जैसे मनुष्य के मस्तिष्क से दूर-दूर रहती है वैसे ही मेरे मनु ने मुझे न जाने कितने दिनों से भुला रखा है और इसी से मैं इधर उधर भटकती फिर रही हूँ।

पृष्ठ २३८

यह प्रभापूर्ण—प्रभा—आभा, कांति, शोभा। अचेतन—विवेक हीन। माया—मोह। छाया—विश्राम या सुख देने वाली। शीतल—शांति। निश्छल—छलहीन, सरला।

अर्थ—तुम्हारे इस आभा-भरे मुख को देखकर एक बार हमारे पति मनु तक अपना विवेक खो बैठे थे।

नारी को मोह और ममता का बल भगवान ने दिया है। अपनी इस शक्ति से वह सभी को शीतल छाया के समान शांति और विश्राम देती है। जिस नारी के अस्तित्व से यह धरणी धन्य हुई है उस सरला को क्षमा करने की बात कौन सोच सकता है? भाव यह कि नारी तो दूसरों के अपराधों को क्षमा करती है और स्वयं कोई अपराध करती नहीं। अतः नारी को कोई क्षमा कर सकेगा, यह सोचना भी अपराध है।

मेरे पति ने (जो पुरुष है) तुम्हारा अपराध किया है। अतः इसके लिए तुम मुझे क्षमा करोगी, ऐसा मैं सोचती हूँ। और तुमसे क्षमा मिलेगी इतना मेरा अधिकार भी है।

अब मैं रह सकती—मौन—चुप। अधिकार—अधिकार प्राप्त व्यक्ति। सीमा—मर्यादा। पावस-निर्झर—बरसाती झरने। रोके—समझावे।

अर्थ—इड़ा बोली: आप की बात पर मुझे भी कुछ कहना पड़ेगा। आप ने जो यह कहा कि नारी को क्षमा करने का प्रश्न उठता ही नहीं, यह बात नहीं है। इस संसार में ऐसा कोई भी नहीं है जो अपराध न करता हो।

स्त्री हो चाहे पुरुष सुख और दुःख जीवन में सभी उठाते हैं। सुख किसी सत्कर्म के कारण मिलता है और दुःख अपराध या भूल के कारण। दुःख की चर्चा करने पर उस अपराध की चर्चा भी करनी पड़ती; अतः इसे बचाकर सब अपने सुख की ही चर्चा करते हैं। यह सुख चाहे

अपने को मिला हो और चाहे अपने द्वारा दिया गया हो, दोनों के मूल में सत्कर्म होने से प्रशंसा मिलती है।

अधिकार पाकर तो मनुष्य बरसाती झरने के समान उमड़ कर बहता है—मर्यादा का उल्लंघन कर बैठता है।

ऐसे मनुष्यों की रोकथाम कौन कर सकता है? ऐसे सभी प्राणियों को, जो उन्हें समझाने का प्रयत्न करते हैं वे अपना शत्रु बतलाते हैं।

पृष्ठ २३९

अग्रसर हो रही—अग्रसर होना—बढ़ना। सीमायें—विभाजक रेखायें, मनुष्य-मनुष्य के बीच अंतर। कृत्रिम—अस्वाभाविक। वर्ग—जाति। विप्लव—विद्रोह। मत्त—मतवाले।

अर्थ—मेरे राज्य में फूट बढ़ रही है। प्रकृति से सब प्राणी एक हैं, परन्तु मनुष्य ने वर्ण या पद के आधार पर ऊँच-नीच, छोटे बड़े की जो विभाजक रेखाएँ बनाई थीं, वे अस्वाभाविक थीं और इसी से नष्ट होगईं।

यहाँ हुआ यह कि श्रम का विभाजन ही जाति भेद का कारण बन गया। अतः प्रत्येक वर्ग आज अपने को दूसरे से पृथक् समझ कर अपनी अपनी शक्ति पर अहंकार करता है।

जो लोग शांति स्थापना के लिए नियम बनाते हैं वे ही बड़े-बड़े विद्रोह मचवाते हैं।

लालसा की मदिरा के घूँट पीकर, महत्त्वाकांक्षी हो कर सब मतवाले हो रहे हैं और यह सब देखकर मैं अधीर हो उठी हूँ।

वि०—ये सारी बातें आज भी उसी प्रकार सत्य हैं जैसी मनु के काल में। नियामक ही संहारक बन जाता है, इसमें व्यंग्य मनु की ओर है। इससे पहले छंद में जो यह कहा गया था कि उच्छृङ्खल व्यक्ति समझाने वाले को अपना शत्रु समझता है, वह भी मनु को दृष्टि में रख कर।

मैं जनपद कल्याणी—जनपद—राष्ट्र। निषिद्ध—बुरी, वर्जित। सुविभाजन—मनुष्यों का जातियों में बाँटा जाना। विषम—दोषपूर्ण। केन्द्र—स्थान। जलधर—बादल। उपलोपम—ओले के समान। समिद्ध—प्रज्ज्वलित, धधकती हुई। समृद्ध—बड़ी।

अर्थ—एक दिन मैं राष्ट्र का कल्याण करने वाली के नाम से प्रसिद्ध थी, और आज वही मैं अवनति का कारण मानी जाकर बुरी समझी जाती हूँ।

मैंने कर्म या जातियों में मनुष्यों को बाँट कर जो व्यवस्थित रूप से काम होने का एक सुन्दर ढंग निकाला था वह दोषपूर्ण सिद्ध हुआ। यह वर्ग भेद धीरे-धीरे मिट रहा है और अब नित्य ही नये-नये नियम बन रहे हैं।

जैसे ओलों से भरे बादल घिर कर, फिर इधर उधर बिखर कर, अनेक स्थानों में बरस पड़ते हैं और कृषि आदि की हानि करते हैं, वैसे ही इस वर्गभेद ने अनेक स्थानों में अनिष्ट फैलाया है।

अशांति की यह ज्वाला इतनी धधक उठी है कि किसी बड़ी आहुति को लेकर रहेगी।

पृष्ठ २८०

तो क्या मैं—भ्रम—भूल। नितान्त—एकदम। संहार—ध्वंस, मिटना। वध्य—मार डालने योग्य, मरना। दान्त—दबाया हुआ। अविरल—निरन्तर। संघर्ष—प्रतियोगिता (struggle)। प्रणति—झुकना। अनुशासन—शासन।

अर्थ—तब क्या अपनी बुद्धि से प्राणियों को जिस मार्ग पर जाकर उनके विकास की मैंने कल्पना की थी, वह मेरी भूल थी?

तब क्या प्राणी विवशता पूर्वक दबकर निर्बलों के समान मिटने और मरने के लिए विनाश के मुख में बिना कुछ कहे सुने निरन्तर जाते जायँ?

तब क्या हम जो प्रकृति के साथ संघर्ष कर रहे हैं और कर्म में लीन हैं वह शक्ति व्यर्थ हो जायगी ? प्रकृति के अत्याचार को नष्ट करने के लिए हमने जो इतनी वैज्ञानिक उन्नति की है और यन्त्र आदि के रूप में जो मनुष्य की शक्ति का परिचय हमने दिया है, वह सब बेकार है ? यज्ञ द्वारा देवताओं को प्रसन्न करके हम जो बल प्राप्त करते हैं, क्या वह हमारी कोई सहायता न करेगा ?

तब क्या मनुष्य किसी अदृश्य शक्ति से भयभीत होकर उसकी उपासना ही करता रहेगा ? क्या वह भ्रम में पड़कर सदैव सिर ही झुकाता रहेगा ! क्या नियति के शासन की अशांत छाया ही प्राणियों पर सदा पड़ती रहेगी ?

वि०—पिछली दो पंक्तियों का भाव 'इड़ा' सर्ग में कई स्थानों पर ज्यों का त्यों पाया जाता है—

(१) भयभीत, सभी को भय देता
भय की उपासना में विलीन।
(२) मत कर पसार, निज पैरों चल।
(३) इस नियति नटी के अति भीषण
अभिनय की छाया नाच रही।

तिस पर मैंने—दिव्य—अलौकिक। राग—अनुराग। अकिंचन—दरिद्र, हीन। स्वर—सुहावनी बातें। विराग—उदासीनता। चेतनता—मन की स्फूर्ति।

अर्थ—इन सब के ऊपर हे देवि, मैंने तुम्हारा सुहाग छीना और जिस दिव्य प्रेम की अधिकारिणी तुम थीं, मनु का वह आकर्षण मेरी ओर हुआ।

मैं आज सब से हीन हूँ। यहाँ तक कि मैं स्वयं अपने को अच्छी नहीं लगती। मैं जितनी भी सुहावनी बातें करती हूँ वे मेरे ही कानों में प्रवेश नहीं करतीं। अतः दूसरों को क्या भायेंगी ?

आप मुझे क्षमादान दें, मुझ से उदासीन न हों। मेरा जो मन निरुत्साह हो गया है, आप की कृपा से वह फिर स्फूर्ति लाभ करेगा।

पृष्ठ २४१

है रुद्र रोष—रुद्र—शिव। विषम—भयंकर। ध्वान्त—अंधकार। सिर चढ़ना—बुद्धि की प्रधानता होना। हृदय पाना—भाव की प्रधानता होना। चेतन—आत्मा। आलोक—ज्ञान। श्रान्त—थकना, उकताना। भ्रान्त—भूल।

अर्थ—श्रद्धा ने कहा: देखो इड़ा, चारों ओर घोर अँधेरा छाया है। यह इस बात का प्रमाण है कि भगवान् शिव का क्रोध अब भी शांत नहीं हुआ।

तुम सिर पर चढ़ी रहीं, परन्तु हृदय प्राप्त न कर सकीं। आशय यह कि तुम्हारे कर्म में बुद्धि की प्रधानता रही, भाव की नहीं। इसी से तुमने बुद्धिबल से सब को नियंत्रण में तो रखा, पर उनके हृदय में स्थान न पा सकीं। परिणाम यह हुआ कि जीवन की वास्तविकता से दूर रहकर तुमने जीवन का अभिनय सा किया जिससे अशांति मिली।

एक आत्मा दूसरे आत्मा से अपनत्व का अनुभव करती हुई जिस सुख की उपलब्धि करती है, वह न कर पायी और इस प्रकार वास्तविक ज्ञान का उदय तुम्हारी आँखों के सामने हुआ ही नहीं।

सब अपने जीवन में उकताहट का अनुभव करने लगे और इसी से श्रम के आधार पर तुम्हारा वर्ग विभाजन भूल सिद्ध हुआ।

जीवन धारा सुन्दर—सत्—(To exist) किसी वस्तु का सदा रहना। चित्—(Consciousness) चेतनामय। सुन्दर—आनंदमय। लहर गिनना—जीवन को गांठ गांठ करके देखना। प्रतिबिम्बित तारा—[illegible]। [illegible] देना—अधिकार करना। मधुमय—मधुर। धार—मार्ग, पथ, [illegible]।

अर्थ—जीवन की धारा के प्रवाह में एक प्रकार की सुन्दरता है। यह सत्, चित्, प्रकाश और अगाध आनन्दमयी है।

सरिता का स्वरूप लहरें गिनने से नहीं समझा जा सकता, उसे एक अविच्छिन्न (अटूट) धारा के रूप में देखने से ही जाना जा सकता है। पर तुम में तर्क की प्रधानता है, इसी से जीवन को उसकी समग्रता में न देखकर टुकड़े टुकड़े करके देखती हो मानो तुम बँधी हुई सरिता को न देखकर केवल लहरें गिनने में लीन हो।

धारा में प्रतिबिंबित होने वाले तारों को पकड़ कर ही तुम रुक जाती हो अर्थात् जो वास्तविक सुख है उसके पास तो तुम पहुँच नहीं पातीं, सुख की छायामात्र से संतुष्ट हो।

तुममें विश्वासपूर्वक किसी ओर बढ़ने का साहस नहीं है। तर्कमयी होने से आठों पहर एक काम करने से पूर्व अनेक बार सोचती हो। भूलो मत, वह तो जड़ता की स्थिति है, ऐसी स्थिति से प्राणी का विकास नहीं हो सकता।

जैसे धूप और छाँह दोनों का होना मधुरता का परिचायक है—केवल ताप से भी प्राणी अकुला जाता है और कोरी छाया भी नहीं सुहाती—वैसे ही जीवन में मधुरता बनी रहे, इसके लिये सुख दुःख दोनों की आवश्यकता है। जीवन को पार करने का यही सबसे सरल पथ है और वही तुमने छोड़ दिया।

पृष्ठ २४२

चेतनता का भौतिक—चेतनता—चेतना, चिदात्मा। भौतिक—सांसारिक, ठोस वस्तुओं के आधार पर। विराग—अनुराग-हीनता। चिति—परमात्मा। नृत्य-निरत—चंचल। सतत—सदैव। तल्लीनता—लय। राग—गान। जाग—ज्ञान प्राप्त कर, संसार को आनंदमय समझ।

अर्थ—प्रत्येक शरीर में आत्मा के बद्ध हो जाने से वह अलग अलग प्रतीत होती है, पर वह सभी कहीं समान है; अतः चेतना एक अखंड तत्त्व है। तुमने वर्ग बनाकर मनुष्यों को मनुष्यों से दूर किया और

इस प्रकार उस महाचेतन के भौतिक (स्थूल) दृष्टि से विभाजन कर दिए। परिणाम उसका यह हुआ कि संसार में प्रेम का प्रचार हुआ।

यह संसार जो अनादि है उस महाचेतन का ही एक रूप (शरीर) है। संसार में जो परिवर्तन होते हैं वे उसका अपने को अनेक रूपों में प्रकट करना है। प्रकृति का एक एक कण उससे बिछुड़ कर उसके ही मिलन के लिए चक्कर काट रहा है। संसार नित्य आनन्द और उल्लासमय है।

सृष्टि में केवल एक रागिनी ही पूर्ण लय के साथ गूँज रही है। उसमें से यही झंकार उठ रही है कि 'जागो, जागो' अर्थात् इस संसार को आनन्दमय समझो।

मैं लोक अग्नि—अग्नि—दुःख। नितान्त—पूर्णरूप से। दाह—जलन, ताप। निधि—कुमार। राह—मन की खोज। सौम्य—सुशील व्यक्ति, शांत स्वभाव का व्यक्ति। विनिमय—प्रतिदान, परिवर्तन, बदला। कान्त—सुन्दर।

अर्थ—मैं संसार के दुःख की आग में पूर्णरूप से तप कर अपूर्व शांति तथा प्रसन्न मन से मेरे पास जो कुछ है उसकी आहुति देती हूँ। भाव यह कि संसार का दुःख मुझ से देखा नहीं जाता। उसे दूर करने के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार मैं अवश्य कुछ न कुछ करती हूँ।

तुम तो हमें दाना भी न दे सकीं, उल्टा कुछ लेने की ही आशा लगाए हुए हो। इसी से तुम्हारे हृदय का ताप शांत नहीं हुआ। यदि ऐसी बात है तो मेरे पास जो निधि है उसे तुम ले लो। मैं अपने रास्ते (मनु को ढूँढ़ने) चली जाऊँ।

इसके उपरांत श्रद्धा ने अपने पुत्र से कहा : हे सौम्य, तुम इनके साथ यहीं रहो। मेरी इच्छा है कि यह सारस्वत प्रदेश तुम से सम्पन्न हो। इड़ा तुम्हें यहाँ का शासक बनायेगी और तुम इन्हें अपने सुन्दर कर्म समर्पित करके इसका बदला चुकाओ।

पृष्ठ २४२

तुम दोनों देखो—राष्ट्रनीति—राज्य का प्रबन्ध, राज्य का काम। भीति—आतङ्क, भय। नग—पर्वत। रीति—शासन। सुयश गीति—यश गान।

अर्थ—तुम दोनों राज्य का प्रबन्ध करो। लेकिन शासक बनकर प्रजा को भयभीत मत करना।

मैं अपने मनु की खोज में जा रही हूँ। नदी, मरुस्थल, पर्वत, कुंज-गली सभी स्थानों पर मैं उन्हें खोजूंगी। स्वभाव से वे भोले ही हैं। इतने छली नहीं हैं कि अब मुझे फिर धोखा दें। मैं तो उन्हीं के प्रेम में लीन हूँ। कहीं न कहीं वे मुझे मिल ही जायँगे।

इसके उपरांत मैं देखूँगी कि तुम किस ढंग से राज्य करते हो। बेटा मानव, मा तुझे आशीर्वाद देती है कि तेरे सुयश के गीत गाए जायँ।

बोला बालक—वह स्नेह—श्रद्धा का प्रेम। लालन—पालन। वरदान—मंगलकारी। क्रोड़—गोद।

अर्थ—कुमार ने कहा: मा, ममता को इस तरह न तोड़ो। मैया, मुझसे इस तरह मुँह मोड़ कर न जाओ।

तुम्हारी आज्ञा का पालन करता हुआ और तुम्हारे स्नेह-आशीर्वाद के सहारे बढ़ता हुआ, मैं चाहे जीवित रहूँ और चाहे मर जाऊँ, पर अपने प्रण को न छोड़ूँ अर्थात् कर्त्तव्य का ठीक से निर्वाह। मेरा जीवन मंगलकारी हो।

मा, आज तुम मुझे छोड़े जा रही हो, पर मेरी इच्छा है कि एक दिन तुम्हारी गोद मुझे फिर मिले।

वि०—मानव की यह इच्छा एक दिन पूरी हुई। 'आनन्द' सर्ग के इस प्रसंग पर ध्यान दीजिए—

भर रहा अंक श्रद्धा का
मानव उसको अपना कर।

पृष्ठ २४४

हे सौम्य इड़ा—शुचि—पवित्र। श्रद्धा—विश्वास। मननशील—चिंतनशील। संताप—क्लेश। निचय—समूह। समरसता—समानता। पुकार—विशेष इच्छा, आंतरिक कामना।

अर्थ—हे सौम्य, मेरे दूर होने से जो तुझे व्यथा होगी, वह इड़ा के पवित्र स्नेह को प्राप्त करके दूर हो जायगी।

इसमें तर्क की प्रधानता है और तुझमें विश्वास की। साथ ही अपने पिता मनु के चिंतन के संस्कार को भी तूने ग्रहण किया है। अतः तू निर्भय होकर राजकाज में लग। इड़ा का जो राज्य अव्यवस्थित होगया है, उससे इसे जो क्लेश मिला है, उस सारे खेद-समूह को तू नष्ट कर। मैं चाहती हूँ कि तेरे द्वारा मानव-जाति के भाग्य का उदय हो।

हे पुत्र, तेरी मा की जो आंतरिक इच्छा है उसे तू ध्यान से सुन। तू प्रजा में समानता का प्रचार करना।

अति मधुर वचन—दिव्य—अलौकिक। श्रेय—कल्याण। उद्गम—जन्म स्थान। अविरल—निरंतर। संताप—ताप और क्लेश। सकल—समस्त। प्रणत—झुक कर। मृदुल—कोमल। फूल—फूल सा सुकुमार भाव।

अर्थ—तुम्हारे अत्यंत मधुर और विश्वासमय ये वचन मैं कभी भूलूँ न। हे देवि, तुम्हारा यह प्रबल प्रेम अलौकिक कल्याण को निरंतर जन्म दे। जैसे बादल जब पानी की वर्षा करते हैं तब पृथ्वी का सारा ताप दूर हो जाता है, वैसे ही हम दोनों के प्रति तुम्हारे आकर्षण से जो आशीर्वाद का जल हमें मिला है उसे सार्थक करने के लिये हम जो कर्म करें, उनसे दुखी लोगों का सकल दुःख दूर हो।

ऐसा कहकर इड़ा झुकी और उसने श्रद्धा के चरणों की धूलि ली,

और अपने साथ ले जाने के लिए कुमार का फूल के समान कोमल हाथ पकड़ा ।

पृष्ठ २४५

वे तीनों ही—विस्मृत —भूलना । विच्छेद—वियोग । बाह्य—बाहरी । आहत— चोट खाकर । परिणत—परिवर्तित ।

अर्थ—एक क्षण के लिए इड़ा श्रद्धा और कुमार तीनों ही मौन रहे । बाह्य जगत को वे इतना भूल गए कि उन्हें पता ही न रहा कि इस समय वे कहाँ हैं और कौन हैं !

आज मानव और इड़ा श्रद्धा से पृथक् हो रहे थे, पर यह विछोह बाहरी था अर्थात् शरीर से ही वे एक दूसरे से दूर हो रहे थे, लेकिन हृदय आज तीनों के मिलकर एक होगए । यह मिलन कितना मधुर था ।

जल को आघात पहुँचाने से जलकण बिखर जाते हैं, पर थोड़ी देर में ही वे फिर लहर के रूप में परिवर्तित होकर एकरूप होजाते हैं । यही दशा इन तीनों के विछोह-मिलन की थी ।

इनमें से दो अर्थात् इड़ा और मानव चुपचाप नगर की ओर लौट चले । जब दूर हुए तब दोनों ने इस अनुभूति से प्रेरित होकर कि अब हम दोनों को सदा एक दूसरे के साथ ही रहना है एक प्रकार के आंतरिक अपनत्व का अनुभव किया और यह सोचा कि हम दो नहीं हैं एक ही हैं ।

निस्तब्ध गगन—निस्तब्ध—सन्नाटे से पूर्ण । असीम—सीमाहीन अवकाश । चित्र—दृश्य । कान्त—मनोहर । व्यथिता—थकी । श्रमसीकर—पसीने की बूंदें । दीन—विषाद । ध्वान्त—अंधकार ।

अर्थ—आकाश में सन्नाटा छाया हुआ था और दिशाएँ शांत थीं मानो वह स्थान असीम अवकाश का एक मनोहर दृश्य हो ! आकाश के सीने पर संख्या में बहुत थोड़ी सूक्ष्म बूंदें तारों के रूप में थीं, मानो वे थकी हुई रात्रि के शरीर पर पसीने की बूंद हों जो बहुत देर से झलकने

पर भी झर कर नीचे नहीं गिर पाती थीं। पृथ्वी पर गहरी म्लान छाया छाई थी।

सरिता के किनारे जहाँ वृक्ष खड़े थे उनके ऊपर के आकाश-प्रांत से केवल विषाद-भरा अंधकार बिखर रहा था।

पृष्ठ २४६

शत शत तारा—मंडित—सुशोभित। स्तवक—गुच्छा, विशेष रूप से फूलों का। माया सरिता—आकाश गंगा। स्तर—तह, भाग। दुरन्त—जिसका अन्त न हो।

अर्थ—आकाश सौ-सौ ताराओं से सुशोभित होगया मानों वसंत के वन में फूलों के गुच्छे चारों ओर खिल उठे हों।

ऊपर के लोक में मधुर हास्य इन तारिकाओं के रूप में छा गया और आकाश का हृदय मंद आभा से भर गया। वहीं ऊपर आकाश-गङ्गा बह रही थी जिसमें किरनों की चंचल लहरियाँ उठ रही थीं।

पर निम्न भाग में छाया बार-बार सहसा छाती और फिर विलीन हो जाती थी।

सरिता का वह—एकान्त—निर्जन, जहाँ कोई आता जाता न हो। हिंडोला—झूला। दल—समूह। विरल—बीच बीच में, रुक रुक कर, कमी। दीप्ति—आलोक। तरल—आशापूर्ण, टिमटिमाती। संसृति—संसार। गंधविधुर—गंधहीन।

तव सरस्वती सा—लग्न—लगे हुए, जड़े हुए। अनगढ़े—बिना कटे छटे, बिना तराशे। निस्वन—ध्वनि। लतावृत—लताओं से ढकी। जीवित—प्राणी।

पृष्ठ २४७

अर्थ—तब सरस्वती नदी जैसे सॉय-सॉंय करती बही जा रही थी, वैसी ही एक गहरी साँस लेकर श्रद्धा ने अपनी दृष्टि इधर उधर डाली। उसने देखा—दो खुली हुई आँखें चमक रही हैं, मानों किसी शिला में बिना कटे-छटे दो रत्न जड़े हों।

उसी समय उसके कानों में एक मंद-ध्वनि पड़ी। उसने सोचा अन्धकार में यह सनसन ध्वनि कहाँ से आरही है? क्या यह नदी का ही साँय-साँय शब्द तो नहीं है?

थोड़ी देर में उसका भ्रम दूर हो गया। उसने कहा—नहीं। पास में ही जो लताओं से ढकी गुफ़ा है उसमें बैठा कोई जीवित प्राणी साँस ले रहा है।

वि०—कहने की आवश्यकता नहीं कि यह 'कोई' मनु थे।

वह निर्जन तट—निर्जन—सूना, प्राणियों से रहित। उन्नत—ऊँचे। शैल शिखर—पर्वत की चोटियाँ। श्रम—ताप, दुःख। तपना—भाग लेना।

अर्थ—नदी का वह निर्जन किनारा एक चित्र जैसा प्रतीत होता था—अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त पवित्र।

वहाँ पर खड़ी पर्वत की चोटियाँ कुछ ऊँची थीं। लेकिन बहुत ऊंची नहीं थीं। उनसे ऊँचा तो श्रद्धा का सिर ही था।

आग में तप और गलकर जैसे सोना निखर आता है वैसे ही संसार के जीवों के दुःख में भाग लेकर और उनके दुःख से दुखी होकर उसके मुख पर करुणा, दया और सहानुभूति की झलक आ गई थी। इससे वह किसी देवी की स्वर्ण मूर्ति के समान प्रतीत होती थी।

मनु सोचने लगे : यह कैसी असाधारण नारी है। इसमें मातृभाव का आधिक्य है। यह संसार का हित करने वाली है।

वि०—नारी रमणी, बहिन, पुत्री और मा आदि अनेक रूपों में हमारे सामने आती है, पर सत्य बात यह है कि उसका सब से उज्ज्वल, सब से उदार रूप मा का ही है।

पृष्ठ २४८

बोले रमणी तुम—रमणी—भोग की प्यासी स्त्री। चाह—लालसा। वंचिता—ठगी हुई। उसको—इड़ा को। उन सबको—प्रजा को। प्रवाह—गति।

अर्थ—मनु बोले : ओह ! तुम भोग को प्रेम करने वाली स्त्री नहीं हो। तुम उन स्त्रियों में से नहीं हो जिनका हृदय लालसाओं से परिपूर्ण रहता है।

हे श्रद्धा, तुमने अपना सब कुछ त्याग कर मुझे रो-रो कर खोज निकाला और मै जिन व्यक्तियों से प्राण बचाकर भाग खड़ा हुआ उन सब को और उस इड़ा को भी अपने प्रिय पुत्र को तुम दे आई। उस समय क्या तुम्हारे कठोर मन में पीड़ा नहीं उठी ? तुम्हारे मन की गति विचित्र है !

ये श्वापद से—श्वापद—सिंह आदि फाड़ खाने वाले जानवर। हिंसक—हत्यारे। अधीर—उग्र। शावक—किसी भी पशु पक्षी का बच्चा। निर्मल—निष्कपट। हृत्तल—हृदय। हाथ से तीर छुट गया—जो होना था वह हो गया।

अर्थ—सारस्वत प्रांत के निवासी फाड़ खाने वाले जंगली जानवरों के समान उग्र हत्यारे हैं और मेरा वीर बालक किसी पशु पक्षी से बच्चे जैसा कोमल है।

हृदय को शीतल करने वाली उसकी वाणी मैं सुनता था। वह कितनी प्यार भरी और निष्कपट थी।

लेकिन तुम्हारा हृदय कितना कठोर है कि तुम उसे छोड़ आईं। यह इड़ा तुम्हारे साथ भी छल कर गई।

तुम ऐसी दशा में भी धैर्य धारण किए हुए हो। लेकिन अब तो जो होना था वह हो चुका।

पृष्ठ २४९

प्रिय अब तक हो—सशंक—डरे हुए। रंक—दरिद्र। विनिमय—(exchange) एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु देना। परिवर्तन—अदल बदल, विनिमय। स्वजन—आत्मीय जन, अपने लोग। निर्वासित—दूर। डंक—पीड़ा। स्पष्ट अंक—स्पष्ट बात, खरी बात।

अर्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया: हे प्रिय, तुम्हारा हृदय अब भी शंकित है। कुछ देने से कोई दरिद्र नहीं हो जाता। कुमार को मैं इड़ा को दे आई। यह एक वस्तु को लेकर दूसरी वस्तु को देना हुआ अर्थात् तुम्हें मैंने उससे ले लिया और तुम्हारे बदले में मानव को दे दिया। जैसे ऋण देने वाला ब्याज सहित उसे चुका लेता है वैसे ही तुमने सारस्वत प्रदेश की प्रजा को अपने पुत्र को ऋण रूप में दिया है। वह अपनी उन्नति के साथ तुम्हें मिलेगा। उसके यश से तुम्हारे यश की वृद्धि होगी।

तुम इड़ा के अपराधी थे और राज्य के बंधन में थे। अपने योग्य पुत्र को उस राज्य का कार्य-भार सौंप कर तुम मुक्त हो गए। जिन्हें तुम अपना आत्मीय समझते थे उन से तुम दूर हो। अब तुम्हें कोई पीड़ा क्यों सतावे।

खरी बात यह है कि जो तुम्हारे पास है उसे प्रसन्नता से दो और जो दूसरे दें उसे हँसकर ग्रहण करो।

तुम देवि आह—मातृमूर्त्ति—मातृभाव से भरी श्रद्धा। निर्विकार—कामना-हीन, सात्विक। सर्वमंगले—सबका मंगल करने वाली। महती—महान्। निलय—घर, स्थान। लघु—तुच्छ, संकीर्ण, ओछा।

अर्थ—मनु ने कहा: देवि, स्वभाव से तुम कितनी उदार हो।

दूसरों के प्रति ममता और क्षमा प्रकट करने वाला यह तुम्हारा माता का रूप कितना कामनाहीन है।

हे सबका कल्याण करने वाली, तुम महान हो। तुम सब प्राणियों के दुःख को अपने ऊपर अंगीकार करती हो। तुम ऐसी बात कहती हो जिससे दूसरों का कल्याण हो। तुम क्षमा के घर में निवास करती हो अर्थात् तुम क्षमामयी हो।

मै तुम्हें देखकर आज चकित हो उठा हूँ। पर एक दिन मैं तुम्हें साधारण नारी समझा था। इससे मेरे विचार का ही ओछापन सिद्ध होता है।

पृष्ठ २५०

मैं इस निर्जन तट—सत्ता—व्यक्तित्व। लघुता—क्षुद्रता, तुच्छता, ओछापन। अनुशय—पश्चाताप।

अर्थ—सरिता के इस सूने तट पर अधीरता से घूमता हुआ, भूख, पीड़ा और तीखी वायु को सहन करता हुआ, भावों के आंदोलन की चक्की में पिसता हुआ, मै बराबर आगे को बढ़ता चला आया हूँ। जैसे मनोविकार मन में उठ कर शून्य में विलीन हो जाते हैं, वैसे ही आज मै अपने व्यक्तित्व को खोकर कुछ भी नहीं रहा हूँ।

तुम मेरी क्षुद्रता की ओर ध्यान मत दो। मेरे कलेजे को चीर कर देखो। उसमें पश्चात्ताप तीर की तरह समाया है।

प्रियतम यह नत—नत—कोमल। निस्तब्ध—शांत। विगत—बीती हुई। संबल—सहारा, सब कुछ। निश्छल—निष्कपट भाव से। दुर्बल—अस्थिर मन। प्रात—प्रारम्भ।

अर्थ—हे प्रियतम, यह कोमल और शांत रात बीती बातों की याद जगा रही है।

जिस दिनों प्रलय का कोलाहल शांत हो चुका था, मैं अपने जीवन

का सब कुछ समर्पित कर निष्कपट मन से तुम्हारी हुई थी। क्या मैं इतने अस्थिर स्वभाववाली हूँ जो उसे भूल जाऊँ !

तब तुम मेरे साथ ऐसे स्थान में चलकर रहो जहाँ शांति का प्रारंभ नवीन रूप से हो। सत्य बात यह है कि चाहे तुम कैसा ही व्यवहार करो, पर मैं सदा तुम्हारी ही हूँ।

पृष्ठ २५१

इस देव द्वन्द्व—द्वन्द्व—दो, यहाँ माता पिता। प्रतीक—चिह्न, प्रतिनिधि। यह विष—वासना। विषम—भयंकर। कर्मोन्नति—उच्च कर्म। सम—ठीक। मुक्त—स्वतंत्र। शुभ—कल्याणकारी। अलीक—असत्य, झूठा। लीक—खेत आदि में पड़ा कच्चा रास्ता।

अर्थ—देवजाति के माता-पिता से उत्पन्न और उस जाति का चिह्न स्वरूप मानव अब तक देवताओं से जो भूलें हुई हैं, उन्हें सुधार लेगा।

जीवधारियों में वासना का जो भयंकर विष फैल गया है उसे उसकी प्रजा के लोग कुमार के अनुशासन में रहकर अपने उच्च कर्मों द्वारा ठीक कर लेंगे और स्वतंत्रतापूर्वक रहेंगे। जीवन भोग के लिए है उनका यह भ्रम एक दिन दूर हो जायगा और कल्याणकारी संयम के रहस्य को वे एक दिन समझेंगे।

जो झूठ है वह स्वयं मिट जाता है अर्थात् वासनामय जीवन वास्तविक जीवन नहीं है; इसे लेकर प्राणी नहीं चल सकता। पर यदि पथ में कोई लीक पड़ जाती है तब उससे हटकर चलने से ही वह मिटती है। इसी प्रकार मनुष्य का जो संस्कार बन जाता है उसके विपरीत आचरण करने से ही वह मिटता है। भाव यह है कि घोर वासनामय जीवन की समाप्ति के उपरांत संयम का जीवन धीरे-धीरे ही आवेगा।

वि०—मनु देव जाति के हैं और श्रद्धा गंधर्व जाति की। गंधर्व भी देवता होते हैं अतः कुमार देव जाति के माता पिता से उत्पन्न है।

वह शून्य असत—असत—अभावमय। अवकाश पटल—शून्य

प्रदेश, अंतरिक्ष, खोखला। उन्मुक्त—खुला। सघन—घना। भूमिका—पृष्ठभूमि, रंगमंच। स्निग्ध—चिकना। मलिन—धुँधला। निर्निमेष—टकटकी लगाए। शून्य सार—शून्य में समायी वस्तु अर्थात् अंधकार।

अर्थ—ऊपर के उस शून्य को चाहे अभावमात्र कहो चाहे अंधकार, पर वह उस खोखले (अंतरिक्ष) के एक छोर से दूसरे छोर तक फैला हुआ था।

वह अंधकार बाहर (पास में) कुछ खुला (कम गहरा) और भीतर घना होता हुआ अंजन का एक नीला पर्वत सा प्रतीत होता था।

यह धुँधला चिकना वातावरण एक दृश्य की पृष्ठभूमि (Back ground) बन गया। मनु उसे एक टकटकी लगाकर देखने लगे। वह शून्य (अंधकार) ऐसा सीमा-हीन था कि उसे भेद कर उसके परे की वस्तु दिखाई न देती थी।

पृष्ठ २५२

सत्ता का स्पंदन—सत्ता—आकारधारिणी वस्तु। स्पंदन डोल-उठा—हिल उठी, जग उठी, प्रकट हुई। आवरण-पटल—अंधकार के परदे को। मंथन—समुद्र मंथन।

अर्थ—उसी समय अंधकार के उस परदे को चीरती हुई एक सत्ता वहाँ प्रकट हुई।

जैसे सरिता समुद्र का आलिंगन करती है वैसे ही अंधकार के उस सागर से चाँदनी की रेखाएँ आकर मिलीं। जैसे समुद्र मंथन के समय उसके तल से अमृत आदि का आविर्भाव हुआ था वैसे ही उन रेखाओं के स्पष्ट होने से चाँदी के समान गौर वर्ण वाले उज्ज्वल परमात्मा, प्रकाश शरीरी, मंगलकारी चिन्मय शिव के दर्शन हुए, मानो अंधकार के समुद्र के मधुर मंथन का ही यह परिणाम हो।

उस अंधकार में केवल प्रकाश ही क्रीड़ा कर रहा था और जैसे

सरिता में चंचल लहरियाँ उठती हैं वैसे ही उस ज्योत्स्ना-धारा में मधुर किरणें उठ रही थीं।

बन गया तमस—तमस—अंधकार। अलक-जाल—केश समूह। सर्वांग—समस्त शरीर। ज्योतिर्मय—आलोक से निर्मित। विशाल—विराट। अंतर्निनाद ध्वनि—अनहद राग, अनाहत। चित्—शुद्ध चेतना। नटराज—शिव। निरत—तन्मय, लीन। अंतरिक्ष—शून्य। प्रहसित—आलोक से युक्त। मुखरित—ध्वनित। दिशा काल—दिशाएँ और समय।

अर्थ—अंधकार केश कलाप सा प्रतीत हुआ और उस विराट् मूर्ति का समस्त शरीर केवल आलोक से निर्मित दिखाई दिया।

शून्य को चीर कर प्रकट होने वाली उस चेतना-शक्ति के अंतर से अनहद नाद फूटा।

स्वयं भगवान् शिव आज नृत्य में तन्मय थे। इसी से समस्त शून्य अवकाश आलोक और ध्वनि से भर गया।

(अनाहत के) स्वर एक लय में बँधकर उस नृत्य के साथ ताल देने लगे। उस समय न इस बात का पता चल सकता था कि कौन दिशा किस ओर है और न यह जाना जा सकता था कि समय क्या है तथा किस गति से चल रहा है।

वि०—(१) योगी लोग दोनों हाथों के अँगूठे से दोनों कानों को बन्द करके अपने अन्तर में एक प्रकार का व्यवस्थित संगीत सुनते हैं, इसे अनहद नाद कहते हैं। जो ध्यानावस्थित हो जाते हैं, वे बिना कानों को मूँदे भी अनाहत सुन सकते हैं।

(२) भगवान् शिव योगिराज हैं, अतः उनका अंतर अनहद से परिपूर्ण है।

(३) 'लय' और 'ताल' की व्याख्या पीछे कर आये हैं।

पृष्ठ २५३

लीला का स्पन्दित—लीला—नृत्य-भंगियाँ। स्पन्दित—कंपित उत्पन्न। प्रसाद—प्रसन्नता। तांडव—शिव का नृत्य। श्रमसीकर—पसीने की बूँदें। हिमकर—चन्द्रमा। दिनकर—सूर्य। भूधर—पर्वत। संहार—विनाश, वस्तुओं का अस्त-व्यस्त होना; विश्लेषण। युगल—दोनों। पाद—चरण। अनाहत नाद—योगियों को ब्रह्मरंध्र में सुनाई पड़ने वाला संगीत।

अर्थ—आलोकमय चेतन शिव अपनी प्रसन्नता में अपनी नृत्य भंगियों से हर्ष उत्पन्न करने लगे।

उनका तांडव नृत्य सुन्दर और आनन्ददायक था। नृत्य करते करते जब वे थक गए तब उनके शरीर से पसीने की बूँदें झरने लगीं। उनसे ही सूर्य,चन्द्रमा और तारों का निर्माण हो गया। उनके चरणों की चाप से जो धूलिकण उड़े वे उड़ते हुए पर्वत बन गए।

उनके दोनों चरण निरन्तर गति लेते हुए नाश और सृष्टि दोनों कर रहे थे। उनके चरण की चाप से सृष्टि टूट कर एक ओर धूलिकण बन रही थी, पर वे ही धूलिकण दूसरी ओर पर्वत बन जाते थे। इसके साथ ही अनहद नाद भी सुनाई पड़ रहा था।

बिखरे असंख्य—असंख्य—अगणित। ब्रह्मांड —विश्व। युग—समय का एक दीर्घ परिमाण। तोल—निश्चित अवधि। विद्युत्—बिजली। कटाक्ष—दृष्टि, तिरछी चितवन। दोल—झूला।

अर्थ—अगणित गोलाकार ब्रह्मांड बिखरे दिखाई दिए। युग एक निश्चित समय की अवधि लेकर समाप्त होने लगे।

शिव की बिजली के समान तीव्र दृष्टि जिधर पड़ जाती थी उधर ही सृष्टि काँप उठती थी।

अनन्त चेतन अणु बिखर कर एक विशेष आकार धारण करते थे। फिर क्षण भर में ही वे विलीन हो जाते थे।

सारा संसार जैसे एक विशाल झूले में झूल रहा था और उसमें परिवर्तन पर परिवर्तन हो रहे थे।

वि०—(१) युग चार हैं—सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलि। सतयुग १७,२८००० त्रेता १२,९६००० द्वापर ८,६४००० और कलि ४,३२००० वर्ष का होता है।

(२) प्रश्न हो सकता है कि मनु और श्रद्धा ने थोड़े से काल में युगों को बीतते कैसे देखा! देवताओं में यह शक्ति होती है कि बहुत काल की घटनाओं को कुछ पल में ही दिखा दें जैसे रामायण के उत्तर-कांड में काकभुशुंडि वाले प्रसंग में—

मोहि बिलोकि राम मुसिकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख पाहीं।
उदर मांझ सुनु अंडज-राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।
कोटिन चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन, रवि, रजनीसा।
अगणित लोकपाल, जल, काला। अगणित भूधर; भूमि बिसाला।
भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहु कल्प सत एका।
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयऊँ भ्रमित मन मोह बिसेषा।

पृष्ठ २५८

उस शक्ति शरीरी—शक्ति-शरीरी—शक्ति से निर्मित जिसका शरीर है। कान्ति—शोभा। कमनीय—मनोहर। उल्लिखित—सुशोभित। हिम-धवल—बर्फ के समान श्वेत या उज्ज्वल। हास—मुसकान।

अर्थ—शक्ति का कलेवर धारण करने वाले शिव के शरीर से फूटने वाला आलोक सब पार-वार का नाश कर नृत्य में लीन था। शोभा के उस समुद्र में प्रकृति गल कर घुलमिल गई और फिर उसने एक दूसरा ही सुन्दर रूप धारण किया।

प्रलय का भीषण नृत्य करने वाले रुद्र देखने में अत्यन्त मनोहर थे।

उनकी हिम के समान उज्ज्वल मुसकान ऐसी शोभा पा रही थी मानों हीरे के पर्वत पर बिजली छिटक उठी हो।

देखा मनु ने—नर्त्तित—नाचते हुए, नृत्य करते हुए। नटेश—महादेव। हतचेत—तन्मय होना। विशेष—एकदम, पूर्ण रूप से। संबल—सहारा। पावन—पवित्र। लेश—चिह्न। समरस—एकरस।

अर्थ—मनु ने जब भगवान् शिव को नृत्य करते देखा तो वे एकदम तन्मय होकर बोल उठे: श्रद्धे, यह कितना अद्भुत दृश्य है। बस तुम मुझे अपना सहारा देकर उन चरणों तक ले चलो जहाँ पहुँचने पर समस्त लौकिक पाप-पुण्य जल कर एक निर्मल पवित्रता में बदल जाते हैं और जहाँ सांसारिक ज्ञान का चिह्नमात्र तक असत्य वस्तु के समान मिट जाता है। यह मूर्ति कैसी एकरस, पूर्ण और आनन्दमयी है!

रहस्य

कथा—श्रद्धा ने मनु को लेकर हिमालय पर चढ़ने का निश्चय किया। जैसे जैसे वे ऊपर चढ़ते गए वैसे ही वैसे पर्वत के अगणित रम्य भीषण दृश्यों के दर्शन उन्हें हुए। कहीं श्वेत हिम बिछा था, कहीं पगडंडियाँ थीं, कहीं भयंकर खड्ड और खाइयाँ थीं, कहीं सूर्य की रश्मियाँ हिमखंडों में प्रतिबिंबित होकर अनंत चन्द्रमाओं का भ्रम उत्पन्न कर रही थीं, कहीं हाथी के समान काले बादल मस्ती से घूम रहे थे, कहीं झरने झर रहे थे, कहीं हरियाली छायी थी। इन सबके ऊपर आकाश का चुंबन करती पहाड़ की चोटियाँ बड़ी अद्भुत और मनोरम प्रतीत होती थीं।

मनु चढ़ते-चढ़ते थक चले। श्रद्धा से उन्होंने कहा: न तो इस शीत पवन से सामना करने की सामर्थ्य मुझ में है और न मैं अभी इतना कठोर-हृदय हूँ कि जिन्हें पीछे छोड़ आया हूँ उन्हें एकदम भुला सकूं। अतः पीछे लौट चलो। श्रद्धा बोली: पीछे लौटने का समय तो अब नहीं रहा। रही थकावट की बात। थोड़े साहस से काम लो। हम थोड़ी देर में ही कहीं विश्राम-योग्य स्थान पा लेंगे। यों बातों ही बातों में दोनों एक समतल भूमि पर जा पहुँचे। इसी समय संध्या घिर आई। शून्य की ओर आँख उठाते ही मनु ने तीन ओर तीन रंग के तीन लोक देखे। उन्होंने श्रद्धा से पूछा: श्रद्धा, ये नवीन ग्रह कौन से हैं? श्रद्धा ने कहा: इन्हें मैं जानती हूँ। तुम स्थिर चित्त होकर सुनो।

उषा की लालिमा लिए यह जो गोलक दिखाई देता है वह इच्छा लोक है। इसमें भावों की प्रतिमाएँ निवास करती हैं। यहाँ शब्द, स्पर्श

रस, रूप, गंध की अप्सराएँ नृत्य करती हैं। माया यहाँ की शासिका है। वही समस्त भाव-चक्र को चलाती है। अधिक स्पष्ट शब्दों में माया के फँदे में फसने का तात्पर्य यह है कि प्राणी मधुर संगीत सुनना चाहता है, कोमल शरीर को स्पर्श करने की कामना रखता है, जिह्वा से भिन्न-भिन्न रसों का स्वाद लेने को लालायित रहता है, रम्य रूप के दर्शन का पिपासु है और नासिका से सुगंध ग्रहण कर मन को तृप्त करना चाहता है। भाव सत् भी हो सकते हैं और असत् भी। अतः मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार पुण्य की ओर भी झुक सकता है और पाप की ओर भी। सुख भी पा सकता है और दुःख भी। उन्नति भी कर कर सकता है और अवनति भी।

मनु बोले : यह देश वास्तव में बहुत सुन्दर है। परन्तु यह श्याम देश कैसा है।

कामायनी ने कहा : इसे कर्म-लोक कहते हैं। यह लोक धुँधला है अर्थात् कर्त्तव्य क्या है और अकर्त्तव्य क्या यह निश्चयपूर्वक कभी नहीं कहा जा सकता। नियति यहाँ की शासिका है और वही कर्म-चक्र को घुमाती रहती है। कर्म करने वालों को विश्राम नहीं मिलता। वे सदैव संघर्ष में लीन रहते हैं। उनके नाम का जय-घोष होता रहता है। पर जो पराजित और दलित हैं वे नित्य दुःखी रहते हैं। महत्वाकांक्षा की झोंक में यहाँ के प्राणी बड़े से बड़े पाप करने पर उतारू हो जाते हैं। वैसे यहाँ का बड़े से बड़ा वैभव और ऐश्वर्य अस्थिर और नाशवान् हैं। इन कर्म करने वालों को मुक्ति नहीं मिलती, बार बार जन्म-मरण के चक्र में पड़ना पड़ता है, क्योंकि कर्मों से संस्कार बनते हैं और नवीन संस्कारों को लेकर जीव नवीन शरीर धारण करने के लिए विवश है।

मनु ने कहा : 'यह जगत् तो बड़ा भीषण है। इसकी चर्चा यहीं रहने दो और यह जो तीसरा उज्ज्वल लोक है उसके संबंध में कुछ बताओ।

श्रद्धा ने उत्तर दिया : प्रियतम, यह ज्ञान-लोक है। यहाँ पर बुद्धि-चक्र चलता रहता है। यहाँ के प्राणी सुख दुःख दोनों से उदासीन रहते हैं। ये कुछ न चाह कर भी मुक्ति चाहते हैं। संसार का कोई लोभ इन्हें डिगा नहीं सकता। यहाँ जो जितना धार्मिक है, वह उतना बड़ा समझा जाता है। जीवन का उपभोग ये लोग नहीं करते। शास्त्र की एक-एक आज्ञा का पालन ये बड़ी सतर्कता से करते हैं। ऊपर से देखने में ये बड़े शांत दिखाई देते हैं, पर भीतर-भीतर बराबर भयभीत रहते हैं कि कोई पाप ये न कर बैठें। इनकी सबसे बड़ी भूल यह है कि मनुष्य की इच्छाओं का ये तिरस्कार करते हैं और प्राणी का लक्ष्य उसके जीवन को नहीं मानते, वरन् किसी अलक्ष्य सत्ता में विश्वास रखते हैं। इस प्रकार दुःख और अशांति का मूल कारण यह है कि प्राणियों के जीवन में इच्छा, कर्म और ज्ञान में कोई सामंजस्य नहीं। मनुष्य ऐसी इच्छाएँ करता है जो पूरी नहीं हो सकतीं, ऐसे कर्म करता है जो विवेक-सम्मत नहीं और ज्ञान में फँसता है तो जीवन का ही तिरस्कार कर बैठता है।

उसी समय श्रद्धा मुस्करा दी। वह मुस्कान ज्वाला बनकर उन लोकों में फैल गई जिससे वे मिलकर एक हो गए। थोड़ी देर में एक दिव्य संगीत की ध्वनि उन्हें सुनाई पड़ी जिसमें डूब कर दोनों ने गहरी तन्मयता का अनुभव किया।

पृष्ठ २५७

ऊर्ध्व देश उस—ऊर्ध्व—उच्च। देश—स्थान। नील—काला। तमस—अंधकार। स्तब्ध—शांत। हिमानी—बर्फ़। चतुर्दिक—चारों ओर। गिरि—पर्वत।

अर्थ—नीले अंधकार से घिरे उस उच्च स्थल पर अचल बर्फ़ शांत भाव से पड़ा है। नीचे से ऊपर को जाने वाली पगडंडी थोड़ी दूर जाकर मिट गई है मानो वह थक कर बढ़ नहीं पाती। उस तक कोई नहीं पहुँच

पाता, इस बात को वह अभिमानी पर्वत चारों ओर दृष्टि डाल कर देख रहा है।

वि०—इस छंद से यह आध्यात्मिक अर्थ स्पष्टतया भासित होता है कि ब्रह्मतत्त्व हिम के समान उज्ज्वल है, वह अज्ञान के अंधकार से आवृत है, वह उच्च कोटि का है, वह प्रशांत है। विभिन्न धार्मिक पंथों से प्राणियों ने उसे उपलब्ध करना चाहा, पर उस तक ठीक से कोई नहीं पहुँच पाया।

दोनों पथिक—दोनों—श्रद्धा और मनु। साहस—दृढ़ता। उत्साह —उमंग।

अर्थ—दोनों पथिक बहुत देर के चल पड़े थे और बराबर ऊँचे चढ़ते चले जा रहे थे। साहस की प्रतिमा के समान श्रद्धा आगे आगे थी और उत्साह की मूर्ति से मनु उसके पीछे चढ़े जा रहे थे।

वि०—श्रद्धा को साहस और मनु (मन) को उत्साह कहना यहाँ कितना सार्थक हुआ है! श्रद्धा या विश्वास जगते ही मन में किसी काम के लिए उत्साह स्वयं आ जाता है।

पवन वेग प्रतिकूल—प्रतिकूल वेग—उल्टे झोंके। निर्मोही—ममताहीन, कठोर।

अर्थ—ऊपर की ओर से हवा के प्रतिकूल झोंके उनकी ओर आ रहे थे जो आगे बढ़ने में रुकावट डालते हुए मानो कह रहे थे 'अरे पथिक लौट जा। तू मुझे चीर कर कहाँ जा रहा है? अपने प्राणों की क्या तुझे कुछ भी ममता नहीं है?'

वि०—(१) ज्ञान की दिशा में बढ़ने वाले व्यक्ति को सांसारिक आकर्षण के प्रतिकूल झोंके पीछे हटाने का प्रयत्न करते हैं मानो उससे पूछते हैं कि यदि उसने संसार को छोड़ने की ठानी है तब क्या शारीरिक सुख की चिंता उसे बिल्कुल नहीं रही?

(२) पथिक दो हैं, पर 'तू' शब्द के प्रयोग से पता चलता है कि

कवि केवल मनु को लक्ष्य करके कह रहा है। यह भूल नहीं। 'प्रसाद' ने जानबूझ कर ऐसा किया है, क्योंकि इन दोनों में से श्रद्धा तो हिल नहीं सकती थी। हाँ, मनु विचलित हो सकते थे और वे हुए भी।

छूने को अम्बर—अम्बर—आकाश। विक्षत—घायल।

अर्थ—पहाड़ की ऊँचाई निरंतर बढ़ती चली जा रही थी मानो वह आकाश को छूने के लिए मचल उठी हो। डरावने गड्ढे और भयंकर खाइयाँ वहाँ थीं। वे ऐसी लगती थीं मानो चलते-चलते ऊँचाई (पहाड़) का शरीर यहाँ वहाँ से घायल हो गया हो।

वि०—ज्ञान की ऊँचाई की कोई सीमा नहीं है और लक्ष्य तक जो पहुँचना चाहता है उसे मार्ग में अनेक खड्ड और खाइयाँ पार करनी पड़ती हैं अर्थात् ऐसी बातों से बचना पड़ता है जहाँ पतन की संभावना हो। जायसी ने पद्मावती को प्राप्त करने वाले रत्नसेन के मार्ग में भी ऐसे ही संकेतों का उल्लेख किया है—

ओहि मिलन जो पहुँचे कोई। तब हम कहब पुरुष भल सोई।
है आगे परवत की वाटा। विषम पहार अगम सुठि वाटा।
बिच-बिच नदी, खोह औ नारा। ठावहिं ठाँव बैठ बटपारा।

रविकर हिमखंडों—रवि—सूर्य। कर—किरणों। हिमखंड—बर्फ के टुकड़े। हिमकर—चन्द्रमा। द्रुततर—तीव्रता से।

अर्थ—सूर्य की किरणें बर्फ़ के टुकड़ों में प्रतिबिम्बित होकर न जाने कितने चंद्रमाओं की सृष्टि कर रही थीं। पवन बड़ी तीव्रता से गोलाकार घूमकर जहाँ से चलना प्रारंभ करता था, फिर वहीं लौट कर आ जाता था।

वि०—इस दृश्य के सौंदर्य की अनुभूति केवल वे ही प्राणी कर सकते हैं जिन्होंने पहाड़ों पर जाकर बर्फ़ पर झलमलाती सूर्य की किरणों के प्रतिबिंबों के दर्शन किए हैं। चंद्रमा का 'हिमकर' नाम यहाँ कैसा उचित लगता है!

पृष्ठ २५८

नीचे जलधर—जलधर—बादल । सुरधनु—इंद्रधनुष । कुंजर—हाथी । कलभ—हाथी का बच्चा । सदृश—समान । चपला—बिजली ।

अर्थ—नीचे इंद्रधनुष की रम्य माला धारण किए बादल इधर से उधर दौड़ लगा रहे थे । वे हाथियों के बच्चों के समान इठला-इठला कर घूम रहे थे और जैसे हाथियों के बच्चों की गर्दन में पड़े सोने के गहने चमकते हैं, वैसे ही उनके भीतर बिजली चमक उठती थी ।

वि०—'जलधर' शब्द का प्रयोग यहाँ सार्थक हुआ है क्योंकि जल से भरे हुए बादल ही काले होते हैं और बादलों की समता ही हाथी से ठीक बैठ सकती थी ।

प्रवहमान थे—प्रवाहमान—प्रवाहित, बह रहे थे । निर्झर—झरने । श्वेत—सफेद रंग का । गजराज—इंद्र का ऐरावत नामक हाथी । गण्ड—मस्तक । मधु—हाथी के मस्तक से चूने वाला रस ।

अर्थ—इससे भी नीचे की ओर सैकड़ों शीतल झरने पर्वत से फूट कर इस प्रकार बह रहे थे जिस प्रकार इंद्र के महान् श्वेत ऐरावत नामक हाथी के मस्तक से मधु धाराएँ बिखर कर बह रही हों ।

वि०—हाथी के मस्तक के छिद्र से एक प्रकार का रस झरता है । इसे मधु कहते हैं । इस पर प्रायः भौंरे आ बैठते हैं । हिमालय की समता इंद्र के ऐरावत हाथी से देनी इसलिए उपयुक्त हुई है कि ऐरावत का वर्ण श्वेत माना जाता है ।

हरियाली जिनकी—समतल—समभूमि, हमवार स्थान । चित्रपट—वह कागज, कपड़े या लकड़ी का टुकड़ा जिस पर चित्र अंकित होता है । प्रतिकृति—आकृति, मूर्ति । बाह्यरेख—रूप रेखाएँ । (outlines) ।

अर्थ—वे समतल स्थान, जिन पर हरियाली उग रही थी, किसी

चित्र के पट जैसे प्रतीत होते थे। उन पर होकर जाने वाली नदियाँ जो निरन्तर वेग से बह रही थीं वे ऐसी लगती थीं जैसे पट पर अंकित होने वाली आकृतियों की स्थिर रूप रेखायें हों।

वि०—(१) हिमालय के इस वर्णन में उपमाओं, रूपकों, उदाहरणों और उत्प्रेक्षाओं के आधार पर जो भी दृश्य उपस्थित किए गए हैं वे अत्यन्त समीचीन हैं।

(२) वर्णन यहाँ ऊपर से नीचे की ओर है—पहले हिमाच्छादित चोटियों पर पड़ने वाली सूर्य किरणों का, फिर बादलों का, फिर निर्झरों का और फिर हरियाली का।

(३) इस छंद में भगने वाली नदियों को स्थिर रेखाओं की समता दी है। वह इसलिए कि दूर से देखने वाले व्यक्ति को प्रवहमान सरितायें स्थिर ही प्रतीत होती हैं।

लघुतम वे सब—लघुतम—छोटे से छोटे आकार में। वसुधा—पृथ्वी। महाशून्य—आकाश। रजनी का सवेरा होना—किसी काम का समाप्ति पर आना।

अर्थ—श्रद्धा और मनु ने देखा कि पृथ्वी की सब वस्तुएँ इस समय ऊपर से देखने पर अत्यन्त छोटे आकार में दिखाई दे रही हैं और उनके ऊपर सूना महाकाश गोलाकार छाया हुआ है। जिस स्थान पर इस समय ये दोनों प्राणी थे वह ऐसा स्थल था जहाँ से और ऊपर चढ़ने की संभावना नहीं थी।

वि०—ज्ञान में बहुत ऊँचे उठने पर पृथ्वी के समस्त आकर्षण तुच्छ प्रतीत होते हैं। साथ ही जब तक साधक को परमात्मा के आलोक के दर्शन नहीं होते तब तक उसे शून्य के अतिरिक्त और कुछ भासित नहीं होता।

पृष्ठ २५९

कहाँ ले चली—निस्संबल—निस्सहाय। भग्नाश—जिसकी आशाएँ टूट गई हों। पथिक—यात्री, मार्ग चलने वाला।

अर्थ—मनु ने पूछा : श्रद्धे, इस बार तुम मुझे कहाँ लिए जा रही हो? मैं तो चलते चलते बहुत थक गया हूँ। मेरा साहस काम नहीं दे रहा। मै अपने को उस पथिक के समान पा रहा हूँ जो निस्सहाय हो और जिसकी सब आशाएं टूट चुकी हों।

वि०—ज्ञान के पथ पर आगे बढ़ने में मन अनेक बार सकुचाता और दुर्बलता का अनुभव करता है।

लौट चलो इस—वातचक्र—बवंडर, आँधी। रुद्ध करने वाले—रूंधने वाली, रोकने वाली। अड़ना—सामना करना।

अर्थ—पीछे लौट चलो। इस बवंडर को सहने की और सामर्थ्य मुझमें नहीं है। इस ठंढी हवा का, जो मेरी साँसों को रूँधे देती है, सामना करने की शक्ति मैं अपने में नहीं पा रहा।

वि०—योग के आधार पर जो ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें ऐसी स्थिति को पार करना पड़ता है। योग-साधन में सफल होने पर सिद्धियाँ मोक्ष आदि सबकी प्राप्ति संभव है, पर भ्रष्ट होने पर शारीरिक रोग और मृत्यु की संभावना रहती है।

मेरे हाँ वे—नीचे—इस पर्वत के नीचे पृथ्वी पर। सुदूर—बहुत दूर पर।

अर्थ—जिन से रूठकर मैं चला आया हूँ, वे सब मेरे अपने थे। निस्संदेह वे मेरे थे। वे नीचे बहुत दूर मुझ से बिछुड़ गए हैं, पर सच बात यह है कि मैं उन्हें भुला नहीं पाया।

वि०—ज्ञान के पथ पर अग्रसर होने पर भी मन बार-बार सांसारिक आकर्षणों की ओर लालसा भरी दृष्टि डालता है। दुर्बल है न?

वह विश्वासभरी—स्मिति—मंद मुसकान। मुख—अधर से तात्पर्य है। कर पल्लव—नवीन पत्ते जैसी हथेलियाँ। ललकना—चाव से भरना, उद्यत होना।

अर्थ—इतना सुनते ही श्रद्धा के मुख पर एक विश्वासभरी छलहीन

मुसकान खिल उठी और उसके पल्लव जैसे हाथ सेवा करने को उद्यत हुए।

वि०—श्रद्धा ने दो गुणों का सदैव परिचय दिया है—विश्वास और निस्वार्थ भावना का। इसी से मुसकान को मधुर या आकर्षक न कहकर विश्वासभरी और निश्छल कहना कितना प्रिय लगता है।

पृष्ठ २६०

दे अवलंब—अवलंब—सहारा। ठिठोली—मज़ाक, दिल्लगी, हँसी।

अर्थ—अपने व्याकुल साथी को सहारा देकर कामायनी ने मीठे स्वर में कहा: देखो, हम बहुत दूर चले आए हैं। मज़ाक करने का समय अब नहीं अर्थात् सांसारिक सुख की ओर लौटने की बात अब तुम्हारे मुँह से शोभा नहीं देती।

वि०—संसार का परित्याग करने से पहले ही साधक को सोच लेना चाहिए कि उसे पछताना तो नहीं पड़ेगा। वैराग्य के पथ पर चरण रख कर संसार की ओर लौटना अपनी हँसी कराना है।

दिशा विकंपित—विकंपित—काँपना, स्थिर न रहना या होना। पल—क्षण, समय। अनंत—सीमाहीन, आकाश से तात्पर्य है। भूधर—पर्वत।

अर्थ—कौन दिशा किधर है यह स्थिर नहीं किया जा सकता। पल भी यहाँ किसी सीमा (परिमाण) में बँधे हुए नहीं हैं। भाव यह कि ऐसे स्थान में देश-काल का बोध होना कठिन है। ऊपर सीमाहीन सा कुछ—आकाश—दिखाई देता है। तुम इस बात का उत्तर दो कि क्या अपने चरणों के नीचे पहाड़ जैसी वस्तु का तुम वास्तव में अनुभव कर रहे हो?

वि०—मनु के नीचे पर्वत नहीं, ऐसी बात नहीं है। पर जब व्यक्ति चलते चलते बहुत थक जाता है और फिर भी उसे चलना पड़ता है तब उसके पैर उखड़ जाते हैं और उसे ऐसा लगता है जैसे उसके नीचे भूमि

नहीं। भयभीत होकर यदि देर तक दौड़ना पड़े तब तो यह बात और भी अच्छी तरह समझी जा सकती है।

निराधार हैं किन्तु—निराधार—उचित विश्रामगृह का न होना।

अर्थ—यहाँ कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ हम सुविधापूर्वक विश्राम कर सकें। किंतु आज हमें यहीं ठहरना है। संसार की ओर लौट कर भाग्य के हाथ का खिलौना मैं नहीं बनना चाहती। तुम यह बात ध्यान से सुन लो कि हम जिस मार्ग पर चल पड़े हैं उस पर बढ़ने के अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय शेष नहीं रहा।

झाँई लगती जो—झाँई—आँखों के आगे अँधेरा छा जाना। दूसरी झोंक—उत्साह।

अर्थ—तुम्हारी आँखों के आगे जो अँधेरा छा गया है उसे दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि तुम थोड़े और ऊपर उठो। समभूमि आने पर दृष्टि धुँधली न रहेगी।

ऊपर से जो पवन के प्रतिकूल धक्के लग रहे हैं, इन्हें हम अपने अंतर के उत्साह से सहन करेंगे।

वि०—पहाड़ की ऊँचाई पर लगातार ऊँचे उठने में बड़ा श्रम पड़ता है। जिन्हें अभ्यास नहीं है वे हाँफ जाते हैं, उनके पैर उखड़ जाते हैं, और उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है जिससे उनका माथा चकराने लगता है और उन्हें ऐसा लगता है कि अब गिरे, अब गिरे।

श्रांत पक्ष कर—श्रांत—थके हुए। पक्ष—पंख। विहग—पक्षी। युगल—दो, नर मादा के जोड़े से तात्पर्य है। जम रहना—गति का बंद होना, रुकना।

अर्थ—आओ, आज हम दोनों उन दो पक्षियों के समान यहाँ रुक जायँ जिनके पंख उड़ते उड़ते थक जाते हैं और जो आँख बंद करके शून्य में पवन के आधार पर थोड़ी देर विश्राम कर लेते हैं। वह शून्य स्थान और यह पवन ही आज हमारा सहारा है। इन्हीं के भरोसे हमें

यहाँ रहना है अर्थात् न तो मन बहलाने को यहाँ कोई साथी है और न खाने पीने को कुछ। केवल पवन साँस लेने के लिए है।

वि०—योगाभ्यास में एक ऐसी स्थिति भी आती है जब देशकाल का भान छूट जाता है और आत्मा अपने चारों ओर केवल शून्य की अनुभूति करती है। ऊपर के चार छंदों में इसी साधनात्मक क्रिया का आभास बीजरूप से निहित है।

पृष्ठ २६१

घबराओ मत—समतल—समभूमि। त्राण—शांति।

अर्थ—थोड़ी देर में श्रद्धा ने फिर कहा : घबराओ मत। सामने ही समतल-भूमि है। तुम देखो तो सही, हम कैसे स्थान में आ पहुँचे हैं। मनु ने आँख खोल कर अपने चारों ओर देखा। उन्हें वास्तव में थोड़ी शांति मिली।

ऊष्मा का अभिनव—ऊष्मा—गर्मी, स्फूर्ति, उत्साह, नवीन शक्ति, नवीन बल। अभिनव—नवीन। दिवा—दिन। संधिकाल—मिलन वेला। व्यस्त—आकुल, गतिशील, चंचल।

अर्थ—वहाँ पहुँच कर उन्होंने नवीन स्फूर्ति का अनुभव किया। जिस समय ये दोनों वहाँ पहुँचे उस समय दिन और रात्रि की मिलन-वेला अर्थात् संध्या थी, इसी से ग्रह, तारागण और नक्षत्र अभी छिपे हुए थे और इनमें से कोई भी गतिशील नहीं था।

ऋतुओं के स्तर—स्तर—शृङ्खला। तिरोहित—दूर होना, नष्ट होना, टूटना। भू मंडल—गोलाकार पृथ्वी। निराधार—शून्य में स्थित। महादेश—विशाल पर्वत के ऊपर। उदित—जाग्रत। सचेतनता—चेतना।

अर्थ—ऋतुओं की शृङ्खला वहाँ टूट गई अर्थात् जैसे भारतभूमि में दो-दो मास के लिए एक-एक ऋतु क्रम से आती है ऐसा कोई नियम वहाँ लागू नहीं होता था। गोलाकार पृथ्वी की एक रेख तक वहाँ से दिखाई न देती थी।

शून्य में स्थित उस विराट देश में पहुँच कर मनु के हृदय में एक नवीन चेतना जाग्रत हुई।

वि०—जीव का आकर्षण जब लोक से टूट जाता है अर्थात् जब उसका बाह्य ज्ञान मिट जाता है तब वह ऐसी शून्य स्थिति का अनुभव करता है जहाँ न ऋतुएँ हैं, न सूर्य, न चन्द्र, न तारे। वहाँ वह इंद्रियों के माध्यम से उत्पन्न होने वाले बोध से भिन्न एक प्रकार की नवीन चेतना का अनुभव करता है। ऐसी ही स्थिति की इन दोनों छंदों में कल्पना की गई है। जायसी ने इन स्थितियों की ओर पद्मावत में संकेत किया है—

> जहाँ न राति न दिवस है, जहाँ न पौन न पानि।
> तेहि बन सुअटा चलि बसा, कौन मिलावै आनि।

त्रिदिक् विश्व—त्रिदिक्—तीन दिशाओं में। आलोक बिंदु—प्रकाशमय गोलक। त्रिभुवन—तीन लोक। प्रतिनिधि—स्थानापन्न। अनमिल—एक दूसरे से भिन्न। सजग—क्रियाशील।

अर्थ—मनु ने तीन दिशाओं में तीन लोक देखे। उन्हें तीनों प्रकाश भरे गोलक एक दूसरे से पृथक् दिखाई दिए। ये तीनों मानों तीन भुवनों का प्रतिनिधित्व करते थे। वे एक दूसरे से दूर और भिन्न होने पर भी अपने-अपने स्थान पर क्रियाशील थे।

वि०—तीन भुवनों में स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल आते हैं, पर यहाँ त्रिभुवन का वह अर्थ नहीं है। जो है वह आगे स्पष्ट किया जायगा।

मनु ने पूछा—ग्रह—नक्षत्र लोक। इंद्रजाल—मायाजाल।

अर्थ—मनु ने पूछा: श्रद्धे, ये जो तीन नवीन ग्रह दिखाई दे रहे हैं, उनके क्या नाम हैं, यह तुम मुझे बतलाओ। मैं इस समय किस लोक में आ खड़ा हुआ हूँ? इस मायाजाल से मुझे मुक्त करो।

पृष्ठ २६२

इस त्रिकोण के—त्रिकोण—तीन कोनों पर स्थित तीन लोक।
विपुल—बहुत, अत्यधिक, महान्।

अर्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया : तुम इन तीनों लोकों के मध्य में स्थित हो। ये तीनों महान् शक्ति और सामर्थ्यशील हैं। तुम एकाग्र होकर उनमें से एक-एक को देखो। इन्हें इच्छालोक, कर्मलोक और ज्ञानलोक कहते हैं।

वि०—मनु के समान ही प्रत्येक व्यक्ति का मन इच्छा, कर्म और ज्ञान के बीच गतिशील रहता है। उचित मात्रा में इन तीनों का सामञ्जस्य ही वास्तविक आनन्द का स्रोत है, यही इस सर्ग में समझाया गया है। आगे इच्छा, कर्म और ज्ञान के स्वरूप तथा उनकी शक्ति पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

वह देखो रागारुण—राग—अनुराग (प्रेम) जिसका रंग काव्य में लाल माना जाता है। कंदुक—गेंद। छाया—कांति, सूक्ष्मता। कमनीय—रम्य, मनोहर। कलेवर—शरीर, देह, बाहरी आवरण। मूर्ति।

अर्थ—पहले इस लोक को देखो जो अनुराग के समान अरुण वर्ण का और उषा की गेंद के समान सुन्दर है। इसका बाह्य आवरण केवल कांति से निर्मित और मनोहर है अर्थात् यह सूक्ष्म देहधारी है। हमारी पृथ्वी के समान इसमें ठोसपन नहीं। इस लोक में भाव वैसे ही बसते हैं जैसे किसी मंदिर में मूर्ति विराजमान रहती है। तात्पर्य यह कि यह इच्छा लोक है।

शब्द, स्पर्श, रस—शब्द—ध्वनि। स्पर्श—छूने की क्रिया। रस—चखने या जिह्वा से स्वाद लेने की क्रिया। रूप—नेत्र से वस्तुओं के आकार और उनकी सुन्दरता को ग्रहण करना। गंध—नासिका से

सुवास लेना। पारदर्शिनी—स्वच्छ (Transparent)। रूपवती—सुन्दरी।

अर्थ—इसमें शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध की पारदर्शिनी (सूक्ष्म) सुन्दर आकृतियाँ चारों ओर सुन्दर रंगीन तितलियों के समान मस्ती से विचरण करती हैं?

वि—पाँच इंद्रियों द्वारा हमें वस्तुओं का ज्ञान होता है। इन्हें ज्ञानेन्द्रियाँ कहते हैं। ये हैं त्वचा, रसना, चक्षु, कर्ण और घ्राण। इनकी पांच क्रियाएँ हैं। त्वचा का काम स्पर्श करना या छूना है, रसना या जिह्वा का काम रस लेना या चखना है, चक्षु या आँख का संबंध रूप या देखने से है। कर्ण या कान का प्रयोग शब्द या ध्वनि के लिए होता है अर्थात् कानों से हम सुनते हैं। घ्राणेन्द्रिय अर्थात् नाक का काम गंध लेना है। प्रत्येक प्राणी का भाव-जगत् इसी 'शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध' से बँधा है। हम मधुर संगीत या वाणी सुनना चाहते हैं, कोमल रमणियों या वस्तुओं को स्पर्श करना चाहते हैं, मधुर रसों का स्वाद लेना हमें प्रिय है, रूप देखते ही आँखें उधर लग जाती हैं और नासिका से पुष्पों की भीनी गंध लेना रुचिकर प्रतीत होता है।

इस कुसुमाकर—कुसुमाकर—वसंत, यौवन। कानन—वन, मन। अरुण—पीत या लाल रंग का। पराग—पुष्परज, आकर्षण। इठलातीं—मस्ती से विचरण करतीं। माया—रम्यता।

अर्थ—जैसे वसंत ऋतु के आगमन पर जब वन खिल जाता है, तब तितलियाँ पुष्पों के पीत पराग की उड़ती धूलि के नीचे मस्ती से घूमती सोती और जागती हैं वैसे ही यौवन-वसंत के आगमन पर मन के वन के खिलते ही आकर्षण के अरुण पराग के सहारे शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध की चेतनाएँ रम्य भावों के रूप में जगतीं (जाग्रत होतीं) इठलातीं (बढ़तीं) और सोतीं (कुछ काल के उपरांत विलीन हो जाता) हैं।

वि०—इसके उपरांत आगे के पांच छंदों में कवि ने शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध का क्रमशः वर्णन किया है।

पृष्ठ २६३

वह संगीतात्मक—संगीतात्मक—लय और ताल में बँधी ध्वनि। ध्वनि—स्वर। अँगड़ाई लेना—स्वरों का लहराते उठना। मादकता—मस्ती। लहर—तरंगें। अम्बर—आकाश, शून्य स्थान। तर करना—भिगोना।

अर्थ—इन पुतलियों के संगीत के कोमल स्वर जब लहराते उठते हैं तब आसपास के वातावरण में मस्ती की तरंगें उत्पन्न करते हैं और जिस शून्य स्थान में वे गूँजते हैं उसे रस से सिक्त कर (भिगो) देते हैं।

भावपक्ष में इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब मीठी-मीठी कोमल भावनाएँ मन में जगती हैं तब हृदय एक प्रकार की मस्ती का अनुभव करता है और अंतःकरण रसमग्न हो जाता है।

वि०—(१) संगीत का अभ्यास करने वाले कलाकारों और संगीत सुनने वाले पारखियों दोनों के सामान्य अनुभव की बात है कि गले से स्वर संधान करते ही या वाद्ययंत्र पर उँगलियाँ चलाते ही ध्वनि उत्पन्न होती है। यह ध्वनि शून्य में लहरें लेती उठती है। उन लहरियों की गूँज से मन ही आनन्दमग्न नहीं होता, सारा वातावरण ही रसासिक्त हो जाता है।

(२) अंगड़ाई लेना, सीधा उठना नहीं, कलात्मक ढंग से, विशेष शारीरिक भंगिमाओं के साथ उठना है। ध्वनि अँगड़ाई लेती है का तात्पर्य जहाँ स्वरों का लहराते हुए फैलना है वहाँ यह भी है कि संगीत में जैसे कठिन राग-रागिनियों के स्वर सरल न होकर कठिन होते हैं वैसे खाने पीने के सरल भावों को छोड़ जितने ही सूक्ष्म भाव मन में जन्म लेते हैं उनका रस उतना ही अधिक आनन्ददायी है।

आलिंगन सी मधुर—आलिंगन—शरीर का शरीर से छूना। प्रेरणा—इच्छा। सिहरन—कंपन। अलम्बुषा—छुई मुई का पौधा (Touch-me-not) व्रीड़ा—लज्जा, संकोच।

अर्थ—आलिंगन करने की मधुर इच्छा से प्रेरित होकर ये पुतलियाँ एक दूसरे को छूती हैं, और उस स्पर्श-सुख से एक मधुर कंपन का अनुभव करती हैं। पर तुरंत ही लज्जा आ दबाती है। जैसे नवीन छुई-मुई खुलती है, पर उँगली का स्पर्श होते ही सिकुड़ जाती है, ठीक ऐसे ही इनके हृदय में पहले तो स्पर्श की भावना जगती है, स्पर्श होता भी है, पर अधिक नहीं बढ़ पाता लज्जा के कारण थम जाता है।

वि०—(१) जैसे कान अपनी तृप्ति के लिए मधुर स्वर के प्यासे रहते हैं वैसे ही हाथ भी स्पर्श करने को आकुल रहते हैं, पर लज्जा उन्हें संयम में बाँधे रखती है।

(२) एक हृदय दूसरे हृदय को स्पर्श करना चाहता है अर्थात् एक प्राणी के भाव दूसरे प्राणी के भावों से टकराना चाहते हैं और इससे सुख की भी अनुभूति होती हैं पर संकोच के कारण मन की बहुत सी बातें प्रायः मन में ही रह जाती हैं।

(३) जिसे हम प्यार करते हैं उसे स्पर्श करते ही एक मधुर कंपन का अनुभव स्वभावतः होता है।

यह जीवन की—यह—इच्छा लोक। सिंचित होना—सींचा जाना। लालसा—कामना। प्रवाहिका—नदी, सरिता। स्पंदित होना—नदी का चंचल होना, लहरों का उठना।

अर्थ—इच्छा-लोक जीवन का मध्य लोक है—इससे पहले का कर्म-लोक इससे कम सूक्ष्म है और इसके आगे का ज्ञान लोक इससे कहीं अधिक सूक्ष्म। यह लोक रस की धारा से सींचा जाता है।

रस की इस नदी में मधुर कामनाओं की लहर उठती रहती है।

वि०—सामान्य रूप से जीवन की मध्यभूमि यौवन है जिससे मधुर लालसाओं के उद्रेक से रस की धारा बहती रहती है।

जिसके तट पर—मनोहारिणी—आकर्षक। छायामय—सूक्ष्म शरीर धारी। सुषमा—लावण्य। विह्वल—अधिकता।

अर्थ—रस की इस सरिता के किनारे विद्युत्कणों के समान आकर्षक आकृति वाले, सूक्ष्म शरीरधारी, अत्यधिक लावण्यमय सुन्दर जीव मस्ती से घूमते हैं।

वि०—लालसा की लहरों से युक्त रस की नदी के किनारे कवि ने रूप को विचरते देखा है। इसका तात्पर्य यह है कि रूप और रस का निकट संबंध है।

सुमन संकुलित—संकुलित—युक्त, पूर्ण, भरी हुई। रंध्र—छिद्र। रसभीनी—रस से भीगी, सरस। वाष्प—भाप। अदृश्य—जो दिखाई न दे।

अर्थ—इच्छालोक की फूलों से भरी भूमि के छिद्रों से सरस मधुर गंध उठती है।

उस गंधयुक्त मकरंद के, झीनी-झीनी बूंदों से युक्त वाष्प के ऐसे फुहारे छूट रहे हैं जो दिखाई नहीं पड़ते।

वि०—मन की भूमि सुमन जैसी कोमल भावनाओं से भरी रहती है जिससे रसमयी भाव-तरंगों के फुहारे छूटते हैं। इस अर्थ में पुष्प का सु-मन नाम कैसा सार्थक है।

पृष्ठ २६४

घूम रही है—चतुर्दिक—चारों ओर। चलचित्र—रजतपट (Cinema) के चित्रों के समान। संसृति—इच्छालोक के निवासी। काया—छायामय शरीर, सूक्ष्म या स्थूलता-विरहित देह।

अर्थ—इस लोक के निवासियों के छायामय (सूक्ष्म) शरीर रजतपट के घूमते चित्रों के समान चारों ओर घूमते रहते हैं।

इच्छा के इस प्रकाश-लोक को चारों ओर से घेर कर माया बैठी-बैठी मुसकराती रहती है। अर्थात् इच्छा-लोक की स्वामिनी माया है।

वि०—प्रथम दो पंक्तियों का हृदयपक्ष में अर्थ यह हुआ कि मन में चंचल भाव प्रतिक्षण उठते रहते हैं।

भाव चक्र यह—चक्र—पहिया। रथ नाभि—धुरी जिस पर पहिया घूमता है। अराएँ—लकड़ी की वे तीलियाँ जो पहिए के मध्यभाग से आरम्भ होकर उसके गोलाकार अंश से जुड़ी रहती हैं। अविरल—निरंतर। चक्रवाल—गोलाकार अंश। चूमतीं—छूतीं, संबधित रहतीं।

अर्थ—यह माया भावचक्र को चलाती रहती है। यह चक्र इच्छा का आधार पाकर वैसे ही गतिशील रहता है जैसे पहिए की धुरी पर पहिया घूमता है। पहिए के मध्य भाग से जैसे लकड़ी की तीलियाँ उसके गोल अंश से जुड़ी रहती हैं वैसे ही नौ रसों की धाराएँ भाव-चक्र के वृत्त को आश्चर्य चकित होकर स्पर्श करती हैं।

वि०—(१) जो भावों का शिकार हुआ, समझ लो वह मायाजाल में फँसा हुआ है। माया का अर्थ ही है इच्छा के इशारों पर नाचना। इच्छा से कर्म होते हैं, कर्म से संस्कार बनते हैं, संस्कारों के कारण प्राणी अनेक योनियों में भ्रमण करता है अर्थात् आवागमन, जन्म-मरण या माया के चक्र से उसे छुटकारा नहीं मिलता। इसी से प्राणी का पुरुषार्थ है कामनाहीन होना।

(२) भाव इच्छा का आधार लेकर घूमते हैं इसका तात्पर्य यह हुआ कि इच्छा होने से ही भाव जगते हैं। इच्छा न होगी तो भाव न जगेंगे। प्रेम करने की इच्छा होगी तो शृङ्गारी भाव जगेंगे।

(३) प्रत्येक प्राणी के हृदय में ९ भाव स्थायी रूप से रहते हैं—रति, हास, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, शोक और शम। इन्हें स्थायी भाव कहते हैं। इन्हीं के आधार पर साहित्य-शास्त्रियों ने ९ रस माने हैं। भाव-चक्र का सांग-रूपक पहिए के साथ अत्यंत स्पष्ट और

उपयुक्त हुआ है। भाव-चक्र में भाव शब्द मन में उठने वाली भाव-समष्टि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(४) चकित शब्द का प्रयोग करके कवि रस की उस आनंददायिनी शक्ति की ओर संकेत करना चाहता है जिसे व्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाकर रस के संबंध में सभी ने यह कहा है—वह अलौकिक है, वह ब्रह्मानंद-सहोदर है, वह अनिर्वचनीय है।

यहाँ मनोमय--मनोमय विश्व—शरीर संघटित करने वाले पाँच कोषों में से तीसरा, इसमें मन अहंकार और कर्मेन्द्रियाँ आती हैं। रागारुण चेतन—तीव्र या गहरा आसक्ति भाव। उपासना—आराधना। परिपाटी—प्रणाली। पाश—जाल।

अर्थ—इस लोक के प्राणियों का मन गहरी आसक्ति-भाव की आराधना में लीन रहता है।

यहाँ की शासिका माया है और उसकी शासन-प्रणाली यह है कि वह मोह का जाल बिछाकर जीवों को फाँसे रखती है।

वि०—आसक्ति ही संसार में फँसे रहने का कारण है, अतः भाव-पक्ष में इस छंद का अर्थ यह होगा कि मन के भाव सांसारिक आसक्ति की ओर मुड़ते हैं और मायाजाल में फँसे रहते हैं।

वेदान्त के अनुसार शरीर का संघटन पाँच कोषों (स्तरों) से युक्त माना जाता है—अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनंदमय कोष। अन्न से बनी त्वचा से लेकर वीर्य तक का समुदाय अन्नमय कोष कहलाता है। प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान इन पाँच प्राणों को प्राणमय कोष कहते हैं। मन, अहंकार और कर्मेन्द्रियाँ मनोमय कोष के अंतर्गत आते हैं। ज्ञानेन्द्रियों और बुद्धि का समूह विज्ञानमय कोष कहलाता है। शरीर का सब से भीतरी आनंदमय कोष है। इसमें आनंदमयी आत्मा निवास करती है।

इच्छाएँ मनोमय कोष में होती हैं।

यह अशरीरी—अशरीरी—सूक्ष्म। रूप—आकार—से। वर्ण—रंग। गंध—सुवास। अप्सरियों—सुंदर रमणियों, मनोवृत्तियों। झूले—झूला के समान संगीत की तानों का लहराना।

अर्थ—शरीर से ये स्थूल नहीं हैं, सूक्ष्म हैं। जैसे फूल में वर्ण और गंध रहते हैं—जिनका कोई शरीर नहीं—वैसे ही ये भी सुन्दर वर्ण वाली रमणियाँ हैं, और इनके शरीर से गंध फूटती है। इच्छा लोक की इन अप्सराओं की संगीत की तानें मनोहर झूलों के समान लहराती ही रहती हैं।

वि० (१) इच्छा लोक के निवासियों का शरीर मनुष्यों के समान हड्डी माँस से बना ठोस नहीं है, वह सूक्ष्म है। अशरीरी से तात्पर्य स्थूलता के विपरीत का है। इसी भाव को व्यंजित करने के लिए कवि इसके पूर्व 'छायामय कलेवर' 'छायामय सुषमा' 'चल चित्रों सी संसृति' आदि लाया है।

(२) भावों का कोई स्थूल शरीर नहीं होता। हाँ, वे रंगीन होते हैं। और जैसे गंध नहीं छिपती, चारों ओर फूट पड़ती है, वैसे ही इन्हें भी छिपाना कठिन है। संगीत की तान के समान मन में ये भी मचलते ही रहते हैं।

(३) इस सर्ग में अंतर्-जगत् से संबंध रखने वाला अर्थ चाहे कितना ही प्रधान क्यों न हो, पर बाहरी अर्थ को बराबर स्मरण रखना है। कवि के अनुसार श्रद्धा इन लोकों को बाहर दिखा रही है।

भाव भूमिका—भाव भूमिका—भावनाएँ। जननी—उत्पन्न करने वाली। ढलते—बनते। प्रतिकृति—प्रतिमूर्ति, प्रतिमा। मधुर ताप—प्रभाव।

अर्थ—इच्छा लोक की भावभूमि में सब पुण्य और सब पाप उत्पन्न होते हैं अर्थात् यहाँ के प्राणी अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार सभी प्रकार के पाप पुण्य के भागी होते हैं।

इन्हीं भावों की आग के मधुर ताप (प्रभाव) से प्राणी भिन्न भिन्न

स्वभाव (habits) की प्रतिमूर्ति से बन जाते हैं। भाव यह कि जिसके जैसे भाव, उसका वैसा स्वभाव।

वि० (१) इस छंद का सामान्य अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में सत् और असत् दो प्रकार की वृत्तियाँ रहती हैं। जब वह सत् वृत्तियों का पक्ष लेता है तो पुण्य और असत् वृत्तियों में फँस जाता है तो पाप कमाता है। इन्हीं वृत्तियों के अनुसार प्रत्येक प्राणी का स्वभाव बनता है।

(२) वस्तुओं की उत्पत्ति के लिए भूमि या आधार की आवश्यकता होती है। अतः छंद की प्रथम पंक्ति में भाव के साथ 'भूमिका' शब्द का प्रयोग है। धातु पहले गलती है, फिर साँचे में ढलती है और तब कहीं मूर्तियाँ बनती हैं। भावों के साँचे में इसी प्रकार स्वभाव ढलता है। कवि ने सचेष्ट होकर ज्वाला, ताप और ढलने का प्रयोग किया है।

पृष्ठ २६५

नियममयी उलझन—नियम—सामाजिक धार्मिक विधान। उलझन—झंझट। विटपि—वृक्ष। नभ कुसुमों का खिलना—व्यर्थ होना, असम्भव कल्पना।

अर्थ—जैसे वृक्ष से लता चिपटी रहती है, वैसे ही भावरूपी वृक्ष को नियमों के झंझट की लता जकड़े रहती है।

यह बात कि मन के भावों को नियमों से कैसे स्वतंत्र करें, जीवन के लिए उसी प्रकार की एक समस्या खड़ी करती है जैसे वन की यह एक समस्या है कि वृक्षों को लताएँ आकर घेर लेती हैं और चारों ओर से इन्हें जकड़ कर उनका रस चूसती हैं।

ऐसी दशा में किसी आशा को फलीभूत देखना उसी प्रकार असंभव है जैसे यह सोचना कि आकाश में फूल खिल सकते हैं।

वि०—जब नियम आकर सामने खड़े होते हैं तो मन के सारे कोमल भाव कुचल दिए जाते हैं। मान लीजिए कोई हिंदू लड़का किसी मुस-

लमान लड़की को प्रेम करता है। अब यदि वह यह चाहता है कि उसके साथ विवाह करके सुखी हो तो इस बात को सुनते ही धर्म कहेगा। 'राम राम!' समाज कहेगा 'छिः छिः।'

चिर वसंत का—चिर—बहुत दिनों तक रहने वाला। वसंत—सब से सुंदर और समृद्धिशाली ऋतु, विकास। पतझर—माघ फागुन में पड़ने वाली वह शीत ऋतु जिसमें वृक्षों के पत्ते झर जाते हैं, ह्रास। अमृत—सत् वृत्तितों के अनुशीलन से प्राप्त आनन्द। हलाहल—वासना या असत् वृत्तियों का विषैला प्रभाव।

अर्थ—इच्छा लोक चिर वसंत को भी जन्म देता है, दूसरी ओर पतझड़ को भी।

यहाँ अमृत के पास ही विष रखा है। यहाँ एक ही गाँठ में सुख और दुःख बँधे हुए हैं।

वि०—अपने जीवन को बनाना बिगाड़ना मनुष्य के हाथ में है। वह शुभ इच्छाओं का प्रेमी बनकर अपनी उन्नति कर सकता है और अशुभ इच्छाओं को पोषित कर अपनी अवनति भी। वह भक्ति त्याग और पुण्य का पथ ग्रहण कर आनन्द का अमृत पान कर सकता है और वासना, स्वार्थ तथा पाप-पंक में फँसकर अपने जीवन को विषमय बना सकता है। वह चाहे तो सत् भावनाओं को अपनाकर सुखी बन सकता है और यह भी उसके हाथ में है कि भावनाओं का दास बन कर दुःखी हो।

सुन्दर यह तुमने—यह—इच्छा लोक। श्याम—श्याम रंग का। कामायनी—श्रद्धा का दूसरा नाम। विशेष—औरों से भिन्न, औरों से न मिलता जुलता।

अर्थ—मनु ने कहा: तुमने जिस इच्छा लोक के दर्शन मुझे कराए, वह वास्तव में सुन्दर है। किन्तु यह दूसरा श्याम वर्ण का कौन सा देश है? कामायनी, इसका विशेष रहस्य क्या है, यह भी मुझे समझाओ।

पृष्ठ २६६

मनु यह श्यामल—श्यामल—श्याम वर्ण का। सघन—ठोस। अविज्ञात—अज्ञात, जिसके संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ न कहा जा सके। मलिन—निकृष्ट कोटि का।

अर्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया : यह श्याम वर्ण वाला गोलक कर्म-लोक कहलाता है। यह अंधकार के सदृश कुछ कुछ धुँधला है। यह सूक्ष्म न होकर ठोस है इसी से इसके सब रहस्यों को जाना नहीं जा सकता। यह देश धुंए की धारा के समान मलिन है।

वि०—(१) बड़े बड़े मनीषी इस बात पर चकराते हैं कि क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए। पूछा जा सकता है कि यदि अपना कर्म सभी को करना चाहिए और हिंसा पाप है, तो कसाई के लिए क्या व्यवस्था होनी चाहिए?

क्योंकि कर्म अकर्म के संबन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता, इसी से उसे धुंधला कहा है।

वि०—(२) कर्म इच्छाओं तथा ज्ञान की भाँति सूक्ष्म नहीं अर्थात् केवल मन के भावों को लेकर चलने वाला या बुद्धि-व्यापार मात्र नहीं। उसका संबन्ध ठोस वस्तुओं—हाथ, पैर, वस्त्र आदि से है, इसी से उसे सघन या ठोस कहा है।

(३) कर्म हमें संसार में ही फंसाये रहता है, इसी से उसे मलिन या सामान्य कोटि का कहा। ज्ञान के समान वह उज्ज्वल या उत्कृष्ट कोटि का नहीं है।

कर्म-चक्र सा—गोलक—गोल आकार वाला देश। नियति—भाग्य। प्रेरणा—इशारा, इंगित, उत्तेजना। व्याकुल—अस्थिर रहने वाली। एषणा—इच्छा।

अर्थ—यह गोल आकार वाला देश भाग्य के इशारे से कर्म-चक्र का रूप धारण करके चक्कर काट रहा है। इस लोक के प्रत्येक प्राणी

के कर्म के मूल में कोई न कोई अस्थिर रखने वाली नवीन इच्छा काम कर रही है।

वि०—इच्छा से कर्म होता है। कर्म से संस्कार बनते हैं। संस्कारों के अनुसार दूसरा जन्म पाकर हमें फिर कर्म करना पड़ता है। इस प्रकार यह कर्म-चक्र निरंतर चलता रहता है।

श्रममय कोलाहल—श्रम—परिश्रम। कोलाहल—शोर। पीड़न—दबाना। विकल—अस्थिर, चंचल। प्रवर्त्तन—चक्कर, किसी चीज को चलाना, गति देना। क्रियातन्त्र—कर्म विधान।

अर्थ—जैसे जब किसी कारखाने में कोई भारी मशीन वस्तुओं को दबाती कुचलती तीव्र गति से चक्कर काटती है तब उसके साथ काम करने वाले मजदूरों को श्रम भी करना पड़ता है और उनके इधर उधर घूमने से शोर भी मचता रहता है, वैसे ही कर्म-चक्र प्राणियों से परिश्रम करवाता और कोलाहल मचवाता हुआ तीव्र गति से घूम रहा है।

इसके कारण प्राणियों को कभी विश्राम नहीं मिलता। उनके प्राण इस कर्म-विधान से गुलाम बन गए हैं।

भाव राज्य के—मानसिक—काल्पनिक। हिंसा—किसी को मानसिक या शारीरिक कष्ट पहुँचाना, किसी की हत्या करना। गर्वोन्नत—भारी अभिमान। हार—माला। अकड़ना—गर्व से छाती फुलाना। अणु—तुच्छ जीव।

अर्थ—भावनाओं के राज्य में विचरण करने वाले प्राणी मानसिक (काल्पनिक) सुख प्राप्त कर सकते हैं, पर जब उनके ये भाव इस कर्म-लोक से टकराते हैं तब सारा सुख दुःख में परिवर्तित हो जाता है।

हम दूसरों को मानसिक या शारीरिक कष्ट पहुँचा सकते हैं ऐसे भारी अभिमान की मालायें धारण कर अर्थात् दूसरों को दुःख देने में अपनी शोभा समझ ये तुच्छ जीव गर्व से छाती फुलाये इधर उधर निश्चित मन से घूमते दिखाई पड़ते हैं।

ये भौतिक सदेह—भौतिक—स्थूल, पंचभूतों से निर्मित शरीर। सदेह—देहधारी। भावराष्ट्र—इच्छा लोक। नियम—बातें। दण्ड—दुःखदायिनी, पीड़ा देने वाली। कराहना—पीड़ा से चिल्लाना, आह भरना।

अर्थ—ये स्थूल शरीरधारी किसी न किसी प्रकार के कर्म में रत रह-कर इस लोक में जीवित रहना चाहते हैं।

यहाँ इच्छा लोक की बातें दण्डस्वरूप सिद्ध होती हैं अर्थात् कोरी भावुकता से यहाँ काम नहीं चलता। यही कारण है कि किसी न किसी रूप में सब व्यथा से चिल्ला रहे हैं।

पृष्ठ २६७

करते हैं सन्तोष—संतोष—तृप्ति, शांति। कशाघात—कोड़े की मार। भीति—भयभीत। विवश—अनिच्छा से। कंपित—काँपते हुए।

अर्थ—कर्म करते हैं, पर असंतुष्ट रहते हैं। उन्हें ऐसा लगता है जैसे वे अपने मन से काम नहीं कर रहे हैं, कोई कोड़े मार मार कर प्रतिपल उनसे काम करा रहा है और वे भयभीत होकर अनिच्छा से काँपते हुए प्रतिक्षण काम करते ही जाते हैं।

नियति चलाती—नियति—भाग्य। तृष्णा—कोई आकुल इच्छा। ममत्व वासना—मोह भावना, ममता। पाणिपादमय—हाथ पैर वाले, स्थूल। पंचभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश। उपासना—अत्यधिक आसक्ति।

अर्थ—इस कर्म-चक्र को भाग्य गतिशील रखता है। क्योंकि किसी न किसी आकुल इच्छा को लेकर उन्हें प्राप्त करने के लिए लोगों के हृदय में उनके प्रति मोह-भावना जग जाती है, इसी से यह कर्म-चक्र चल रहा है।

कर्म-लोक में पंचभूतों की स्थूल उपासना हो रही है अर्थात् भोग

के लिए पंचभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश—काम में लाये जा रहे हैं।

यहाँ सतत संघर्ष—संघर्ष—एक दूसरे का सामना करना, प्रतियोगिता, अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए प्रयत्न। कोलाहल—अशांतिराज। —अधिकता, आधिपत्य। अंधकार में—विवेकहीन। दौड़ लगना—जल्दी जल्दी काम करना। मतवाला—पागल।

अर्थ—यहाँ रात दिन एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का सामना करना पड़ता है। इसका परिणाम अधिकतर असफलता और अशान्ति होती है।

सब अंधे बनकर जल्दी जल्दी काम किए जा रहे हैं। यह नहीं सोचते कि इसका परिणाम क्या होगा। ऐसा लगता है मानो समाज का समाज ही पागल होगया है!

स्थूल हो रहे—स्थूल—सूक्ष्मतारहित (gross)। रूप—इच्छाओं की मूर्ति, ठोस इच्छाएँ। भीषण—भयंकर। परिणति-परिणाम। पिपासा—ललक, चाट, प्यास। ममता—मोह। निर्मम—कठोर। गति—अंत।

अर्थ—अपनी अपनी इच्छाओं की मूर्तियाँ बनाकर अर्थात् भावों को ठोस रूप में प्राप्त करने के प्रयत्न में ये लोग सब प्रकार की सूक्ष्मता खो चुके हैं और स्थूलता-प्रिय हो गए हैं। यही कारण है कि इनके कर्मों का परिणाम भयंकर होता है। आकांक्षाओं की ऐसी घोर ललक और मोह का अंत ऐसा ही कठोर (दुःखदायी) होता है।

वि०—प्रेम एक सूक्ष्म भाव है। उसका शरीर से अनिवार्य संबंध नहीं है। अतः यह कामना कि यदि किसी से प्रेम है तो वह पति या पत्नी रूप में ही प्राप्त हो भाव को ठोस या स्थूल रूप में उपलब्ध करना है।

यहाँ शासनादेश—शासनादेश-शासक की आज्ञाएँ। घोषणा—

राजाज्ञा का प्रचार, मुनादी । हुंकार—ध्वनि । दलित—शोषित, कुचला हुआ व्यक्ति । पदतल—पैर, चरण ।

अर्थ—यह वह लोक है जहाँ कभी किसी शासक की आज्ञाओं की घोषणा होती है और कभी किसी की । ये घोषणाएँ क्या हैं, उनकी जय-ध्वनियाँ हैं ।

पर शासन-व्यवस्था इस लोक की सदा से कुछ ऐसी रही है कि गरीबों को सुख सुविधाएँ नहीं प्राप्त होतीं । जो भूख से व्याकुल और राज-व्यवस्था से कुचले हुए व्यक्ति हैं वे इन घोषणाओं से ऐसी स्थिति में बने रहते हैं कि बार बार शासकों और धनिकों के पैरों में गिरते रहें । भाव यह कि राज्य के नियम शोषकों को और अधिक सुविधाएँ तथा शोषितों को सब प्रकार की असुविधाएँ जुटाते हैं ।

पृष्ठ २६८

यहाँ लिए दायित्व—दायित्व—जिम्मेदारी ।

अर्थ—यहाँ उन व्यक्तियों ने जो समाज, देश, संसार और धर्म की उन्नति के लिए पागल हो रहे हैं, सभी प्रकार के कर्मों का बोझ अपने ऊपर ले लिया है । अर्थात् लोग कुछ भी करने से नहीं चूकते और अपनी समस्त दौड़-धूप का कारण यह बतलाते हैं कि वे सृष्टि की उन्नति के लिए प्रयत्न कर रहे हैं ।

मनुष्य एक-एक बात के लिए दुःख उसी प्रकार उठा रहे हैं जिस प्रकार जलने से छाले पड़ जायँ तो वे दुखते हैं, पर उस दशा में भी मनुष्य यदि स्थिर नहीं रहता तो आघात पाकर वे छाले फूट जाते हैं और उनके भीतर से पानी ढुलक कर बह जाता है और उस समय और भी व्यथा होती है ।

यहाँ राशिकृत—राशिकृत—संचित । विपुल—अधिक परिमाण में । विभव—ऐश्वर्य । मरीचिका—मृगतृष्णा, मिथ्या, निस्सार । वे—पहले लोग । ये—उनके पीछे आने वाले व्यक्ति ।

अर्थ--इस लोक में अधिक से अधिक परिमाण में संचित किया हुआ सब प्रकार का ऐश्वर्य यदि ध्यान से देखा जाय तो मृग-तृष्णा के समान (मिथ्या) है।

लोग ऐश्वर्यों का पल भर भोग करके ही अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। एक दिन वे मिट जाते हैं। पर दूसरे लोग इससे कोई शिक्षा नहीं ग्रहण करते। फिर वैभव को एकत्र करने में जुट जाते हैं।

बड़ी लालसा यहाँ—लालसा—कामना। यश-ख्याति। अपराध-कुकर्म। स्वीकृति—स्वीकार करना, ग्रहण करना, उतारू होना। अंध प्रेरणा—संस्कारों की झोंक। परिचालित—प्रेरित।

अर्थ—कर्मशील व्यक्तियों के हृदयों में ख्याति की कामना बहुत तीव्र होती है। इसके लिए वे कुकर्म करने पर भी उतारू हो जाते हैं।

प्राणियों के संस्कार उन्हें जो करने के लिए बाध्य करते हैं, वही करने को विवश हैं, पर इतने पर भी अपने को कर्त्ता समझते हैं। यह उनकी भूल है।

वि०—'प्रसाद' जी का विश्वास था कि व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र नहीं है उससे जैसे कोई बरवश काम कराता है। अभी लिख चुके हैं—'जैसे कशाघात प्रेरित से।' आशा सर्ग में यही बात दूसरे ढंग से कही गई है—

हाँ कि गर्व-रथ में तुरंग सा,
जितना जो चाहे जुत ले।

प्राण तत्त्व की—प्राण तत्त्व—जीवन, प्राण वायु। सघन—जड़ता की दशा को पहुँचने वाली। साधना—सिद्धि, उपलब्धि, प्राप्ति, उपासना। हिम उपल—ओला। प्यासे—जिनका जीवन अभावपूर्ण है। घायल हो—घोर कष्ट पाकर। जल जाते—मृत्यु को प्राप्त करते हैं। मर मर कर—बड़ी कठिनाई से।

अर्थ—इस लोक में प्राण की—जो एक सूक्ष्म तत्त्व है—सिद्धि जड़-

रूप में हो रही है अर्थात् कर्म करने वालों के हृदय जड़ हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि संघर्ष में लीन व्यक्तियों के हृदय से सहानुभूति, करुणा, दया, ममता जैसी वृत्तियाँ निकल जाती हैं।

यह ठीक वैसा ही है जैसे जल जैसा तरल पदार्थ जमकर जड़-रूप में ओला बन जाय, दूसरी ओर जिन प्राणियों का जीवन अभावपूर्ण है, वे नित्य घोर कष्ट पाकर मर जाते हैं। दुःखी व्यक्ति एम दम मर भी नहीं सकते। जितने दिन का जीवन है उतने दिन कष्टों के बीच किसी न किसी प्रकार उन्हें जीवित रहना ही पड़ता है।

वि०—हृदय प्रदेश से नासिका तक आने जाने वाली वायु को प्राणवायु कहते हैं। इसके रुकने पर मनुष्य की मृत्यु हो जाती है और तब हम कहते हैं उसके प्राण निकल गए। यह जीवन का पर्याय है। प्राण की समता जल से—जो एक प्रवाहित रहने वाला तत्त्व है—ठीक ही की गई है। इस छंद की अन्तिम पंक्ति के भाव को मिर्ज़ा ग़ालिब के इस प्रसिद्ध शेर से मिलाइए—

मरते हैं आरज़ू में मरने की
मौत आती है, पर नहीं आती।

यहाँ नील लोहित—नील लोहित ज्वाला—प्रचंड अग्नि जो नील और रक्तवर्ण होती है। धातु—लोहा चाँदी आदि खान से उत्पन्न होने वाले ठोस द्रव्य, यहाँ जीवात्मा से तात्पर्य है।

अर्थ—जैसे नील और रक्त वर्ण की प्रचंड अग्नि में लोहा चाँदी आदि धातुओं का मैल जल जाता है और वे गल कर किसी भी रूप में ढाली जा सकती हैं वैसे ही यहाँ कर्मों की प्रचंड अग्नि में पड़ लोगों के संस्कारों की धातु में जो प्रतिकूल तत्वों का मैल है वह जल जाता है और फिर वे संस्कार बदल कर वर्तमान जीवन के अनुकूल बन जाते हैं।

धातुओं (जैसे गरम लोहे) का हथौड़ों की चोट खाकर जिस प्रकार आकार बदल जाता है, पर उनका विनाश नहीं होता, इसी प्रकार

संस्कारों को लेकर जीवात्मा मृत्यु का आघात पाकर एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है, मर नहीं जाता।

पृष्ठ २६९

वर्षा के घन—घन—बादल, इच्छा। नाद करना—गरजना, बल पकड़ना। तट कूलों—किनारे और उनके आसपास की भूमि, संघर्ष में आने वाले व्यक्ति। प्लावित करती—डुबाती, तृप्त करती। वन कुंजों—वन के निकुँजों, मन की कामनाओं। सरिता—नदी। बहना—बढ़ना।

अर्थ—वर्षा के बादलों के गरजने पर (तीव्र इच्छाओं के बल पकड़ने पर) किनारों और उसके आसपास की भूमि को अनायास गिराती हुई (संघर्ष में आने वाले व्यक्तियों को मिटाती) वन के कुंजों को सींचती हुई (मन की कामनाओं को तृप्त करती) नदी (लक्ष्य सिद्धि की सरिता) आगे बह (बढ़) जाती है।

बस अब और—दिखाना—व्याख्या या चर्चा करना। भीषण—भयंकर। उज्ज्वल—श्वेत वर्ण का। पुंजीभूत—एकत्र, निर्मित। रजत—चाँदी।

अर्थ—मनु ने घबरा कर कहा—बस रहने दो। इसके संबंध में अब और अधिक चर्चा न करो। यह कर्म-लोक तो अत्यधिक भयंकर है।

थोड़ी देर रुककर उन्होंने फिर प्रश्न किया: अच्छा श्रद्धे, सामने वाला वह श्वेत वर्ण का उजला लोक जो देखने में चाँदी के ढेर सा प्रतीत होता है, कैसा है?

प्रियतम यह तो—प्रियतम—जो सबसे अधिक प्रिय हो, यह शब्द पति के अर्थ में रूढ़ हो गया है। ज्ञान क्षेत्र—ज्ञान भूमि। उदासीनता—प्रभावित न होना, ऊपर उठा रहना, निर्लिप्त रहना। न्याय—कर्मों का फल। निर्मम—कठोरता। दीनता—दुर्बलता।

अर्थ—हे प्रियतम, यह उज्ज्वल लोक ज्ञान-भूमि है। यहाँ के निवासी सुख और दुःख दोनों से प्रभावित नहीं होते।

यहाँ प्रत्येक प्राणी के कर्मों का फल कठोरता से दिया जाता है। यहाँ बुद्धि-चक्र चलता है अर्थात् सब बातों का निर्णय बौद्धिक आधार पर होता है और उसमें किसी प्रकार की मानसिक दुर्बलता हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

पृष्ठ २७०

अस्ति नास्ति—अस्ति—है। नास्ति—नहीं है। निरंकुश—सामाजिक बंधनों से स्वतंत्र। अणु—प्राणी। निस्संग—निर्लिप्त, आसक्तिहीन। संबंध विधान—संबंध जोड़ना। मुक्ति—मोक्ष।

अर्थ—ज्ञान-लोक के प्राणी यह बतलाते रहते हैं कि वह (परमात्मा) है और यह (संसार) नहीं है और इन दोनों में भेद यह है कि वह सत् है और यह असत्, वह चित् है यह जड़, वह आनन्दमय है, यह दुःखमय।

यद्यपि ये अपना संबंध किसी से नहीं रखते, तथापि मोक्ष से तो अपना संबंध कुछ जोड़े ही रखते हैं—यद्यपि कुछ नहीं चाहते फिर भी मोक्ष तो चाहते ही हैं।

यहाँ प्राप्य—प्राप्य—जो मिलना चाहिए। तृप्ति—संतोष, शांति। भेद—अधिकार के अनुसार अंतर। सिकता—बालू, रेत।

अर्थ—यहाँ जो मनुष्य जितनी साधना करता है उसके अनुसार उसे जो मिलना चाहिए—जैसे अलौकिक सिद्धियाँ स्वर्ग आदि—वह तो उसे मिल जाता है, लेकिन तृप्ति फिर भी नहीं होती।

प्रत्येक प्राणी के अपने अधिकार के अनुसार बुद्धि सब को ऐश्वर्यों का वितरण करती है। पर इन विभूतियों में कोई रस नहीं है। बालू के समान ये शुष्क हैं। अतः जैसे ओस चाट कर कोई अपनी प्यास नहीं बुझा सकता, वैसे ही बुद्धि इन विभूतियों से संतुष्ट नहीं होती।

न्याय तपस ऐश्वर्य—न्याय—तर्क। तपस—तपस्या। ऐश्वर्य—

वैभव। चमकीले—आकर्षण उत्पन्न करने वाले। निदाघ—ग्रीष्म काल। मरु—रेगिस्तान। स्रोत—सोता। जगना—चमकना।

अर्थ—तर्क, तपस्या और ऐश्वर्य से युक्त ये प्राणी नेत्रों में चमक उत्पन्न करते हैं, पर इनकी यह चमक वैसी ही है जैसे ग्रीष्म काल में मरुभूमि के किसी सूखे सोते के तट पर बालू के कण सूर्य की किरणों में चमकें।

वि०—ज्ञानियों के ऐश्वर्य की चमक-दमक को बालू के कणों की झलक से समता करने में कवि का तात्पर्य यह है कि यह झलमलाहट बाहरी और शुष्क है। अतः निस्सार है। जीवन का वास्तविक सुख आंतरिक शांति में है, जो प्रसाद के अनुसार श्रद्धा से प्राप्त होता है। कवि ने ज्ञान को यहाँ कुछ हल्का प्रदर्शित किया है। ऐसा करके उससे न्याय नहीं किया।

न्याय शब्द का प्रयोग कवि ने कहीं पक्षपात-शून्य निर्णय और कहीं तर्क के अर्थ में किया है।

मनोभाव से—मनोभाव—मनोवृत्तियाँ। कायकर्म—शारीरिक कर्म। समतोलन—बाट के बराबर वस्तु तोलना। दत्तचित्त—मन से कोई काम करना। निस्पृह—निर्लोभ। न्यायासन वाले—न्यायाधीश। वित्त—धन, लोभ, आकर्षण।

अर्थ—अपनी (ज्ञानमूला) मनोवृत्तियों के अनुसार ही ये शारीरिक कर्मों को सम्पन्न करने में रुचि रखते हैं। ये उन निर्लोभ न्यायाधीशों के समान हैं जिन्हें धन (लोभ) तनिक भी नहीं डिगा सकता।

वि०—(१) शरीर-संबंधी कुछ कर्म ज्ञानियों को विवश होकर करने पड़ते हैं जैसे शरीर ढकना पड़ता है, भोजन करना पड़ता है, सोना पड़ता है। पर ऐसे सब काम ये अल्पमात्रा में ही करते हैं जिससे शरीर में आसक्ति न हो जाय। तराजू में एक ओर बाट रहते हैं, दूसरी ओर वस्तुएं। यहाँ धर्म की तराजू है, ज्ञानवृत्तियाँ बाट हैं, और इनके

बराबर शारीरिक कर्म तौल किए जाते हैं। यही 'सम-तोलन' शब्द की सार्थकता है।

(२) ज्ञानियों के संबंध में वित्त का अर्थ आकर्षण का लेना चाहिए। उन्हें न धन आकर्षित करता है, न रूप।

अपना परिमित—परिमित—सीमित, छोटा सा। अजर—जो कभी वृद्ध न हो। अमर—जो कभी मृत्यु को प्राप्त न हो।

अर्थ—अपनी बुद्धि का सीमित पात्र लेकर ज्ञान के उस निर्झर से जिसमें रस नाम पर केवल कुछ बूँदें हैं, ये जीवन का रस माँग रहे हैं। और इस काम के लिए ये ऐसे जमकर बैठे हैं मानो ये न तो कभी बुड्ढे होंगे और न कभी मरेंगे।

वि०—जीवन के रस से तात्पर्य आंतरिक शांति या आनन्द का है।

पृष्ठ २७१

यहाँ विभाजन—विभाजन—बँटवारा। तुला—तराज़ू। व्याख्या करना—यह बतलाना कि किसे क्या मिलना चाहिए। निरीह—इच्छा रहित। साँसें ढीली करना—संतुष्ट होना।

अर्थ—इस लोक में धर्म की तराज़ू पर तोल कर अपने अपने शुभ कर्मों के अनुसार जो जितने भाग का अधिकारी है उसका वह भाग उसे दे दिया जाता है अर्थात् सिद्धियों, स्वर्ग, मोक्ष आदि में से किसको क्या मिलना चाहिए, इसका निर्णय इस बात पर निर्भर करता है कि वह कितना धार्मिक है।

ज्ञानी वैसे इच्छारहित होता है, पर सिद्धि, स्वर्ग, मोक्ष आदि में से कुछ न कुछ प्राप्त करके ही संतोष की साँस लेता है।

उत्तमता इनकी—उत्तमता—श्रेष्ठ गुणों से युक्त होना, सात्विकता। निजत्व—अपनापन, विशेषता, धन, अधिकार। अम्बुज—कमल। सर—तालाब। मधु—रस। मधुमक्खियाँ—मधु मक्खियाँ।

अर्थ—उत्तमता इन ज्ञानियों की अपनी विशेषता है। जैसे सरोवर में खिलने वाले कमल जल से ऊपर ही रहते हैं, उसी प्रकार सभी प्रकार के आकर्षणों के बीच जीवित रहकर ये उनसे ऊँचे उठे रहते हैं और अपनी उत्तमता की रक्षा करते हैं।

जैसे मधुमक्खियाँ यहाँ वहाँ से मधु एकत्र करके रखती है और भोग स्वयं नहीं करती, वैसे ही ये जीवन के रस को बचा-बचा रख देते हैं। उसका भोग नहीं करते।

यहाँ शरद की—शरद—क्वार कातिक मास में पड़ने वाली एक ऋतु जिसमें चाँदनी सब मासों से उजली खिलती है। धवल—श्वेत। ज्योत्स्ना—चाँदनी, ज्ञान। अंधकार—अँधेरा, अज्ञान। भेदना—चीरना। अनवस्था—कार्यकारण या वस्तुओं की अंतहीन शृंखला। विकल—स्थिर न रहना। बिखरना—छिन्न-भिन्न होना।

अर्थ—शरद ऋतु की श्वेत चाँदनी अंधकार को चीरती हुई जब फूटती है तब वह और भी उजली प्रतीत होती है। ठीक इसी प्रकार ज्ञान जब अज्ञान को हटाकर प्रकट होता है तब और भी निर्मल प्रतीत होता है।

क्योंकि ये दोनों (ज्ञान-अज्ञान) एक दूसरे से सदा मिले रहते हैं अर्थात् ज्ञान और अज्ञान को पृथक् नहीं किया जा सकता और क्योंकि कभी ज्ञान अज्ञान पर प्रभुत्व जमाता है और कभी अज्ञान ज्ञान को दबा देता है, अतः ज्ञान ही अंतिम सत्य है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

क्योंकि ज्ञान अज्ञान का यह द्वन्द्व चिरंतन है, यही कारण है कि लोक में व्यवस्था स्थिर नहीं रहती, छिन्न भिन्न हो जाती है। भाव यह कि ज्ञान की सदा नहीं चलती, अज्ञान भी अपनी सत्ता रखता है, अतः लोक से अशांति नहीं मिटाई जा सकती।

वि०—अनवस्था न्याय या तर्कशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ होता है कार्य-कारण या कथनों का अंतहीन क्रम जैसे वृक्ष

किससे उत्पन्न होता है ? बीज से। बीज किससे उत्पन्न होता है ? वृक्ष से। और वृक्ष ? इसमें कहीं न कहीं रुकना पड़ेगा। अनवस्था के संबन्ध में लिखा है—उपपाद्योपपादकयो·विश्रांति :—उपपाद्य (कार्य) उपपादक (कारण) की अविश्रांति (अविरामता)। यह न्याय-शास्त्र का एक दोष है। इसको दूर करने के लिए ही एक व्यवस्था माननी पड़ती है ? अनवस्था का दूसरा उदाहरण लीजिए : सृष्टि का कर्त्ता कौन है ? ईश्वर। ईश्वर का कर्त्ता कौन है ?..........।

देखो वे सब—सौम्य—शांत। दोष—अपराध, चरित्र सम्बन्धी भूल, पाप। संकेत—इशारे, इंगित। दंभ—अहंकार। भ्रूचालन—भौंहों का टेढ़ा या वक्र होना। मिस—बहाने। परितोष—संतोष।

अर्थ—तुम इस बात पर ध्यान दो कि वहाँ के सब प्राणी ऊपर से देखने में तो शांत प्रतीत होते हैं, परन्तु भीतर-भीतर इस बात से डरते रहते हैं कि कोई दोष उनसे न बन पड़े।

उनकी भौंहें कभी-कभी टेढ़ी हो जाती हैं। क्या यह इस बात का निर्देश है कि वे यह सोचकर बड़े संतुष्ट हैं कि अन्य मनुष्यों से वे कहीं श्रेष्ठ हैं और इसी से अपने हृदय के अहंकार को इस बहाने प्रकट कर रहे हैं ? निश्चय ही।

यहाँ अछूत रहा—अछूत—जिसे छू न सके। जीवन रस—इंद्रियों का सुख, लौकिक सुख, सांसारिक सुख। संचित—एकत्र। तृषा—प्यास, इच्छाओं की पूर्ति न करना। मृषा—असत्य। वंचित रहना—दूर रहना।

अर्थ—इंद्रियों के सुख-भोग से ज्ञानी लोग अपने को वंचित (बचाये) रखते हैं। उसे भोगने की इन्हें आज्ञा नहीं है। उसे इकट्ठा होने दो, यही इनके लिए विधान है।

उन्हें तो यह बताया गया है कि इच्छाओं की पूर्ति न करना ही उनका कर्तव्य है और सब असत्य है। अतः सांसारिक सुख से तुम दूर ही रहो।

पृष्ठ २७२

सामंजस्य चले—सामंजस्य—शांति। विषमता—अशांति। मूल स्वत्व—मूल तत्त्व, चरम लक्ष्य, वास्तविक ध्येय। कुछ और—जीवन को न मानकर ईश्वर या ज्ञान को मानना। झुठलाना—झूठी या ज्ञान से विमुख करने वाली भावना।

अर्थ—प्रयत्न तो ये इस बात का करते हैं कि जीवन में शांति स्थापित हो जाय, पर फैलाते हैं अशांति, कारण यह कि जीवन को सुंदर और सुखमय बनाना जो मनुष्य का वास्तविक ध्येय है, यह नहीं मानते, किसी और ही बात (ज्ञान प्राप्ति) को जीवन का मूल तत्त्व बतलाते हैं और उन इच्छाओं को जो स्वभावतः मनुष्य के हृदय में उठती हैं, ये झूठी (ज्ञान से विमुख करने वाली) समझते हैं।

स्वयं व्यस्त—व्यस्त—अशांत। शास्त्र—शास्त्र में जो लिखा है। विज्ञान विशेष ज्ञान। अनुशासन—आज्ञाएँ। परिवर्तन में ढलना—बदलना।

अर्थ—ऊपर से देखने में ये शान्त हैं, पर कोई पार न बन पड़े इस भय से स्वयं अशांत हैं। शास्त्र में जो बात जिस रूप में लिखी है उसी के पालन में इनके दिन कटते हैं। पर शास्त्रों की ज्ञान-सम्बन्धी आज्ञाएँ भी सुनिश्चित नहीं हैं। नित्य बदलती रहती हैं अर्थात् अनेक ऋषियों के नाम पर अनेक शास्त्र हैं। उनमें से किसे माना जाय किसे न माना जाय? और भविष्य में भी समय और स्थिति के अनुकूल नवीन ज्ञान-ग्रंथों का प्रणयन होना रहेगा।

यही त्रिपुर है—त्रिपुर—त्रिभुवन, तीन लोक। ज्योतिर्मय—प्रकाशमय, आलोक से युक्त। केन्द्र—सीमा में बद्ध। भिन्न—दूर।

अर्थ—तुमने देखा, ये तीनों लोक ही त्रिपुर (त्रिभुवन) कहलाते हैं। ये तीनों ही गोलक कैसे प्रकाशमय हैं!

ये भिन्न-भिन्न सुख-दुःख को लेकर अपनी-अपनी सीमा में केन्द्रित हुए हैं और एक दूसरे से सदा दूर रहते हैं।

वि०—प्रसिद्ध है कि मय दानव ने सोने, चाँदी और लोहे के तीन नगरों का निर्माण किया था। वे तीनों नगर त्रिपुर कहलाते थे। देवताओं की प्रार्थना पर शिव ने इन तीनों को जला डाला, इसी से वे त्रिपुर-दहन कहलाते हैं। इस स्थूल कथानक को 'प्रसाद' जी ने किस रूप में ग्रहण किया है यह आगे के छंदों में देखिए।

ज्ञान दूर कुछ—ज्ञान—विवेक। क्रिया—कर्म। भिन्न—अन्य प्रकार की, इच्छा को सिद्ध करने वाली नहीं। विडम्बना—घोर असफलता।

अर्थ—ज्ञान दूर रहता है और कर्म भी विवेक-सम्मत नहीं होते, ऐसी दशा में मन की इच्छाओं की पूर्ति कैसे हो सकती है?

प्राणियों के जीवन की घोर असफलता का कारण यह है कि इच्छा, क्रिया और ज्ञान में कोई सामंजस्य नहीं है।

वि०—इच्छा, क्रिया ज्ञान के सामंजस्य से यह तात्पर्य है कि ये तीनों एक दूसरे पृथक् नहीं किए जा सकते अर्थात् प्राणी यदि इच्छा करे तो उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्न (कर्म) करे, कोरी इच्छा करके ही न रह जाय और कर्म करते समय थोड़े विवेक से काम ले। उल्टे-सीधे जो मन में आवे वह न कर डाले।

पृष्ठ २७३

महा ज्योति रेखा—ज्योति—आलोक। स्मिति—मुस्कान, मन्द हास्य। दौड़ी—फैली। सम्बद्ध—जुड़ना, एक होना। ज्वाला—प्रकाश।

अर्थ—इतना कहकर श्रद्धा मुस्करा उठी। उसकी वह मुस्कान-रेखा आलोक की एक दीर्घ रेखा बनकर उन तीनों लोकों में फैल गई जिससे वे गोलक एक दूसरे से जुड़ गए और उनमें प्रकाश जगमगाने लगा।

वि०—इच्छा क्रिया और ज्ञानका सामंजस्य श्रद्धा के आधार पर ही

हरियाली छाई थी। लता, कुंज, गुहा-गृह एवं भरे सरोवरों से वह स्थान रमणीक हो उठा था। वहाँ का एक-एक भू-भाग फूलों से भरा था। मानसरोवर का दृश्य तो वर्णनातीत था। उसी समय संध्या हुई और चन्द्रमा आकाश में उग आया।

मनु मानस के तट पर ध्यान-मग्न बैठे थे। श्रद्धा पास ही में अपनी अंजलि में फूल भर कर खड़ी थी। उसी समय उन पुष्पों को उसने बिखेर दिया। सभी ने पहचान लिया कि ये ही श्रद्धा-मनु हैं। आगे बढ़ कर सभी ने झुक कर उन्हें प्रणाम किया। इड़ा ने श्रद्धा के चरण छुए और कुमार तो मा की गोद में जा बैठा।

इड़ा बोली : इस तपोवन के दर्शन करके आज मैं अपने को धन्य समझती हूँ। आप के आकर्षण के कारण ही मैं यहाँ तक आई हूँ। इसके उत्तर में श्रद्धा ने कुछ भी नहीं कहा। पर मनु थोड़े मुस्कराये और बोले : देखो, संसार में कोई पराया नहीं है। व्यापक दृष्टि से देखने पर अपने-अपने स्थान पर सब ठीक है। जैसे समुद्र की लहरें समुद्र ही हैं, जैसे चाँदनी में खिले तारे चाँदनी ही हैं, वैसे ही जड़ और चेतन सब ब्रह्ममय है। यह ठोस जगत् सूक्ष्म परमात्मा का शरीर है। इस 'मैं' 'तू' के भेद ने एक प्राणी को दूसरे प्राणी से पृथक् कर रखा है। मनुष्य मनोविकारों के ऊपर उठकर जब उनका खेल देखता है तब वह उस निर्विकार स्थिति में पहुँचता है, जहाँ सुख ही सुख है। वास्तविक सुख संघर्ष में नहीं, सेवा में है। दूसरों की सेवा अपना ही आत्म विकास है, अपने ही सुख की वृद्धि है।

उसी समय कामायनी मुस्कराई। उसके साथ समस्त सृष्टि ही मुस्करा उठी। पवन मस्ती से चलने लगा, लताएँ हिलने लगीं, भ्रमर गूंजने लगे, कोकिल कूक उठी, सुमन रस-भार से झड़ने लगे, हिम-खंडों पर चन्द्र-किरण प्रतिबिंबित होकर मणियों का भ्रम उत्पन्न करने लगीं, नदियाँ अप्सराओं सी नाचने लगीं। हिमालय की गोद में मानस की

लहरियों की क्रीड़ा ऐसी प्रतीत हुई मानो शिव के आगे गौरी नृत्य कर रही हों।

इस दृश्य को देखकर सब तल्लीन हो गए, सब ने एक अभेद भाव का अनुभव किया, सबको अखंड आनन्द की उपलब्धि हुई।

पृष्ठ २७७

चलता था धीरे—दल—समूह। रम्य—मनोहर। पुलिन—नदी का किनारा। गिरि पथ—पहाड़ी रास्ता। संबल—यात्रा में काम आने वाली आवश्यक वस्तुयें भोजन रुपया वस्त्र आदि, पाथेय।

अर्थ—यात्रियों का एक दल यात्रा में काम आने वाली आवश्यक वस्तुओं को साथ लिये नदी का मनोहर किनारा पकड़े पहाड़ी पथ से धीरे-धीरे चला जा रहा था।

वि०—यह दल महारानी इड़ा, मानव और उनकी प्रिय प्रजा का था।

था सोमलता से—सोमलता—प्राचीन काल की एक लता जिसके मादक रस का पान ऋषि लोग यज्ञ की समाप्ति पर करते थे। आवृत—ढका हुआ। वृष—बैल। धवल—श्वेत, सफ़ेद रंग का। प्रतिनिधि—प्रतीक, स्थानापन्न। मंथर—मंद। गतिविधि—चाल।

अर्थ—उनके साथ सफ़ेद रंग का एक बैल था जिसे धर्म का प्रतीक समझिये। वह सोमलता से ढका था और मन्द गति से चल रहा था। उसके गले में बँधा हुआ घण्टा एक विशेष ताल में बँध कर बज उठता था।

वि०—वृष धर्म का प्रतीक माना जाता है। साकेत में चित्रकूट दर्शन के समय धार्मिक राम के लिये 'वृषारूढ़' शब्द आया है—

गिरि हरि का हर वेश देख वृष मन भिड़ा।
उन पहले ही 'वृषारूढ़' का मन खिला।

वृषरज्जु वाम—रज्जु—रस्सी। वाम—बायें। मानव—मनु के पुत्र का नाम। अपरिमित—असीम।

अर्थ—इस बैल के साथ मानव था। उसके बायें हाथ में उस बैल की रस्सी थी और दाहिना हाथ त्रिशूल से युक्त होने के कारण सुन्दर प्रतीत हो रहा था। उसके मुख पर असीम तेज झलक रहा था।

केहरि किशोर से—केहरि—सिंह। किशोर—यौवन की ओर अग्रसर होने वाला। अभिनव—नवीन। अवयव—शरीर के अंग। प्रस्फुटित—खिलना, विकसित होना। नये—किशोरावस्था से भिन्न।

अर्थ—उसके शरीर के नवीन अंग सिंह के बच्चे के समान खिल उठे थे। यौवन की गंभीरता उसमें आ गई थी और इसी से वह किशोरावस्था से भिन्न भावों का अनुभव करता था।

वि०—किशोरावस्था तक प्राणी स्वच्छन्द और चंचल रहता है। यौवन का प्रवेश होते ही एक प्रकार की गंभीरता उसे आ घेरती है। प्रेम का उदय और विकास इस काल में ही होता है।

चल रही इड़ा—पार्श्व—कोना, ओर। नीरव—मौन, शांत। गैरिक—गेरुए रंग के। वसना—वस्त्र वाली। कलरव—पक्षियों का चहचहाना, मनोवृत्तियाँ।

अर्थ—इड़ा भी इसी बैल के दूसरी ओर मौन-भाव धारण किये चली जा रही थी। वह सन्ध्या की लाल आभा जैसे गेरुए वस्त्र पहने थी, और जिस प्रकार संध्या समय समस्त पक्षियों का चहचहाना बंद हो जाता है वैसे ही उसकी मनोवृत्तियाँ भी शांत थीं।

वि०—इस बात को हम पीछे भी कह चुके हैं कि मानव और इड़ा का प्रेम सम्बन्ध असम्भव है। यहाँ मानव को 'केहरि किशोर' सा और इड़ा को 'सन्ध्या' सा बतलाकर कवि ने उन दोनों की अवस्थाओं के अंतर को सूचित किया है।

पृष्ठ २७८

उल्लास रहा—उल्लास—हर्ष, आनन्द। मृदु—कोमल। कलकल—कोलाहल। महिला—स्त्रियाँ। मुखरित—ध्वनित।

अर्थ—युवकों की हर्ष ध्वनि, बच्चों के कोमल कलनाद और स्त्रियों के मंगल-गानों से यात्रियों का वह दल गूंज रहा था।

चमरों पर बोझ—चमरों—हिरण की एक जाति। अविरल—घने। कुतूहल—तमाशा।

अर्थ—उनका सामान बोझ ढोने वाले हिरणों पर लदा था और वे एक घनी पंक्ति में मिलकर चल रहे थे। उन्हीं पर कुछ बच्चे बैठकर आप ही अपना तमाशा बन गए थे।

माताएं पकड़े—पकड़े—हाथ से थामे। विधिवत्—ढंग से।

अर्थ—इन बच्चों को इनकी मातायें थामे हुए बातें करती जारही थीं। वे उन्हें यह बात बहुत ही सुन्दर ढंग से समझा रही थीं कि वे सब कहाँ जा रहे हैं।

कह रहा एक—एक—एक बच्चा। वह भूमि—वह स्थान जहाँ मनु और श्रद्धा रहते हैं।

अर्थ—इसी बीच एक बच्चे ने अपनी मा को टोक कर कहा: यह बात तो तू न जाने कितनी देर से कह रही है कि वह स्थान जहाँ हम जा रहे हैं अब आया, अब आया, और उँगली दिखा कर बतला भी रही है कि देखो वह भूमि बिल्कुल पास ही है।

पर बढ़ती ही—रुकने—थमने। तीर्थ—पवित्र स्थान।

अर्थ—परन्तु बढ़ती ही चली जा रही है। रुकने का नाम नहीं लेती। ठीक बतला, जिसके लिए तू इतना दौड़ रही है, वह तीर्थ-स्थान कहाँ है?

पृष्ठ २७९

वह अगला—देवदारु—एक पहाड़ी वृक्ष। कानन—वन। घन—बादल। दल—पत्ते। हिमकन—ओस की बूंदें।

अर्थ—मा ने उत्तर दिया: बेटा, वह तीर्थस्थान उस आगे की समतल भूमि में है जहाँ देवदारु का वन खड़ा है। इन वृक्षों के पत्तों से ओस की बूंदें बटोर कर बादल अपने हृदय की प्याली भर लेते हैं।

हाँ इसी ढालवें—ढालवें—उतार। सहज—सरलता से। सम्मुख—सामने ही। पावनतम—सबसे पवित्र, अत्यन्त पवित्र।

अर्थ—जब हम इस ढलाव पर आसानी से उतर जायंगे, तब सचमुच, हमारी आँखों के सामने ही वह अति उज्ज्वल तथा अत्यंत पवित्र तीर्थ दिखाई देगा।

वि०—मा के इस उत्तर से बालक को संतोष नहीं हुआ।

वह इड़ा समीप—समीप—निकट। बालक—बच्चा जो प्रत्येक नवीन वस्तु के संबंध में स्वभावतः जिज्ञासा भावना से भरा होता है। कुछ और—अधिक।

अर्थ—वह बालक हिरण की पीठ से उतर कर इड़ा के निकट पहुँचा और उसने उससे रुकने को कहा। आखिर वह बालक ही था, अतः अपनी उत्सुकता की शांति के लिए उस तीर्थ के संबंध में कुछ और अधिक बातें जानने के लिए हठ करने लगा।

पृष्ठ २८०

वह अपलक—अपलक लोचन—टकटकी बाँधे, दृष्टि जमाए। पादाग्र—चरणों का अग्र भाग, पैरों की उँगलियाँ। विलोकन—देखना। पथ-प्रदर्शिका—अगुआ, पथ-निर्देशिका। डग—चरण, कदम।

अर्थ—इड़ा अपने चरणों की उँगलियों पर दृष्टि जमाए सबकी अगुआ बनी धीरे-धीरे चरण रखती चल रही थी।

वि०—'अपलक लोचन' इस बात की ओर संकेत करता है कि इड़ा कुछ सोच रही है। संभवतः उसे पिछली घटनायें याद आरही हैं।

बोली हम जहाँ—जगती—संसार। पावन—पवित्र। प्रदेश—

स्थल, भूमि। किसी का—एक व्यक्ति का। तपोवन—तपस्या करने का स्थान।

अर्थ—इड़ा बोली: हम जहाँ जा रहे हैं वह संसार का एक पवित्र स्थान है, किसी का साधना-स्थल है, शीतल और अत्यंत शान्त तप-भूमि है।

कैसा क्यों शान्त—शान्त—शान्तिदायक। विस्तृत—विस्तार से। सकुचाती—संकोच का अनुभव करती।

अर्थ—बालक ने फिर पूछा: वह तपोवन कैसा है? इतना शांति-दायक क्यों है? तू विस्तार के साथ क्यों नहीं बतलाती?

यह सुनकर इड़ा ने थोड़े संकोच का अनुभव करते हुए उत्तर देना प्रारम्भ किया।

वि०—यह सोचकर कि बालक अनजाने में उससे ऐसे व्यक्ति के संबंध में प्रश्न कर रहा है जो उसे प्रेम करता था, उसे संकोच का अनुभव हुआ।

पृष्ठ २८१

सुनती हूँ एक—मनस्वी—उच्च मन वाला व्यक्ति, बुद्धिमान। ज्वाला—पीड़ा। विकल—व्याकुल। झुलसाया—जर्जर।

अर्थ—मैंने सुना है कि उच्च मन वाला एक व्यक्ति एक दिन कहीं से यहाँ आया था। वह सांसारिक व्यथाओं से व्याकुल और जर्जर था।

उसकी वह जलन—जलन—हृदय की व्यथा। गिरि अंचल—पर्वत की तलहटी। दावाग्नि—वन में लगी अग्नि। प्रखर—तीव्र। सघन—घना।

अर्थ—उसके हृदय की भयानक जलन पर्वत की इस तलहटी में फैल गई जिससे वृक्षों में लगी उन तीव्र लपटों ने घने वन में अशांति फैला दी। अर्थात् उसके हृदय में जो अशांति थी उसे लेकर उसने एक

ऐसा कांड उपस्थित किया जिससे अपने चारों ओर के प्राणियों के जीवन की सुख शांति मिटा दी।

थी अर्धांगिनी—अर्धांगिनी—पत्नी। यह दशा—अपने पति का वह दुःख। करुणा की वर्षा—दया के बादल, अधिक दया। दृग—आँख।

अर्थ—फिर उसे खोजती हुई एक स्त्री आई। वह उसी की पत्नी थी। अपने पति की ऐसी दशा देखकर उसकी आँखों में आकाश में जल से भरे मेघों के समान करुणा उमड़ी।

वरदान बने—वरदान—कल्याणकारी। मंगल—कल्याण। सुख—सुखदायक।

अर्थ—उसकी पत्नी के आँसू उस व्यक्ति के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुए अर्थात् उसकी करुणा की बूंदों से उस व्यक्ति की जलन बुझ गई। भाव यह कि अपनी पत्नी का सरस आश्रय पाकर उस व्यक्ति का हृदय शांत हो गया।

इससे संसार का भी कल्याण हुआ, क्योंकि जिस व्यक्ति ने चारों ओर अशान्ति फैला रखी थी वह अपनी पत्नी की कृपा से एकांत में लौट गया।

जिस वन में एक दिन जलन के लपटें बिखर गई थीं वह फिर हरा-भरा शीतल और सुखदायक हो गया। उसके समस्त ताप शांत हो गए। तात्पर्य यह कि जहाँ एक दिन अशांति थी वहाँ शांति छागई, जो स्थान उजड़ गया था वह बस गया, जहाँ दुःख था वहाँ सुख का जन्म हुआ और जहाँ ताप था वहाँ संतोष का साम्राज्य फैला।

गिरि निर्झर—गिरि—पर्वत, यहाँ मनुष्यों से तात्पर्य है। निर्झर—झरने, आनंद। हरियाली—हराभरापन, समृद्धि। सूखे तरु—शुष्क वृक्ष, शुष्क जीवन। पल्लव—नवीन पत्ते, नवयुवक। लाली—लालिमा, क्रीड़ा, रंग।

अर्थ—पर्वत से झरने फिर उछल उछल कर बहने लगे, हरियाली

फिर से छा गई, सूखे वृक्षों पर फिर पल्लव आये और उन पल्लवों में जब लालिमा फूटी तो वे वृक्ष मुस्कराते हुए प्रतीत हुए अर्थात् मनुष्यों के हृदयों से फिर आनन्द फूटा, उनके जीवन में फिर समृद्धि छा गई, जो शुष्कता घिर आई थी उसके स्थान पर फिर हँसी और नवीन रंग आया।

पृष्ठ २८२

वे युगल वहीं—युगल—दोनों, पति पत्नी। संसृति—संसार।

अर्थ—वे दोनों पति-पत्नी अपने स्थान पर ही बैठे संसार की सेवा करते हैं। उनके निकट जो जाता है उसे अपने उपदेशों से संतोष और सुख प्रदान करते हैं और इस प्रकार दुःख से प्राप्त होने वाले सभी के ताप को वे मिटाते हैं।

वि०—देखने की बात है कि इड़ा ने मनु का नाम कहीं नहीं लिया।

है वहाँ महा ह्रद—महा—बड़ा, विशाल। ह्रद—सरोवर, तालाब। प्यास—अशांति। मानस—मानसरोवर, मन रूपी सरोवर।

अर्थ—वहाँ निर्मल जल से भरा एक विशाल सरोवर है। उसके जल को पान कर मन की अशांति दूर हो जाती है। उसका नाम 'मानस' है। उसके पास पहुँचने वाले को सुख मिलता है।

वि०—मन के सरोवर में प्रेम का निर्मल जल भरा है। इसके पान करने से अशांति दूर होती है और सुख मिलता है।

तो यह वृष—वृष—बैल। वैसे ही—खाली, ठस पर बिना बोझ लादे या बिना बैठे।

अर्थ—इड़ा की इतनी बातें सुनकर बालक ने फिर प्रश्न किया: अच्छा, इस बैल को खाली क्यों चला रही है? तू इस पर बैठ क्यों नहीं जाती? पैदल चलकर तू क्यों थक रही है!

पृष्ठ २८३

सारस्वत नगर—सर्ग—संसार। रिक्त—खाली। सिंधु—अमृत, प्रेम।

अर्थ—इड़ा बोली : सारस्वत नगर के रहने वाले हम लोग यात्रा करने और जीवन के इस असार सूने घट को अमृत-जल से भरने आये है।

इस वृषभ—वृषभ—बैल। उत्सर्ग—मुक्त।

अर्थ—यह बैल धर्म का प्रतिनिधि है। इसे उस तीर्थ-स्थान में जाकर हम मुक्त कर देंगे।

हमारी कामना है कि यह सदा स्वतंत्र रहे, भय से रहित हो, बंधनहीन हो और सुख पावे।

वि०—धर्म सांप्रदायिक संकीर्णता में आबद्ध होकर विकृत हो जाता है। उसकी शोभा इसी में है कि वह सभी के बीच मैत्री-भाव और प्रेम का प्रचार करे। धर्म में यदि जड़ बंधन हों, यदि एक धर्म वाले दूसरे धर्म वालों से भयभीत रहें। यदि स्वतंत्रता से कुछ लोग अपनी उपासना पद्धति का विकास न कर सकें तो यह धर्म नहीं है। ऊपर की पंक्तियों में धर्म को मुक्त रखने की जो बात उठाई गई है उसका आशय यही है।

सब सम्हल—सम्हल गए—सावधान हो गए। नीची—अधिक ढलवाँ।

अर्थ—सहसा सब सम्हल गए क्योंकि आगे की उतराई कुछ ढलवाँ थी। उसे पार कर जिस समतल घाटी में वे पहुँचे, वह हरियाली से छायी थी।

श्रम ताप और—श्रम—थकावट। ताप—कष्ट। पथ पीड़ा—पथ के क्लेश। अंतर्हित—विलीन। विराट—विशाल। धवल—श्वेत, बर्फ़ से ढके रहने के कारण सफ़ेद। महिमा—गौरव। विलसित—सुशोभित, मंडित।

अर्थ—वहाँ पहुँच कर थकावट, कष्ट और मार्ग के क्लेश पल भर में विलीन हो गए। यात्रियों ने देखा कि उनकी आँखों के सामने ही विशाल श्वेत पर्वत अपने गौरव से मंडित खड़ा है।

पृष्ठ ७८४

उसकी तलहटी—तलहटी—पर्वत की तराई। श्यामल—हरे भरे। तृण—घास। वीरुद्ध—लता। ह्रद—तालाब।

अर्थ—पर्वत की यह तलहटी हरी लताओं के कारण रम्य लगती थी। नवीन कुंज, सुन्दर गुहा-गृहों और सरोवरों से पूर्ण होने के कारण वह विलक्षण दिखाई दे रही थी।

वह मंजरियों—मंजरी—कुछ पौधों और वृक्षों की सींकों में लगे छोटे छोटे दानों का समूह, बौर, मौर। पर्व—स्थान, भू-भाग। संकुल—पूर्ण, युक्त।

अर्थ—उस वन में बहुत से वृक्ष ऐसे थे जो मंजरियों से लदे थे। शाखाओं के हरे पत्तों के बीच ये मंजरियाँ कुछ-कुछ पीत और कुछ-कुछ अरुणाभा लिए हुए थीं।

वहाँ का प्रत्येक भू-भाग फूलों से यहाँ तक भरा था कि डालियाँ तक उनमें छिप गई थीं।

वि०—आम्र की मंजरी के संबंध में पंत जी ने गुंजन में लिखा है—

रुपहले सुनहले आम्र बौर।

यात्री दल ने—निराला—विलक्षण, अद्भुत। खग—पक्षी। मृग—हिरण।

अर्थ—यात्रियों के उस समूह ने वहाँ रुक कर मानसरोवर का विलक्षण दृश्य देखा। वह एक छोटा सा उज्ज्वल संसार था जो पक्षियों और हिरणों को अत्यन्त सुखदायी था।

मरकत की—मरकत—हरे रंग का एक रत्न, पन्ना। मुकुर—दर्पण। राका रानी—पूर्णिमा।

अर्थ—उस हरियाली के बीच स्वच्छ जल से भरा मानसरोवर ऐसा प्रतीत होता था जैसे मरकत मणि से बनी वेदी पर हीरे का पानी हो, या

प्रकृति रमणी के मुख देखने को एक छोटा सा दर्पण हो अथवा पूर्णिमा वहाँ सो रही हो।

दिनकर गिरि—दिनकर—सूर्य। हिमकर—चंद्रमा। कैलास—हिमालय की एक चोटी। प्रदोप—संध्या। स्थिर—मग्न, अचंचल। लगन—ध्यान।

अर्थ—सूर्य इस समय पर्वत के पीछे छिप गया था और आकाश में चंद्रमा उग आया था। कैलास पर्वत संध्या की आभा में ऐसा लगता था मानो किसी ध्यान में मग्न है।

पृष्ठ २८५

संध्या समीप—सर—तालाब। वल्कल वसना—वृक्षों की छालों के वस्त्र। अलक—केश। कदंब—एक वृक्ष और उसका पुष्प। रसना—करधनी, किंकणी।

अर्थ—संध्या की अरुणाभा उस सरोवर पर छा गई। ऐसा लगता था जैसे सन्ध्या वृक्षों की सुनहली छाल के वस्त्र पहने उस सर पर उतर आई है।

अंधकार छाया था और तारे निकल आये थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे संध्या के श्याम-केशों में ही वे तारे जड़े हैं।

कदंब के वृक्षों की पंक्ति जो फूलों से भरी थी ऐसा दृश्य उपस्थित कर रही थी मानो वह संध्या की करधनी हो।

खग कुल किलकार—खग—पक्षी। किलकारना—चहचहाहट मचाना। कल हंस—राज-हंस। कलरव—मधुर कूजन। किन्नरियाँ—देवताओं की एक संगीत और नृत्य-प्रिय जाति। अभिनव—नवीन।

अर्थ—पक्षियों का समूह चहचहाहट मचा रहा था। राजहंस मधुर कूजन कर रहे थे। इस चहचहाहट और कूजन के स्वर पर्वत से टकरा कर प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न करते थे जो ऐसी लगती थीं मानों किन्नरियाँ नवीन नवीन तानों में गारही हैं।

मनु बैठे ध्यान—निरत—लीन, मग्न । निर्मल—स्वच्छ । 'अंजलि'—दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट ।

अर्थ—उस स्वच्छ मानसरोवर के तट पर मनु ध्यान-मग्न बैठे थे । श्रद्धा अपनी अंजलि में पुष्प भर कर उनके निकट खड़ी थी ।

श्रद्धा ने सुमन—मधुपों—भौंरों । गुंजन—भौंरों की गूंज । मनोहर—मधुर । उन्मन—अप्रभावित, उदासीन ।

अर्थ—श्रद्धा ने उन पुष्पों को बिखेर दिया । उसी समय अगणित भौंरे गूँज उठे और उनकी वह मधुर गुंजार आकाश में व्याप्त हो गई फिर भी मनु उस गूंज से प्रभावित नहीं हुए और अपने ध्यान में ही तल्लीन रहे ।

वि०—ऊपर लिखा है 'सुमनों की अंजलि भर कर' पर इस छंद में 'सुमन बिखेरा' कहा है । 'सुमन बिखेरे' कहना चाहिए था ।

पहचान लिया—वे—यात्री लोग । द्वन्द्व—पति-पत्नी का जोड़ा, दम्पति । द्युतिमय—तप के प्रकाश से आलोकित । प्रणति—प्रणाम ।

अर्थ—उन्हें देखते ही सबने पहचान लिया कि जिन दम्पति महात्माओं के वे दर्शन करने आये हैं वे ये ही हैं । ऐसी दशा में यात्री लोग उनके पास आने से कैसे रुक सकते थे ?

उन देव-दम्पति के मुख पर तपस्या का प्रकाश झलक रहा था । ऐसी दशा में आये हुए प्राणी उन्हें प्रणाम करने के लिए क्यों न झुकते ?

पृष्ठ २८६

तब वृषभ—वृषभ—बैल । 'सोमवाही—सोमलताओं को लेकर चलने वाला । मानव—मनु पुत्र । डग भरना—जल्दी जल्दी चलना ।

अर्थ—उसी समय सोम-लताओं से लदा बैल अपने गले में बँधे घण्टे की ध्वनि मचाता इड़ा के पीछे चलने लगा और उस बैल के साथ चलने वाला मानव भी तीव्र गति से चलने लगा ।

वि०—इसके उपरांत वृषभ का वर्णन नहीं मिलता, अतः सम्भ-

लेना चाहिए कि उसे मुक्त कर दिया गया ! उस प्रसन्नता में उसका ध्यान रखता भी कौन ?

हाँ इड़ा आज—भूली—भेद भाव को भूल गई। दृश्य—मनु-श्रद्धा-मिलन। दृग—नेत्र। युगल—दोनों। सराहना—धन्य समझना।

अर्थ—एक बात और और। इड़ा यहाँ आकर भेद-भाव की उस भावना को जिसके आधार पर उसका शासन-विधान आश्रित था भूल गई। परन्तु अपनी भूल के लिए वह क्षमा नहीं चाहती थी। मनु और श्रद्धा के उस मिलन-दृश्य को देखने का उसे अवसर मिला, इसके लिए वह अपने दोनों नेत्रों को धन्य मान रही थी।

चिर मिलित—चिर मिलित—चिर सम्बन्धित। चेतन पुरुष पुरातन—ईश्वर। पुरातन—अनादि। निज—अपनी। तरंगायित—लहराता हुआ। अंबुनिधि—समुद्र। शोभन—सुन्दर।

अर्थ—मनु श्रद्धा के साथ ऐसे प्रतीत होते थे जैसे ईश्वर अपनी चिर सम्बन्धित प्रकृति से मिल कर प्रसन्न होता है।

आनन्द के सुन्दर समुद्र में अपनी ही शक्ति की तरङ्ग उठी थी। भाव यह कि जैसे माया (शक्ति) आनन्दमय भगवान का अपना ही रूप है, जैसे लहर समुद्र का अपना ही अंश है, वैसे ही श्रद्धा और मनु की स्थिति थी।

वि०—शक्ति शक्तिमान् से भिन्न नहीं होती।

भर रहा अंक—अंक—गोद। पुलक भरी—रोमांचित होकर।

अर्थ—मानव ने अपनी मा से लिपटकर उसके शरीर को अपनी भुजाओं में भर लिया।

इड़ा ने अपना सिर श्रद्धा के चरणों में रख दिया। वह रोमांचित होकर गद्‌गद् कंठ से बोली—

नोट—'बोली' शब्द आगे के छंद में प्रयुक्त हुआ है। वहीं वाक्य पूरा होता है।

बोली मैं धन्य—भूल कर—यों ही। ममता—मोह।

अर्थ—यद्यपि यहाँ मैं यों ही चली आई हूँ, फिर भी मैं धन्य हो गई। हे देवी, मुझे यहाँ तक खींचकर लाने का एकमात्र कारण तुम्हारे दर्शनों का मोह ही था।

वि०—इड़ा राज्य-शासन में इतनी व्यस्त रहती थी कि यदि श्रद्धा के दर्शन का मोह न होता तो वह वहाँ न आती।

पृष्ठ २८७

भगवति समझी—भगवति—देवी, स्त्रियों के लिए एक अत्यन्त आदरसूचक शब्द। समझ—बुद्धि। बुला रही थी—भूल के रास्ते पर चला रही थी। अभ्यास—स्वभाव।

अर्थ—हे देवि, आज मैं समझी कि मुझमें सचमुच कुछ भी बुद्धि न थी। यह मेरा स्वभाव ही बन गया था कि मैं सबको भूल के रास्ते पर चलाती रही।

हम एक कुटुम्ब—दिव्य—पवित्र, स्वर्गीय, साधनापूत। अघ—पाप।

अर्थ—इस पवित्र तपोवन की यह विशेषता सुनकर कि यहाँ आने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं मैं और मेरी प्रजा एक कुटुम्ब बनाकर यात्रा करने आये हैं।

मनु ने कुछ—मुसक्या कर—हँस कर। यहाँ पर—संसार में।

अर्थ—मनु ने थोड़ा मुस्काते हुए कैलास की ओर सभी की दृष्टि आकर्षित की। वे बोले : देखो, इस संसार में कोई भी पराया नहीं है।

वि०—मनु के मुस्काने के कई कारण हैं—

(१) महात्मा लोग सबसे हँस कर बातें करते हैं।

(२) आज अहंवादी मनु अपने ही प्राचीन सिद्धान्त के विरुद्ध बोल रहे हैं। हँसी आना स्वाभाविक है।

(३) रूप के आकर्षण से मनु ऊँचे उठ गए हैं और वे अत्यन्त

शांति के साथ उस इड़ा से बातें कर हैं जिसके आगे उनका मन अनेक बार चंचल हो उठा था।

हम अन्य न—अवयव—अंग। कुछ कमी न होना—पूर्ण होना।

अर्थ—हम एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं, सब एक ही कुटुम्ब के सदस्य हैं।

सभी कहीं केवल हम, एकमात्र हम ही हैं। अर्थात् मैं और हूँ और तुम और यह भेद अज्ञान-जनित है।

जैसे शरीर के सब अंगों को मिलाकर एक पूर्ण शरीर बनता है वैसे ही तुम सब मेरे अंग हो और तुम सब के साथ मिलकर ही मैं पूर्ण हूँ।

पृष्ठ २८८

शापित न यहाँ—शापित—अभागा। तापित—दुःखी। समतल—समान। समरस—ठीक।

अर्थ—यहाँ हम किसी को अभागा नहीं कह सकते, किसी को दुःखी नहीं समझ सकते, किसी को पापी नहीं ठहरा सकते।

जीवन की भूमि में सब समान हैं। कोई छोटा बड़ा नहीं है। जीवन में जो भी जिस स्थिति में है ठीक है।

वि०—सुख-दुःख, पाप-पुण्य, सौभाग्य-दुर्भाग्य सापेक्षिक शब्द (co-relative terms) हैं। एक व्यक्ति जब अपने को दूसरे के सामने रखकर देखता है, उसी समय वह अपनी उच्चता या हीनता का अनुभव करता है। पर ज्ञानी लोग संसार को समष्टि दृष्टि से देखते हैं। इसे इकाई मानते हैं। शीश पर मुकुट रखा जाता है और पैरों में धूलि लगती है। तो क्या इसीलिए हम पैरों को बुरा कहें? एक शरीर की दृष्टि से दोनों ही समान महत्त्वशाली हैं।

चेतन समुद्र—चेतन समुद्र—चेतना का समुद्र, ब्रह्म जो महाचेतन हैं। जीवन—प्राणी। छाप व्यक्तिगत—विशेष छाप, दूसरों से भिन्न होने का चिह्न। निर्मित—विशिष्ट। आकार—लम्बाई चौड़ाई।

अर्थ—जैसे समुद्र में लहरें यहाँ वहाँ उठती दिखाई देती हैं, पर वे समुद्र से पृथक् नहीं हैं—जलरूप ही हैं वैसे ही अगणित जीवधारी हमें सृष्टि में यहाँ वहाँ बिखरे मिलते हैं अवश्य, पर वे उस चेतना के समुद्र अर्थात् ब्रह्म से भिन्न अस्तित्व नहीं रखते।

अपने-अपने विशिष्ट आकार के कारण अर्थात् कोई लहर छोटी होती है कोई बड़ी—एक दूसरी से भिन्नता की छाप उन लहरों पर लग जाती है, पर वे अंततः पानी ही हैं, ठीक इसी प्रकार भिन्न-भिन्न आकार होने से प्राणी भी अपनी पृथक् पृथक् सत्ता का भ्रम उत्पन्न करते हैं; पर हैं वे मूल रूप में ब्रह्ममय ही—एक रूप ही।

वि०—जहाँ ऐसा माना जाता है कि ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है, उसके अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं, वहाँ अद्वैतवाद होता है। जो दिखाई देता है वह स्वप्न के समान भ्रम है। यहाँ से अद्वैतवाद का प्रतिपादन हो रहा है।

इस ज्योत्स्ना—ज्योत्स्ना—चाँदनी। जलनिधि—समुद्र। बुद्बुद—बुलबुले। आभा—आलोक, ज्योति, मंद प्रकाश।

अर्थ—चाँदनी के इस समुद्र में बुद्बुदों के समान तारे जैसे अपने आलोक को झलकाते दिखाई पड़ते हैं—

नोट—भाव आगे के छंद में पूरा होगा।

वैसे अभेद—अभेद—परमात्म-तत्त्व की अखंडता। सृष्टि-क्रम—स्थिति। रसमय—आनन्दमय क्रम। चरम—सर्वोत्कृष्ट।

अर्थ—वैसे ही अखंड परमात्मा-रूपी चाँदनी में जीवात्माओं की स्थिति है।

भाव यह कि यद्यपि चाँदनी में तारों की सत्ता पृथक् प्रतीत होती है, पर यदि वे घुल जायँ तो चाँदनी रूप ही हैं। ठीक ऐसे ही जीवात्मा परमात्मा से भिन्न प्रतीत होते हैं; पर हैं वे परमात्म-स्वरूप ही।

जैसे सभी लहरों में घुलमिल कर समुद्र, सभी तारों में घुलमिल कर

चाँदनी रहती है, वैसे ही सभी प्राणों में वह आनन्दमय ब्रह्म व्याप्त है। चिंतन के द्वारा मनुष्य ऊँचे से ऊँचे जिस भाव की उपलब्धि कर सकता है, वह यही है।

अपने दुख सुख—पुलकित—रोमांचित, आकुल तथा प्रसन्न। मूर्त—ठोस। सचराचर—चेतन प्राणी और जड़ प्रकृति से युक्त। चिति—चेतन ब्रह्म। विराट—विशाल। वपु—शरीर। मंगल—शिव-रूप, कल्याणमय। चिर—अक्षय।

अर्थ—जड़ प्रकृति और चेतन प्राणियों से युक्त अपने दुःख से आकुल और अपने सुख से प्रसन्न यह ठोस संसार उस चेतन ब्रह्म का विशाल शरीर है और इस ब्रह्म के समान ही यह (संसार) शिव रूप (मङ्गलमय), सदा सत्य और अक्षय सुन्दर है।

पृष्ठ २८९

सब की सेवा—पराई—दूसरों की। संसृति—सृष्टि। द्वयता—भेदभाव। विस्मृति—भूल।

अर्थ—इस दृष्टि से सबकी सेवा किसी दूसरे की सेवा नहीं है, अपने ही सुख को व्यापक बनाना है।

एक एक अणु तथा एक-एक कण अपना ही रूप है। भेद-भाव भूल है।

मैं की मेरी—मेरी चेतनता—यह चेतना या भावना कि यह 'मेरा' है और इसे छोड़कर सब कुछ पराया। स्पर्श—प्रभावित। मादक घूँट—मदिरा की घूँट।

अर्थ—प्रत्येक प्राणी जो 'मैं' कहता है उसके भीतर यह भावना अधिकार जमाए रहती है कि यह 'मेरा' है, और उसे छोड़ सब पराया है।

मदिरा के घूँट पीकर जैसे शराबी निर्मल चेतना को खो देता है, वैसे ही विभिन्न परिस्थितियों में पड़ कर सब प्राणी अपने को एक दूसरे से पृथक् समझते हैं और अपने निर्मल स्वरूप को भूल जाते हैं।

जग ले ऊषा—ऊषा के दृग—सूर्योदय, प्रभातकाल, ज्ञानोदय। सो ले—सो जा, लीन हो जा। निशि—रात, समाधि अवस्था। स्वप्न—सपने, भगवान का विलक्षण रूप। उलझन वाली अलकों रात की घनी रहस्यमयी कालिमा, उलझन उत्पन्न करने वाले अज्ञान का अंधकार।

अर्थ—जब उषा के नेत्र खुलें अर्थात् जब उषा-काल हो तब मनुष्य कर्म करने के लिए जग पड़े और रात्रि की पलकों में अर्थात् रात के कोमल आश्रय में वह सो जाय।

जैसे किसी के उलझे बालों में फँस कर मन प्रेम के अनेक स्वप्न देखता है, वैसे ही वह रात के उलझे केशों में अर्थात् रात की कालिमा के घनी और रहस्यमयी होने पर स्वप्न देखे—

वि०—(१) मनु के कहने का तात्पर्य यह है कि 'मनुष्य को अपना जीवन प्रकृति के मेल में रखना चाहिए।

(२) क्योंकि अद्वैतवाद का प्रसंग चल रहा है, अतः इस छंद का आशय और भी गहरा है। उषा के समान मनुष्य के हृदय में ज्ञानोदय हो और वह समाधि अवस्था में जाकर लीनता का अनुभव करे। इसके उपरांत ही वह अज्ञान के उलझन उत्पन्न करने वाले अंधकार में ईश्वर के रूप का दर्शन करेगा।

चेतन का साक्षी—चेतन—चेतन ब्रह्म। साक्षी—निर्विकार रहकर देखने वाला। हँसता सा—दुःख से अप्रभावित, प्रसन्न, आनंद की उपलब्धि करने वाला। मानस—मन। गहरे धँसना—गंभीर चिंतन में लीन होना।

अर्थ—ब्रह्म का दर्शन करने वाला मानव सभी प्रकार के विकारों से रहित हो। वह आनंद की उपलब्धि करे।

वह अपने हृदय में ईश्वर के मधुर दर्शन के लिए गहरे से गहरे डूबता (चिंतन करता) चला जाय।

वि०—मनुष्य को दुःख इसलिए होता है कि वह अपने को कर्त्ता समझता है और मनोविकारों में भाग लेने लगता है। इसी से कभी हँसता है और कभी रोता है। यदि वह मनोविकारों से अप्रभावित रह कर, जो भाव उठें उन्हें केवल देखे मात्र, तब वह साक्षी कहलाता है। ऐसी स्थिति में वह मुक्त आत्मलीन रहता है, आनंद की उपलब्धि करता है।

सब भेदभाव—भेद भाव—'मैं' 'तू' का अंतर, अपने पराये का भेद। दृश्य—आत्मा को प्रभावित न करने वाले मनोविकार। मै हूँ—यही मेरा वास्तविक स्वरूप है। नीड़—घोंसला।

अर्थ—सब भेद-भाव को मिटा कर जब प्राणी दुःख-सुख दोनों से प्रभावित नहीं होता, केवल उनका द्रष्टामात्र होता है, उस समय वह अपने सच्चे स्वरूप को प्राप्त करता है।

ऐसी दशा में संसार एक घोंसले के समान प्रतीत होता है।

वि०—(१) मनुष्य का वास्तविक स्वरूप यह है कि वह मनोविकारों से प्रभावित न हो और सब को अपनी ही आत्मा समझे।

(२) नीड़ से तात्पर्य यह है कि यह संसार मोह का स्थान नहीं, क्योंकि थोड़े दिनों में जैसे घोंसले में से पक्षी उड़ जाता है वैसे ही हमें यहाँ से उड़ जाना है।

जैसे घोंसला एक है, वैसे ही संसार भी एक छोटा सा घर है जिसमें विभिन्न जाति, विभिन्न देशों और विभिन्न वर्णों के प्राणी अपने परिवार के प्राणी हैं। कोई भी पराया नहीं है।

पृष्ठ २९०

श्रद्धा के मधु—मधु—मधुर। अधरों—ओंठ। रागारुण—अरुण सूर्य। कला—क्रीड़ा। स्मिति लेखाएं—मंद मुसकान की छाप।

अर्थ—श्रद्धा के मधुर अधरों पर मन्द मुसकान की छोटी-छोटी

रेखाएँ अंकित होकर ऐसे खिल उठीं जैसे अरुण सूर्य की किरणें क्रीड़ा करती हैं।

वह कामायनी—मंगल कामना—कल्याणकारिणी। अकेली—एकमात्र। ज्योतिष्मती—आलोकित। प्रफुल्लित—फूलों से भरी प्रसन्न।

अर्थ—एक मात्र श्रद्धा ही संसार की कल्याणकारिणी है।

जैसे मानसरोवर के किनारे लता प्रकाश से झलमलाये और फूलों से भर जाये, वैसे ही मानस के किनारे वह तप के आलोक से आलोकित और प्रसन्नमना खड़ी थी।

वि०—'मानस' यहाँ श्लिष्ट शब्द है। जैसे मानस पर लता, जैसे मानसरोवर पर स्थूल श्रद्धा, वसे ही मन में श्रद्धा का निवास है और श्रद्धा से ही मन की शोभा है।

वह विश्व—पुलकित—सजीव, साकार। पूर्ण—जिसमें किसी प्रकार की अपूर्णता न हो। काम—कामनाओं। प्रतिमा—मूर्ति। गंभीर—गहरा। हृद—तालाब, सरोवर। विमल—निर्मल, स्वच्छ। महिमा—महिमावान, पवित्र।

अर्थ—संसार भर की चेतना ही जैसे श्रद्धा के रूप में सजीव (साकार) हो उठी थी। वह सभी कामनाओं की मूर्ति थी। सब प्रकार से वह वैसे ही पूर्ण थी जैसे कोई गहरा विशाल सरोवर निर्मल और पवित्र जल से ऊपर तक भरा हुआ हो।

वि० श्रद्धा सभी प्रकार की जड़ता को दूर करती और सभी इच्छाओं की पूर्ति कराती है, इसी से उसे 'विश्व-चेतना' और 'काम की प्रतिमा' कहा है।

जिस मुरली के—मुरली-वंशी। निस्वन—ध्वनि, गूंज। सूना—सुनाकर। रागमय—संगीतमय। अग—जड़। जग—चेतन। झंकृत—ध्वनित, यहां प्रभावित।

अर्थ—जैसे वंशी की ध्वनि से सूनेपन में संगीत भर जाता है वैसे ही कामायनी के हँसने से जड़ और चेतन सभी प्रभावित हो गए।

वि०—प्राणी और प्रकृति के भावों की यह समानानुभूति 'गुप्त' जी में भी देखिए—

> विकस उठीं कलियाँ डालों में
> निरख मैथिली की मुसकान।

पृष्ठ २९१

क्षण भर में—क्षण—पल। परिवर्तित—बदली दशा में, प्रसन्नावस्था में। अणु अणु—प्रकृति की एक-एक वस्तु। पिंगल—पीला। रस—मकरंद।

अर्थ—पलभर में ही संसार-रूपी कमल का एक एक अणु और ही रूप में दिखाई दिया अर्थात् इसके उपरांत पवन, लताएँ, पुष्प, भ्रमर, किरणें, पक्षी सभी प्रसन्नावस्था में दिखाई दिए।

जैसे कमल में पीला पराग उमड़ उठता है वैसे ही प्रकृति की ये वस्तुएँ चंचल हो उठीं और जैसे पुष्प से मकरंद छलक कर गिरता है वैसे ही चारों ओर आनंदामृत बरसने लगा।

वि०—यहाँ से पवन, लताओं, सुमन, हिमखंड, रश्मियों आदि की आनंद दशा का वर्णन प्रारंभ होता है।

अति मधुर—गन्धवह—गन्ध को वहन करने वाला, पवन। परिमल—सुगन्ध, यहाँ सुगन्धित पुष्प पराग से तात्पर्य है। बूंदों—मकरंद, पुष्प रस। केसर—कमल के मध्य भाग की पतली सींकें। रज—कमल-रज। रंजित—रँगा हुआ, युक्त।

अर्थ—पराग से सुगन्धित और मकरंद से सना अत्यन्त मधुर पवन बहने लगा। कमल की केसर को छूकर जो प्रसन्न था वह पवन उसकी रज से रंग कर लौटा।

जैसे असंख्य—असंख्य—अगणित। मुकुल—कली। मादक—मस्ती।

अर्थ—उस पवन को देखकर लगता था जैसे वह अगणित कलियों की मस्ती को उभार कर आया है, इसी से मस्त है। उसने उनकी अछूती पंखुरियों का घना चुंबन किया है, इसी से झूम उठा है।

रुक रुक कर—इठलाता—इतराता। भूला—कोई बात भूल गया हो। कनक कुसुम—पलाश के फूल। धूसर—सना। मकरंद—पुष्प रस। जलद—बादल।

अर्थ—वह रुक-रुक कर इठलाता चल रहा था जैसे कुछ भूल गया हो और भूली बात को याद करने में उसकी गति में विघ्न पड़ रहा हो।

नवीन पलाश के पुष्पों के पराग से सना और पुष्पों की रस-बूंदों से भरा वह बादल-सा उमड़ रहा था।

पृष्ठ २९२

जैसे वन लक्ष्मी—केसर-कुंकुम। हेमकूट—सोने का पर्वत, सुमेरु।

अर्थ—पीले पराग से युक्त वह पवन ऐसा प्रतीत होता था मानो वनलक्ष्मी ने केसर-रज बिखेर दी हो या बर्फ़ के समान निर्मल जल में सुमेरु (सोने का) पर्वत अपनी परछाईं झलका रहा हो।

वि०—'केसर रज' और 'हेमकूट की परछाईं' दोनों का 'पीले पराग से सने' पवन से वर्ण-साम्य है।

संसृति के मधुर—संसृति—सृष्टि। उच्छ्वास—प्रेम की आहें।

अर्थ—सन्-सन् करती पवन की वे हिलोरें ऐसी प्रतीत होती थीं जैसे सृष्टि रूपी रमणी के हृदय से फूटने वाले उच्छ्वास जो किसी के मधुर मिलन की कामना को लिये हुए थे अपना एक दल बना कर आकाश के आँगन में एक नवीन मंगल-गीत गाते जा रहे हों।

वि०—'उच्छ्वास' और 'मङ्गल-गीत' के साथ पवन की तुलना

करने में उसकी हिलोरों के आकार और सनसनाहट पर कवि की दृष्टि है अर्थात् आकार-साम्य और ध्वनि-साम्य है।

वल्लरियाँ नृत्य—वल्लरियाँ—लताएँ। नृत्य निरत थीं—नाच रही थीं।

अर्थ—लताएँ उस पवन में नाच रही थीं और पुष्पों की गन्ध की लहरें चारों ओर बिखर गई थीं। बाँसों के छिद्रों में पवन गूँज रहा था और वह तान चंचलता से इधर उधर घूम रही थी।

गूँजते मधुर—नूपुर—घुंघरू। मदमाते—रस पीकर मस्त। मधुकर—भौंरे।

अर्थ—भौंरे मस्त होकर घुंघरुओं की झनकार के समान मधुर गूँज मचा रहे थे।

भौंरों की वह गुंजार ऐसी प्रतीत हुई जैसे सरस्वती की वीणा की ध्वनि शून्य में तैर कर भर गई हो।

उन्मद माधव—उन्मद—मतवाला, मस्त। माधव—वसंत। मलयानिल—मलय पवन। परिमल—सुगन्ध। काकली—कोकिल की कूक।

अर्थ—मतवाला वसंत और मलय पवन दोनों ही झूम-झूम कर तीव्र गति से प्रकट हुए।

पवन की लहरों में सुगन्ध समाई थी। कोकिल की कूक उसके भीतर प्रवेश करके आगे बढ़ने लगी। पुष्प डालियों से झड़ने लगे।

पृष्ठ २९३

सिकुड़न कौशेय—सिकुड़न—सलवट। कौशेय—रेशमी। वसन—वस्त्र, साड़ी। विश्व सुन्दरी—प्रकृति। मादन—मस्त, मुग्धकारी। सृजन—सृष्टि।

अर्थ—पवन में बिखरे पीले पराग पर कोकिल के स्वर की लहरें ऐसी लगती थीं जैसे प्रकृति के शरीर को ढकने वाली रेशम की साड़ी में सलवट पड़ गई हो।

उस कूक को सुनकर ऐसा लगता था जैसे संपूर्ण सृष्टि में एक मुग्धकारी कोमल कंपन व्याप्त हो रहा हो।

सुख सहचर—विदूषक—मसखरा, नाटकों में एक पात्र जिसका काम अपनी हँसी दिल्लगी से अन्य पात्रों को प्रसन्न रखना होता है। परिहासपूर्ण—हँसी का। पट—परदा, स्तर। निर्भय—निश्चित मन, फिर कभी न लौटने के लिए।

अर्थ—नाटकों में जैसे राजा का साथी एक विदूषक होता है और वह अपनी हँसी का अभिनय समाप्त करके निश्चिंत मन से परदे के पीछे छिप कर बैठ जाता है वैसे ही सुख के साथी दुःख की स्थिति आज सिद्ध हुई। जब उसके विनोद का अभिनय समाप्त हो गया तब वह फिर कभी न लौटने के लिए दूर हो गया और आज उसे सब भूल भी गए।

वि०—इस छंद से कई बातों का पता चलता है—

(१) सुख के साथ जीवन में दुःख का भी भाग है।

(२) सुख दुःख में सुख प्रमुख है और स्थायी, दुःख गौण, क्षण-स्थायी और नाशवान्।

(३) जब सुख मिलता है तब लोग दुःख को भूल जाते हैं।

यह सब ठीक है, पर 'प्रसाद' जी ने दुःख की तुलना जो विदूषक से की वह हमें उचित नहीं लगी। विदूषक तो हँसाने के लिए होता है, पर दुःख आँखों से टप-टप आँसू बरसवा कर ही पीछा छोड़ता है।

थे डाल डाल—मधुमय—रसमयी। झालर—वस्त्रों के किनारों पर मोतियों या डोरों की जाली अथवा गोटों का बना हाशिया। रसभार—मकरंद के बोझ से बोझिल।

अर्थ—डाली डाली में रसमयी कोमल कलियाँ झालर के समान गुथी थीं। जो पुष्प खिल चुके थे वे मकरंद के भार से बोझिल होने के कारण धीरे-धीरे चू रहे थे।

हिम-खण्ड रश्मि—हिम-खंड—बर्फ के टुकड़े। रश्मि—किर

मंडित—युक्त। समीर—पवन। मृदंग—ढोलक के आकार का पर उससे बड़ा एक बाजा।

अर्थ—बर्फ़ के टुकड़ों पर किरणें पड़ीं तो वे मणि-दीपों के समान झलकने लगे। पवन जब उनसे टकराया तो उनसे मृदंग की सी मधुर ध्वनि निकली।

संगीत मनोहर—मनोहर—मधुर। मुरली—आनन्द ध्वनि। जीवन—प्रकृति का जीवन, प्रकृति की वस्तुएं। संकेत—पता। कामना—आंतरिक इच्छा।

अर्थ—पवन के द्वारा उत्पन्न की हुई ये ध्वनियाँ एक मधुर संगीत की सृष्टि कर रही थीं जिससे जीवन (प्रकृति की वस्तुओं) के आनन्द का परिचय मिलता है।

इससे यह भी यह पता चलता था कि उनकी आंतरिक इच्छा मिलन की ओर जाने की है अर्थात् वे सभी मिलन के लिए आकुल थीं।

वि०—प्रकृति की यह इच्छा परमात्मा से मिलन की भी हो सकती है और प्रकृति की वस्तुओं में एक दूसरे से मिलन की भी जैसे भ्रमर की पुष्प से, सूर्यकिरण की कमल से।

पृष्ठ २९४

रश्मियाँ बनी—परिमल—सुगन्ध, यहाँ सुगन्धित पराग कण से तात्पर्य है।

अर्थ—किरणें अप्सराओं के समान शून्य में नाच रहीं थीं और सुगन्धित पराग के कण ही उनके रंगमंच का काम दे रहे थे।

वि०—रश्मियों से तात्पर्य यहाँ चन्द्रमा की किरणों से है। रात का समय है

मांसल सी—मांसल—रक्त मांस वाली रमणी सी, कोमल। हिमवती—बर्फ से ढकी। पाषाणी—पत्थर से बनी। पाषाणी प्रकृति—हिमालय पर्वत। लास्य—नृत्य, विशेष रूप से स्त्रियों का। रास—क्रीड़ा,

ंडलाकार नृत्य। विह्वल—अत्यधिक प्रसन्न। कल्याणी—कल्याणमयी।

अर्थ—बर्फ़ और पत्थर के शरीर वाली कठोर प्रकृति आज रक्त-मांस की कोमल रमणी सी लगती थी। चन्द्रमा की किरणों के उस नृत्य और क्रीड़ा में वह कल्याणमयी अत्यधिक आनन्दित होकर हँसती सी दृष्टिगोचर हुई।

वह चन्द्र किरीट—किरीट—मुकुट। रजत—चाँदी, चाँदी के रंग का। नग—पर्वत। स्पंदित—प्रसन्न। पुरुष पुरातन—अनादि भगवान यहाँ शिव से तात्पर्य है। मानसी—मानसरोवर। गौरी—पार्वती। नर्त्तन—नृत्य।

अर्थ—चाँदी के समान गौर वर्ण वाले पर्वत के ऊपर मुकुट के समान जब चन्द्र उगा तो वह सारा दृश्य ऐसा लगता था जैसे भगवान् शिव वहाँ बैठे हैं और पार्वती के समान मानसरोवर की लहरियों का कोमल नृत्य देखकर प्रसन्न हो रहे हैं।

वि०—योगिराज शिव तो हिमालय पर्वत की अचलता के समान समाधि-लीन रहते हैं, फिर भी गौरी के नृत्य में वह आकर्षण है कि स्पंदित उठते हैं।

प्रतिफलित हुई—प्रतिफलित—प्रतिबिंबित। विमला—निर्मल, वासनाहीन। अपनी ही कला—अपना ही रूप।

अर्थ—प्रकृति में प्रेम के इस निर्मल प्रकाश के दर्शन कर सबकी आँखों में प्रेम की वह ज्योति झलक उठी जिससे आज सभी को सभी वस्तुएँ जानी पहचानी और ऐसी प्रतीत हुईं मानो वे अपना ही प्रतिरूप हों।

वि०—'पहचाने से लगते' वाला भाव आँसू में भी आया है—

मधुराका मुसकाती थी पहले देखा जब तुमको;
परिचित से जाने कब के तुम लगे उसी क्षण हमको।

इसी भाव को अंग्रेज कवि 'टैनीसन' ने अत्यंत स्पष्टता से व्यक्त किया है—

So friend when first I looked upon your
:e
our thoughts gave answer each to each so
ue
opposed mirrors each reflecting each.

समरस थे—समरस—किसी विशेष भाव का उदय न होना, ल्लीनता। जड़—प्रकृति की वस्तुएँ। चेतन—मनु, श्रद्धा, इड़ा, कुमार और उनकी प्रजा आदि। चेतनता—चेतना। विलसती—काम करती। अखंड—अटूट, अविच्छिन्न।

अर्थ—चारों ओर सुन्दर सुन्दर दृश्य दिखाई देते थे; ऐसा अतः लगता था जैसे सुन्दरता आज रूप धारण करके आई है। ऐसे रम्य वातावरण में जड़ और चेतन दोनों एक ही प्रकार की तल्लीनता का अनुभव कर रहे थे।

सबके भीतर एक ही चेतना काम कर रही थी अर्थात् उनकी आत्माएँ मिलकर आज एक हो गई थीं। भाव यह कि किसी को आज शरीर की सुधि न थी। वे एक चेतनवृत्ति मात्र हैं, इतना ही बोध उन्हें था।

इस स्थिति को उपलब्ध करके सभी ने घने और अखंड आनन्द की अनुभूति की।

वि०—जो सृष्टि आनन्दस्वरूप ब्रह्म से उत्पन्न हुई है, वह निश्चय ही आनन्दमयी है। पर धूप-छाँह की भाँति संसार में सुख-दुःख गुँथे हुए हैं, अतः सुख में दुःख का व्याघात पड़ने से लोक में आनंद अखण्ड रूप में प्राप्त नहीं हो पाता। दुःख का मूल कारण यह है कि हम भेद-दृष्टि को लिए रहते हैं—किसी को अपना किसी को पराया समझते हैं। इससे राग-द्वेष का जन्म होता है। राग द्वेष से आत्मा पर मलिनता का आवरण पड़ जाता है। सम-दृष्टि प्राप्त होने पर निर्मल आनन्द प्राप्त होता है।

इसमें ब्रह्म के सत्, चित्, आनन्द स्वरूप की घोषणा हुई है। 'चेतनता' और 'आनन्द' शब्दों का प्रयोग तो कवि ने किया है, पर 'सत्' दिखाई नहीं देता; फिर भी 'जड़ या चेतन' कह कर 'सत्ता' या उसके 'सत्' स्वरूप का आभास उसने दे दिया है।

चरम सत्य यह है कि उसके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है; अतः जड़ और चेतन का भेद भी अज्ञान-जनित है। वही चिर सुन्दर सभी कहीं है। यहाँ आनन्द के साथ 'अखण्ड' विशेषण का प्रयोग हुआ है। जब आनन्द किसी विषय को लेकर होगा तो अखंड न होगा। जब 'निर्विषय' होगा तभी अखण्ड होगा। 'सविषय' या व्यक्तिगत आनन्द घना भी न होगा, हल्का होगा अर्थात् अखण्ड आनन्द की उपलब्धि अपनी व्यक्तिगत सत्ता को विश्व-सत्ता में डुबाने में है। सब एक है—यही कामायनी का महान् संदेश है।

इसमें ब्रह्म के सत्, चित्, आनन्द स्वरूप की घोषणा हुई है। 'चेतनता' और 'आनन्द' शब्दों का प्रयोग तो कवि ने किया है, पर 'सत्' दिखाई नहीं देता; फिर भी 'जड़ या चेतन' कह कर 'सत्ता' या उसके 'सत्' स्वरूप का आभास उसने दे दिया है।

चरम सत्य यह है कि उसके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है; अतः जड़ और चेतन का भेद भी अज्ञान-जनित है। वही चिर सुन्दर सभी कहीं है। यहाँ आनन्द के साथ 'अखण्ड' विशेषण का प्रयोग हुआ है। जब आनन्द किसी विषय को लेकर होगा तो अखंड न होगा। जब 'निर्विषय' होगा तभी अखण्ड होगा। 'सविषय' या व्यक्तिगत आनन्द घना भी न होगा, हल्का होगा अर्थात् अखण्ड आनन्द की उपलब्धि अपनी व्यक्तिगत सत्ता को विश्व-सत्ता में डुबाने में है। सब एक है—यही कामायनी का महान् संदेश है।